जा सकता है । नया सेट यदि सामने न लाना हो, तो भी, उसी सेट पर नाट. के पात्र अपनी गतियाँ, स्थितियाँ और मनस्थितियाँ बदल सकते हैं और दर्शकों के ऐन सामने होते हुए भी, अंधेरे की ओट लेकर, लुप्त रह सकते हैं। परदे के उठने और गिरने में जो 'अलस-भाव' है, उसे जलती-बुझती रोशनी की व्यवस्था ने दूर कर दिया है । इसी तरह, मंच-सम्बन्धी और भी अनेक सुधार हो चुके हैं, होते जा रहे हैं । इन सुधारों ने नाटककारों के लिए नई सम्भावनाएँ उद्‌घाटित की हैं और नाट्य-लेखन में नए प्रयोगों को बल दिया है ।

परदा उठने के साथ, अथवा, 'अँधेरा क्षण' लुप्त होने के साथ, दर्शक स्वयं को अधिकाधिक अभिभूत अनुभव करे, इस उद्देश्य से नाटककारों ने, निर्देशकों ने और अभिनेताओं ने भी अब प्रदर्शन-विधान की नई-नई कल्पनाओं को साकार करना चाहा है । थोड़े समय पहले, संयुक्त-राज्य अमेरिका में मीरांबाई के जीवन पर आधारित एक 'टोटल नाटक' प्रस्तुत किया गया, जो बहुत लोक-प्रिय, चर्चित और प्रशंसित रहा । 'टोटल थियेटर' में पात्रों का मंच पर आना और जाना 'आउट-ऑफ-डेट' घोषित किया गया है । नाटक के सभी पात्र मंच पर एक-साथ मौजूद होते हैं । वे सब बोलते बारी-बारी से हैं, किन्तु अभिनय एक-साथ करते हैं ! इस तरह की 'अभिनय-बहुलता' दर्शक को उलझाती नहीं है, बल्कि उसे 'संवेदन-बहुलता' का आनन्द लेने देती है—ऐसा दावा 'टोटल थियेटर' वालों ने किया है । भारत में जब तक 'टोटल थियेटर' श्रेणी के एकांकी का कोई सफल प्रदर्शन न हो, तब तक कहना मुश्किल है कि यह दावा किस सीमा तक सही है ।

'टोटल एकांकी' की तरह 'ओपन-एयर एकांकी', या 'मंच-हीन एकांकी' भी प्रयोग में आने लगे हैं और ऐसे प्रयोग भारत के बड़े शहरों में सफल भी हो चुके हैं । 'ओपन-एयर' पद्धति में दर्शक किसी हॉल में न बैठकर, 'खुले-आम' बैठते हैं । मंच-सज्जा उनकी आंखों के सामने ही बनी होती है । नाटक के पात्र 'खुले-आम' अभिनय करते हैं । 'मंच-हीन एकांकी' में इस स्थिति को और आगे ले जाकर, दर्शकों को मंच के ही बीच बिठा दिया जाता है । कलाकार जब अभिनय करते हैं, तब दर्शक उनको अपने 'ऐन सामने' नहीं बल्कि 'अगल-बगल और आगे पीछे, दाएँ-बाएँ' देखते हैं । इस पद्धति से दर्शक की संवेदनशीलता और अधिक छिड़ सकती है, ऐसा दावा किया गया है, जो सम्भवतः गलत नहीं भी है ।

इधर क्रमशः विकसित होते जा रहे टेलीविज़न ने भी हिन्दी के एकांकियों को नव-जीवन प्रदान किया है । डा० लक्ष्मीनारायण लाल, मोहन राकेश, विष्णु प्रभाकर, गंगाधर शुक्ल, विनोद रस्तोगी, उपेन्द्रनाथ अश्क आदि नाटककारों ने तो टेलीविज़न पर अपने नाटक पेश किए ही हैं, कमलेश्वर और मनहर चौहान जैसे कहानीकारों को भी टेलीविज़न ने आकर्षित किया है । मंच-एकांकियों की एक सीमा है 'आउट-डोर-हीनता' जिसे टेलीविज़न ने तोड़ा है । मंच-एकांकियों में

प्रतिनिधि रंगमंचीय एकांकी

रमा : मैंने तो सुना करज तुम्हारे ही घरवालों ने हमारे यहाँ से लिया था।

स्त्री : झूठ, बिलकुल झूठ। करज तुम्हारे ही घरवालों ने लिया था। नहीं तो बिगड़ती ही क्यों ? तीन पुस्त से हमारी-तुम्हारी लड़ाई इसी बात पर तो है कि करज लौटाया नहीं। ब्याज नहीं दिया।

रमा : मै ये नहीं मानती, करज तुम्हारे घरवालों ने लिया था हमारे घर से। उन्होंने ही नहीं लौटाया, नहीं तो बिगड़ती ही क्यों ?

स्त्री : करज चाहे जिसने चाहे जिससे लिया हो, बेईमान तो तुम्हारे ही घर वाले थे। नहीं तो बिगड़ती ही क्यों ?

रमा : मैं मान नहीं सकती। बेईमान तो तुम्हारे ही घरवाले थे, तुम्हारे। जब मकान बिके, जायदाद कुड़क हुई तो नाक उन्हीं की कटी। वे ही मारे-मारे फिरे।

स्त्री : (तुनककर) और जेलखाना किसके घरवालों को हुआ था रानी, साफ-साफ ही कहलवाओगी !

रमा : और बाजार में बेइज्जत कौन हुआ था ? घर का सामान किसका बिका था ? मेरा मुंह न खुलवाओ सवेरे-सवेरे।

स्त्री : (और भी तेज होकर) बेइज्जत होंगे तुम्हारे घरवाले। यहाँ जूते खाने का नाम न लेना, मुँह नोंच लूँगी—हाँ, नहीं तो ! हम किसी के दबैल नहीं रैवें हैंगे। जूते पड़े थे उनके तो।

रमा : तुम्हारे घरवालों के, तुम्हारे घरवालों के ! मेरे घरवालों के क्यों पड़ते ! बहुत मत बकना, टाँग तोड़ दूँगी !

स्त्री : (खड़ी होकर) तू मेरी टाँग तोड़ेगी ?

रमा : (खड़ी होकर) तू मेरा मुँह नोचेगी ?

स्त्री : नहीं, तू मेरी टाँग तोड़ेगी।

रमा : नहीं, तू मेरा मुँह नोचेगी।

स्त्री : और तू मेरा मुँह नोचेगी ? खबरदार !

रमा : तू होगी खबरदार !

स्त्री : तू होगी !

रमा : तू !

स्त्री : तू !

रमा : तू, तू !

स्त्री : तू तू तू तू। और कह। घर बुलाके बेइज्जती करे है।

[दोनों थोड़ी देर तक चुप रहती हैं।]

रमा : मैंने कब घर बुलाया ? मैंने क्या बेइज्जती की ? मैंने तो कुछ नहीं कहा। मैंने तो कहा, 'आई हो तो बैठो। बडी मेहरबानी है। हमारे भाग खुले।'

स्त्री : तो मैं भी इसीलिए आई। अच्छा घर है, यहाँ ठीक रहेगा, लड़का माने ही नहीं है। पर नहीं, अब नहीं। (तुनककर) मैं जाऊँगी।

पी सकती। हाय राम, तू मुझे उठा क्यों नहीं लेता! (उठती हुई बड़-बड़ाती है) राममनोहर का मैं···

रमा : (चिल्लाकर) पानी पीकर जाओ ना, तुम्हें मेरी कसम, सुनो तो। सुनो तो, राममनोहर बड़ा अच्छा लड़का है। सुनो तो जीजी, तुम्हें मेरी कसम। व्याह की बात है क्या ?

स्त्री : नहीं, हमारे घरवालों के जूते पड़े थे। बाजार में बेइज्जती हुई। तुम्हारा रुपया मार लिया। हम तो चोर हैं न!

रमा : कौन कहे है ? हमीं चोर हैं। हमारे ही बुजुरग ऐसे थे। लो, बैठ जाओ न। मैं पानी ला रही हूं। तुम्हें मेरी कसम।

स्त्री : कसम न धराओ। मैं जाऊँगी। मैं और जगह कर लूंगी।

रमा : नहीं, हमारे ही बुजुरग बेइज्जत हुए। उनकी कुरकी हुई।

[पति का प्रवेश। उधर वह स्त्री भी लौटती है।]

गिरधारी : कौन कहता है कि हमारे बुजुर्ग बेइज्जत हुए! मैं उसकी जीभ खींच लूंगा। मैं सब सह सकता हूं, बुजुर्गों की बेइज्जती नहीं सह सकता। उनका पीछा है। वे बहुत बड़े थे। बड़ा नाम था। महल थे महल। नौकर तो इतने थे जितनी चौमासे में मक्खियाँ।

रमा : (इशारे से पति को समझाती है, पर चश्मा न होने से वह समझ कुछ भी नहीं पाता, बल्कि पत्नी की बात सुनकर नाराज हो उठता है।) चलो, जाने दो, हमीं छोटे थे। हमारे ही बुजुर्गों की बीच बाजार में बेइज्जती हुई। मान लो। हाँ, लो, अब कहो।

गिरधारी : (कड़ककर) क्यों मान लें ? मैं नहीं मान सकता। जरा भी नहीं। वह घेरवाली जमीन अभी तक हमारी है। मैं उसे लेकर छोड़ूंगा। समझा क्या है ?

स्त्री : (लौटती हुई) घेरवा ती जमीन तो हमारी है। उसे कोई कैसे ले सके है ? सिर न फूट जाएँगे।

गिरधारी : (एकदम आगे बढ़कर) वे लोग एक का सिर फोड़ेंगे, मैं सबके सिर फोड़ दूंगा। मैं एक-एक को देख लूंगा, एक-एक को। समझा क्या है ?

रमा : चलो, जाने भी दो, चुप भी करो···राममनोहर···

स्त्री : आज तक तो सिर फूटा नहीं, सिर तोड़नेवाले जेलों में रैवें हैं जेलोंमें। (चली जाती है।)

रमा : मैं कहूं हूं, तुम बोलते क्यों जाओ हो। चुप भी करो अब। वे आई हैं साधना के लिए बातें करने। (चिल्लाकर) हमीं छोटे हैं। सुनो बहन, सुनो तो। हमीं छोटे हैं। चली गई ? हाय···(सिर पकड़ लेती है।)

गिरधारी : (लौटकर) गलती हो गई। पर यह बात ही क्यों उठी ?

रमा : बात क्यों उठी ? मुझे क्या मालूम था किसलिए आई है। वह तो पीछे से पता लगा, उससे पहले तो···

प्रतिनिधि साहित्य माला

प्रतिनिधि रंगमंचीय एकांकी

मंच-एकांकी : नाटककार की सर्वोच्च कसौटी

प्रायः सभी नाटककारों ने मंच-एकांकी लिखे हैं। न केवल लिखे हैं, वल्कि इस विधा को उन्होंने नाट्य-लेखन की सर्वोच्च कसौटी के रूप में भी स्वीकारा और महसूस किया है। इसीलिए 'प्रतिनिधि साहित्य माला' के अन्तगर्त मंच-एकांकियों का यह संकलन प्रस्तुत करते हुए हमारी प्रसन्नता दोहरी है। पहली प्रसन्नता तो इस की कि 'प्रतिनिधि साहित्य माला' में एक नया मनका हम पिरो रहे हैं। दूसरी प्रसन्नता यह कि हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख नाटककारों को हमने नाट्य-लेखन की अपनी सर्वोच्च क्षमता का दिग्दर्शन करते हुए 'रंगे-हाथों' पकड़ा है!

जिस तरह आचार्य चतुरसेन शास्त्री के नाम के साथ उनकी कहानी 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' जुड़ गई है, उसी तरह अनेक नाटककारों के साथ उनके कुछेक एकांकी जुड़ गये हैं। परिणामस्वरूप, हर संकलन में उनका कोई एक खास एकांकी ही वार-वार दोहराया जाने लगता है। हमने इस परम्परा को तोड़ने का प्रयत्न किया है। अनेक वार आकलित हो चुके एकांकियों को यहाँ एक और वार आकलित करने के वजाय, हमने सम्वद्ध नाटककार का कोई और ही एकांकी इस तरह चुना है कि नाटककार का रचनात्मक प्रतिनिधित्व तो पूरी तरह हो; किन्तु संकलन दोहराव-दोष से मुक्त होकर, पाठकों के लिये नवीन रोमांचों के द्वार भी खोले।

रोमांच!

एकांकियों के साथ रोमांच (आकस्मिकता) का तो सीधा-सीधा सम्बन्ध है। डा० नगेन्द्र ने कहा है—'एकता, एकाग्रता और आकस्मिकता, एकांकी में ये तीन तत्त्व अभिप्रेत हैं। जीवन की किसी विशेष परिस्थिति का अथवा एक उद्दीप्त क्षण का चित्र एकांकी में प्रस्तुत होता है…'

मशीनी सभ्यता का विकास ज्यों-ज्यों हो रहा है, मनोरंजन के साधनों की अवधि सिकुड़ रही है। पश्चिम की कला-विधाओं मे यह प्रवृत्ति विशेष रूप से मुखर है। पश्चिमी फिल्में डेढ़ घण्टे की अवधि की भी न रहकर,

अब मात्र घण्टे भर की बनाई जाने लगी हैं। नाटक के क्षेत्र में भी एकांकी ही दिनोंदिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं, क्योंकि इनका प्रदर्शन समय कम लेता है; अंक बस एक ही होने के कारण निर्देशक की सुविधाएँ बढ़ जाती हैं—और, सब से बड़ी बात, एकांकी में जिस रोमांचक क्षण का विस्फोट नाटककार करता है, वह रोमांचक क्षण एकांकी की 'सिकुड़ी हुई अवधि' को और भी सिकोड़कर, मानसिक धरातल पर छोटा कर देता है।

यहाँ प्रस्तुत एकांकियों के रोमांचक क्षण विविध-रंगी हैं। कहीं वे सामाजिकता से ओतप्रोत हैं तो कहीं ऐतिहासिकता से। कहीं वे तथाकथित आधुनिकता पर व्यंग्य से सने हुए हैं तो कहीं पुरानी परम्पराओं पर भी वे कठोरता से वार करते हैं। उनके माध्यम से कभी तो व्यक्ति मुखर हुआ है और कभी वातावरण। कहीं पूरा परिवार धड़क उठा है, तो कहीं समूचे समाज के रंग बिखरे और कौंधे हैं…

संकलन के समय विविध रंगों की इस खोज ने, हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक की उपयोगिता में बहुत वृद्धि कर दी है। जैसे अभिनेता मिल सकते हों, जैसी मंच-सज्जा मिल सकती हो, नाटक के दर्शकों के रूप में जिस मानसिक धरातल के लोग उपलब्ध हों, 'नाट्य-उत्पादन' के लिये कुल जो राशि एकत्र की जा सकती हो—इन सभी सीमाओं और बन्धनों को हमने ध्यान में रखा है और हमारा विश्वास है कि इस संकलन में सबके लिए कुछ-न-कुछ अवश्य है।

हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में मंच-नाटक उतने लोकप्रिय नहीं हैं; जितने बंगला, गुजराती या मराठी भाषी क्षेत्रों में—किन्तु हिन्दी नाटकों को न केवल जीवित, अपितु धड़कन से भी परिपूर्ण रखने का काम रेडियो ने किया है। विष्णु प्रभाकर, डा० लक्ष्मीनारायण लाल, डा० रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क', रेवतीसरन शर्मा, जगदीशचन्द्र माथुर चिरंजीत, आदि अनेक नाटककार अपनी लोकप्रियता के लिये प्रमुखतः रेडियो के ही आभारी हैं। अपने रेडियो-नाटकों को ही इन साहित्यकारों ने मंच के लिये भी प्रस्तुत किया, किन्तु रेडियो और मंच की भावनात्मक आवश्यकताएँ अलग-अलग तरह की हैं। रेडियो-नाटक में सारा खेल स्वर की थरथराहट का है। इसीलिए रेडियो-नाटकों में भावुकतापूर्ण, लम्बे संवाद खूब रंग जमाते हैं किन्तु उन्हीं लम्बे और भावुक संवादों को यदि मंच पर पेश किया जाए तो दर्शक पर बोझ पड़ता है। इसीलिए अधिकांश रेडियो-नाटक मंच-नाटकों के रूप में विशेष सफल नहीं हो सके हैं। मंच-नाटक के अभिनेता केवल स्वर की थरथराहट पर नहीं, बल्कि अपने हावभाव और गतिविधियों पर भी पूरा आधार रखते हैं। लम्बे संवादों को वे भूल भी सकते हैं, जिससे पूरा नाटक ही चौपट हो सकता है। रेडियो-नाटक के अभिनेता-अभिनेत्रियों के सामने भूल जाने की कोई समस्या नहीं। उनके हाथ में तो पूरी पाण्डुलिपि ही होती है,

जिसके पन्ने वे अपनी प्रभावोत्पादक आवाज़ में पढ़ते चले जाते हैं। उनके सामने दर्शकों का समूह भी उपस्थित नहीं होता। उन्हें तो निर्जीव माइक और स्टूडियो के मशीनी वातावरण में ही काम करना होता है। कोई भूल हो जाने पर टेप में उसके सुधार की भी पूरी सुविधा होती है। मंच-नाटक के कलाकारों को, इसके विपरीत, जीवित दर्शक-समुदाय का 'खतरनाक मुकावला' करना पड़ता है, जिससे वे 'स्टेज-फ्राइट' से ग्रसित हो जाते हैं। इसीलिए मंच-नाटक की कुछेक अपनी मौलिक आवश्यकताएँ हैं। यहाँ संकलित प्राय: सभी एकांकी विशुद्ध रूप से मंच के लिए लिखे गए हैं। रेडियो की तकनीक इन पर हावी नहीं है। इन एकांकियों के संवाद छोटे, चुस्त और अनावश्यक भावुकता से परे होने के कारण नितांत यथार्थवादी हैं। मंच-नाटक का दर्शक केवल मंच-सज्जा में ही नहीं, वल्कि संवादों में भी यथार्थ की चुस्ती ो खोज करता है; इस सच्चाई को हमने क्षण-मात्र के लिए भी नहीं भुलाया है।

एकांकियों की प्रदर्शन-अवधि सामान्यत: आधा घण्टे तक होती है, किन्तु डेढ़-दो घण्टे के एकांकी भी लिखे जाते हैं और यदि उनमें पर्याप्त गति हुई तो लोकप्रिय भी होते हैं। इस संकलन में छोटे एकांकी भी हैं और वड़े भी।

वड़े नाटकों में गुंजाइश होती है कि वे धीरे से शुरू हों, रफ़्ता-रफ़्ता समां वाँधें और मन्थर गति से चरम-उत्कर्ष की ओर वढ़ें। एकांकी का स्वभाव इस से विपरीत है। उसका तो प्रारम्भ ही एक 'लगभग चरम-उत्कर्ष' से होता है और अन्त में प्रदर्शन किया जाता है चरम-उत्कर्ष के किसी ऐसे पहलू का, जिस का प्रभाव दोहरा हो। इसीलिए, एकांकी के मंच का परदा उठते ही, दर्शक स्वयं को एक 'अभिभूत स्थिति' में पाता है। परदा उठते ही, क्षण-मात्र में, नाटककार उस तनाव को स्पष्ट कर देता है, जो दर्शक को अपनी सीट की पीठ छोड़ने पर मजवूर कर दे। पात्रों का केवल तात्कालिक तनाव ही नहीं, अपितु उनका भूत-काल, भविष्य के सन्दर्भ में उनकी आकांक्षाएँ, उनकी सफलताओं और निराशाओं का व्यौरा—सव-कुछ, सव-कुछ और सव-कुछ!—नाटककार को एक ही दृश्य में, एक ही मंच-सज्जा के पार्श्व में, एक ही साँस में वयान कर देना होता है। इसीलिए एकांकी-लेखन यदि किसी नाटककार की क्षमताओं को सर्वोच्च कसौटियों पर कसता है, तो आश्चर्य क्या है! सर्वाधिक सफल एकांकी वे ही हुए हैं, जिनका परदा एक वार उठने के वाद गिरता तभी है, जव एकांकी समाप्त हो जाए, किन्तु नई मंच-सज्जाओं ने परदे को क्रमश: असामयिक वना देना शुरू कर दिया है। परदे का स्थान रोशनी ने ले लिया है। परदा गिराने के वजाए रोशनी गुल कर दी जाती है, जिससे चमत्कारिक तीव्रता, चुस्ती और 'आघात' के साथ दृश्य वुझ सकता है और पुन: प्रदीप्त भी हो सकता है—उसी मंच-सज्जा पर, अथवा किसी और मंच-सज्जा पर भी—क्योंकि, 'रिवाल्विंग स्टेज' को अंधेरे क्षणों में घुमाकर वने-वनाए किसी नए सेट को सामने लाया

गुंजाइश नहीं होती कि पहाड़ी नदी की चंचलता, सड़कों पर भागती कारें, समुद्र में तीव्रता से वढ़ते यान और आकाश में शत्रु से जूझते 'नैट' प्रदर्शित किए जा सकें, किन्तु टेलीविज़न में ऐसे आउट-डोर दृश्यों की लघु फिल्में बना ली जाती हैं, जो नाटक के बीच-बीच में प्रदर्शित होकर, नाटक की ड्राइंग-रूम की क़ैद खत्म करती हैं।

मंच-हीन एकांकी की तरह अब 'गली-एकांकी' भी लिखे जाने लगे हैं। किसी भी गली को 'मंच' के रूप में चुन लिया जाता है। दर्शक आमन्त्रित तो होते ही हैं, किन्तु गली में आते-जाते लोग स्वयं भी, अपने-आप दर्शक बन जाते हैं। न केवल दर्शक, बल्कि वातावरण का एक हिस्सा भी! पात्र गलियों में भटक सकते हैं, दौड़ सकते हैं, चौराहे पर संघर्ष कर सकते हैं···आशय यही कि एकांकी को केवल 'ड्राइंग-रूम ड्रामा' ही बने रहने न देकर, उसे नित-नए रूपों में ढालने के लिए अत्यन्त आकुलता से प्रयोग किए जा रहे हैं।

वे सब प्रयोग प्रस्तुत संकलन में प्रतिध्वनित नहीं हैं। प्रयोगों की नियति है कि उनका मूल्यांकन 'प्राथमिक उबाल' शान्त हो जाने पर ही किया जा सकता है। प्रयोगों की प्रयोगों के ही रूप में एक महत्ता अवश्य है—उसी महत्ता के कारण यहाँ उनकी चर्चा हुई—किन्तु वह महत्ता उपादेय तभी हो पाती है, जब 'उड़ी हुई धूल बैठे' और सब साफ-साफ नज़र आए। 'प्रयोगों के परिणामों के साथ अपनी आशाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को जोड़ देने से हमें इनकार नहीं, किन्तु फिलहाल हम इन्तज़ार ही करना चाहते हैं। मुमकिन है, 'प्रयोग एकांकियों' का भी कोई संकलन अलग से प्रकाशित करने की हम भविष्य में सोचें, किन्तु अभी तो इसी प्रस्तुत संकलन से हमें काफी सन्तोष है···

—सम्पादक

गुंजाइश नहीं होती कि पहाड़ी नदी की चंचलता, लहरों पर भागती नाव, समुद्र में तीव्रता से बढ़ते यान और आकाश में ऊँचे से ऊँचे उड़ते [illegible] प्रदर्शित किए जा सकें, किन्तु टेलीविज़न में ऐसे आउट-डोर दृश्यों की लड़ी [illegible] जाती हैं, जो नाटक के बीच-बीच में प्रदर्शित होकर, नाटक की [illegible] क़ैद ख़त्म करती हैं।

मंच-हीन एकांकी की तरह अब 'गली-एकांकी' भी लिखे जाने लगे हैं। किसी भी गली को 'मंच' के रूप में चुन लिया जाता है। दर्शक तो उपस्थित ही होते ही हैं, किन्तु गली में आते-जाते लोग स्वयं भी, अनजाने [illegible] हैं। न केवल दर्शक, बल्कि वातावरण का एक हिस्सा भी! पात्र गलियों में भटक सकते हैं, दौड़ सकते हैं, चौराहे पर संघर्ष कर सकते हैं [illegible] कि एकांकी को केवल 'ड्राइंग-रूम ड्रामा' ही बने रहने न देकर, उसे विभिन्न रूपों में ढालने के लिए अत्यन्त आकुलता से प्रयोग किए जा रहे हैं।

वे सब प्रयोग प्रस्तुत संकलन में प्रतिध्वनित नहीं हैं। प्रयोगों की नियति है कि उनका मूल्यांकन 'प्राथमिक उबाल' शान्त हो जाने पर ही किया जा सकता है। प्रयोगों की प्रयोगों के ही रूप में एक महत्ता अवश्य है—उसी महत्ता के कारण यहाँ उनकी चर्चा हुई—किन्तु वह महत्ता उपादेय तभी हो सकती है, जब 'उड़ी हुई धूल बैठे' और सब साफ-साफ नज़र आए। 'प्रयोगों के सम्भावनाओं' के साथ अपनी आशाओं और महत्त्वाकांक्षाओं को जोड़ देने से हमें इन्कार नहीं, किन्तु फिलहाल हम इन्तज़ार ही करना चाहते हैं। मुमकिन है, 'प्रयोग एकांकियों' का भी कोई संकलन अलग से प्रकाशित करने की हम भविष्य में सोचें, किन्तु अभी तो इसी प्रस्तुत संकलन से हमें काफी सन्तोष है...

—सम्पादक

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक लोकप्रिय 'प्रतिनिधि साहित्य माला' का नवीनतम पुष्प है। इसमें हिन्दी-जगत् के लगभग सभी प्रमुख नाटककारों के एकांकी संकलित हैं। एकांकियों को चुनते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि उन्हें कम-से-कम साधनों के साथ सरलता से रंगमंच पर अभिनीत किया जा सके। अनेक एकांकी तो कई-कई बार सफलतापूर्वक खेले जाकर लोकप्रिय हो चुके हैं। संकलन की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें प्रायः सभी रुचि के पाठकों को अपनी-अपनी पसन्द के एकांकी मिल जायेंगे। ऐतिहासिक घटना पर आधारित, राष्ट्रीय भावनाओं से ओतप्रोत, व्यंग्यात्मक तथा हास्य-प्रधान, वैज्ञानिक कल्पना को संजोये, सामाजिक और पारिवारिक, समस्या-प्रधान तथा चरित्र-प्रधान—एकांकी के इन सभी प्रकारों की झांकी देने का हमने इसमें प्रयत्न किया है।

हम अपने श्रम को सफल समझेंगे, यदि 'प्रतिनिधि साहित्य माला' की अन्य पुस्तकों की तरह प्रस्तुत पुस्तक का भी स्वागत होगा।

साथ ही संपादकद्वय ने जिस तत्परता और परिश्रम से इस संग्रह में प्रतिनिधि रंगमंचीय एकांकीकारों का संकलन किया है, उसके लिए भी हम आभारी हैं।

१
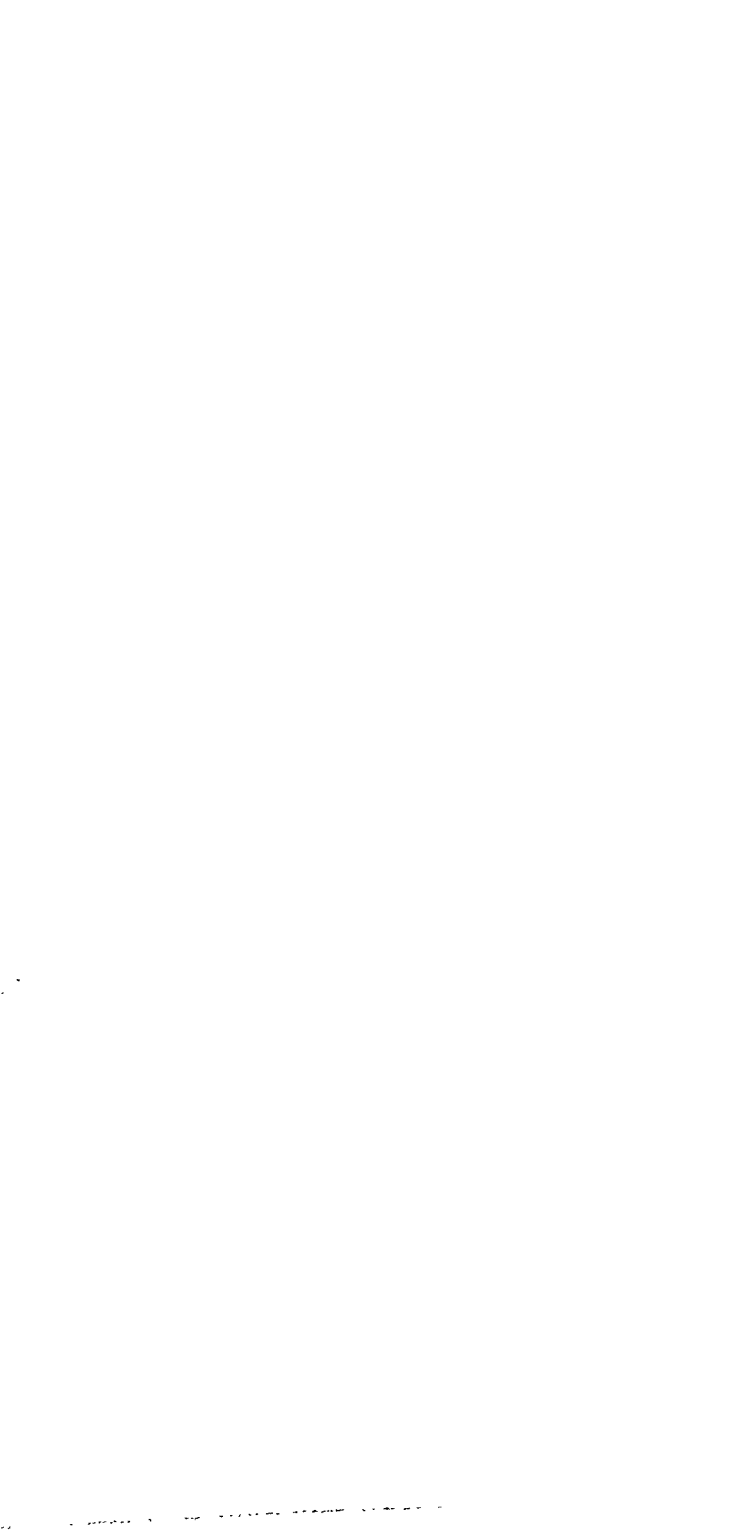
चारुमित्रा

डॉ० रामकुमार वर्मा

डॉ० रामकुमार वर्मा का जन्म सन् १९०५ ई० में सागर, मध्यप्रदेश में हुआ था। आप हिन्दी-एकांकी-साहित्य के जन्मदाताओं में से हैं। रंगमंच से निकट सम्बन्ध रहने के कारण आपके एकांकी नाटकों में अभिनेयता का गुण प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहता है। आपकी संवाद-शैली अत्यन्त सजीव और सुगठित होती है। आपका कवि नाटकों के सम्वादों में अनायास मुखर हो उठता है। ओज, सरसता और श्रुति-मधुरता आपकी भाषा के विशेष गुण हैं। काव्य-सुलभ उपमाएँ और शब्दावली आपके नाटकों को मनमोहक सुन्दरता प्रदान कर देती हैं।

आपके नाटकों की लोकप्रियता इस बात से भी स्पष्ट है कि आपके नाटकों का अनुवाद अंग्रेजी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में हो चुका है।

रचनाएँ

'पृथ्वीराज की आँखें', 'रेशमी टाई', 'रजत रश्मि', 'ध्रुवतारिका', 'सप्त किरण', 'जौहर', 'अंजलि', 'रूपराशि', 'चित्ररेखा', 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास', 'इतिहास के स्वर', 'जूही के फूल', 'जौहर की ज्योति' आदि।

पात्र

सम्राट् अशोक : मगध के सम्राट्
तिष्यरक्षिता : सम्राट् अशोक की रानी
उपगुप्त : बौद्ध भिक्षु तथा आचार्य
चारुमित्रा :
स्वयंप्रभा : } तिष्यरक्षिता की परिचारिकाएँ
राजुक : द्वार-रक्षक
पुष्य : शिविर-रक्षक
स्त्री, प्रहरी आदि

स्थान : कलिंग का शिविर
काल : ई० पू० २६१

सम्राट् अशोक ने अपने शासन से तेरहवें वर्ष में कलिंग पर चढ़ाई कर दी है। उसका कारण यह है कि कलिंग-नरेश सम्राट् अशोक की सत्ता स्वीकार करने में अपना अपमान समझता है। उसने भारत के बाहर भी अपने उपनिवेश स्थापित कर रखे हैं। सम्राट् अशोक को यह सहन नहीं हो सकता। उसने उज्जैन और तक्षशिला में आत्माभिमान की जो दीक्षा प्राप्त की है, वह कलिंग-नरेश के स्वातंत्र्य-प्रेम से समझौता नहीं कर सकती। और जब अशोक ने महाराज चन्द्रगुप्त के वंश में जन्म लिया है, तो वह कैसे अपने अधिकार से आँख मूंद सकता है? इस समय उसका राज्य उत्तर में हिन्दुकुश से लेकर दक्षिण में पेनार नदी तक है और पश्चिम में अरब सागर से लेकर बंगाल की खाड़ी तक। सिर्फ कलिंग एक मतवाले नाग की तरह सिर उठाये हुए विषम दृष्टि से अशोक की ओर देखता है। अशोक उस नाग का सिर कुचलना चाहता है। उसने दो वर्ष पहले कलिंग पर चढ़ाई कर दी है।

उसकी सैन्य शक्ति अपार है। पैदल, घुड़सवार, रथ और हाथियों को उसने कलिंग की सीमा पर अड़ा दिया है। वे आगे बढ़ते चले जा रहे हैं। सम्राट् अशोक स्वयं सैन्य-संचालन करते हैं। उनका शिविर उनकी सेनाओं के साथ है। वे युद्ध के अतिरिक्त किसी भी विषय पर बात नहीं करना चाहते। उनका व्यक्तित्व दृढ़ और तेजस्वी है। ऊँचा कद और भरे हुए अंग, जिन पर शस्त्र सजे हुए हैं। एक बड़ी ढाल उनकी पीठ पर कसी हुई है और तलवार उनके हाथ का भाग बन गई है। सुन्दर मुखाकृति, जिसमें अभिमान और उत्साह का चित्र शक्ति की रेखाओं से खिचा हुआ है। मस्तक पर शिरस्त्राण और कानों में कुण्डल, भौंहें मिली हुई और होंठ कसे हुए। शरीर पर सटा हुआ वस्त्र। चाल में सतर्कता और दृढ़ता। वे अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से ही कुछ क्षणों तक विपक्षी को अप्रतिभ बना देते हैं और अपनी विजय को विपक्षी की मृत्यु की रेखाओं से ही गिनते हैं। वे दया के अनुकूल नहीं—क्रूरता के प्रतिकूल नहीं।

उनका शिविर इस समय गोदावरी तट पर है। दूर पानी के बहने और शिलाओं से टक्कर खाने की आवाज है। शिविर के चारों ओर लताओं और गुल्मों का जाल है। समस्त वातावरण में शान्ति और सौंदर्य है, जो कभी किसी सैनिक की ललकार से या पक्षी के तीखे स्वर से भंग होता है लेकिन फिर शान्त हो जाता है—जैसे एकाकी मार्ग में चलती हुई कोई स्त्री ठोकर खाने से चीख उठे, लेकिन फिर अपने मार्ग पर चलने लगे। शिविर के पर्दों पर शस्त्र त्रिकोण में लम्बी रेखाओं के रूप में सजे हुए हैं। जगह-जगह युद्ध के वस्त्र टँगे हुए हैं।

इस समय संध्या गहरी होती जा रही है। सम्राट् अशोक युद्ध से नहीं लौटे।

उनकी रानी तिष्यरक्षिता शिविर में बैठी है। या तो सम्राट् अशोक ही महारानी तिष्यरक्षिता को अपने साथ युद्ध-कौशल दिखाने के लिए ले आये हैं, या सम्राट् का वियोग सहन न कर सकने के कारण उनकी कुशल कामना करते हुए, उन्हें अपने दृष्टि-पथ में रखने के लिए ही तिष्यरक्षिता सम्राट् अशोक के साथ चली आयी है। इस समय वह अपने कक्ष में बैठी हुई चित्र बना रही है। शिविर के कक्ष में ऐश्वर्य बरस रहा है। स्तम्भों में स्वर्णलताएँ लिपटी हैं, और उन पर रत्नों के फूल हैं, जो प्रकाश में ज्योति-मंडल बन जाते हैं। नीलम और मोतियों की झालरों से कक्ष की दीवारों पर समुद्र की फेनिल लहरों का आभास उत्पन्न किया गया है। पीछे एक महराब है, जिसके दोनों ओर प्रस्तर-निर्मित एक-एक हाथी घुटने टेके हुए हैं। चारों ओर दीपस्तंभ हैं, जिनमें दीपक जल रहे हैं। और उन्हीं स्तंभों में फूल के आकार के पात्र से सुगंध-धूम निकल रहा है। कक्ष के बीच में एक ऊँचा और सजा हुआ आसन है। उससे हटकर कोने की ओर चार छोटे-छोटे कुर्सीनुमा आसन हैं। उन आसनों में से एक पर तिष्यरक्षिता बैठी हुई है। उसके सामने चित्रफलक पर एक अधबनी तसवीर है, जिसमें प्रकृति का सौंदर्य अपनी पूर्णता के लिए तिष्यरक्षिता की तूलिका में से उतर रहा है।

कक्ष में निस्तब्धता है। तिष्यरक्षिता चित्र बनाने में लीन है। रुककर एक ही स्थान पर खड़ी रहकर वह भिन्न-भिन्न कोणों से चित्र की ओर देख रही है। दो क्षणों तक चित्र देखने के बाद, वह अपनी तूलिका से दीपस्तंभ के पात्र पर शब्द करती है। एक परिचारिका प्रवेश कर दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम करती है।

तिष्य० : चारु ! देख यह चित्र कितना अच्छा बन रहा है।

चारु० : बहुत अच्छा, महारानी !

तिष्य० : चारु ! मैंने चाहा कि इसी जगह की प्रकृति का चित्र बना लूँ। यहाँ रहते-रहते ये पेड़, ये झुरमुट, ये फूल मुझे बहुत अच्छे लगने लगे हैं। लता खिलती है तो मालूम होता है जैसे उसके सुहाग के दिन आये हैं। और गोदावरी तो ऐसे बहती है, जैसे किसी के छूने पर उसे रोमांच हो आया है। तुझे भी तो यह जगह अच्छी लगी होगी ?

चारु० ; हाँ, महारानी, मुझे बहुत अच्छी लगती है।

तिष्य० : तब तो युद्ध समाप्त हो जाने दे। फिर तेरा विवाह इसी जगह रचाऊँगी। इन्हीं पेड़ों के नीचे मंडप होगा और इन्हीं फूलों से तेरी माँग भरूँगी।

चारु० : महारानी, आपका चित्र बहुत अच्छा बना है।

तिष्य० : तू अपने विवाह की बात इस तरह उड़ा देना चाहती है ? इसी चित्र में तेरे विवाह का भी चित्र होगा।

चारु० : महारानी, आप अपनी तूलिका को कष्ट न दें। आपकी कला हम लोगों के लिए बहुत ऊँची है।

तिष्य० : तू बहुत मीठी बातें करती है, चारु ! लेकिन मेरी कला जीवन के हर एक चित्र को अपना अंग समझती है। यही दृश्य देख—कितना साधारण है,

पर मुझे तो बहुत प्रिय है !

चारु० : यह तो यहीं पास के कुंज का चित्र है ।

तिष्य० : हाँ, चारु ! मैं कल वहाँ गई थी महाराज के साथ । वे जाने कैसे हो गए हैं ! सब समय युद्ध की बातें करते हैं । तेरे कलिंग देश पर जब से उन्होंने चढ़ाई कर दी है तब से तो सारा राज्य-कार्य महामात्य पर ही छोड़ रखा है । आज दो वर्ष पूरे होने जा रहे हैं और कलिंग पर उनका क्रोध वैसा ही बना हुआ है ।

चारु० : यह मेरे देश का दुर्भाग्य है ।

तिष्य० : मैं चाहती हूँ चारु, कि यह लड़ाई शीघ्र ही समाप्त हो जाय । सच मान, यह युद्ध मुझे अच्छा नहीं लगता । हमारे सुख और शान्ति के जीवन में जहाँ हँसी का फूल खिलना चाहिए वहाँ आह और कराह काँटे की तरह चुभ जाती है ।

चारु० : महारानी, लड़ाई में यही आह और कराह तो तलवार का संगीत बनती है ।

तिष्य० : अच्छा चारु, यह बता, तूने कभी लड़ाई लड़ी है ?

चारु० : नहीं, महारानी !

तिष्य० : तू जानती ही नहीं, लड़ाई किसे कहते हैं ? जीवन भी तो एक लड़ाई है । पुरुष की स्त्री से लड़ाई, स्त्री की पुरुष से लड़ाई । स्त्री-पुरुष की पुरुष-स्त्री से लड़ाई ! तूने कभी लड़ाई लड़ी ही नहीं ?

चारु० : नहीं, महारानी !

तिष्य० : विवाह होने से पहले इसका अभ्यास अवश्य कर ले ।

चारु० : जी, महारानी !

तिष्य० : और चारु, मैं भी महाराज से लड़ना चाहती हूँ । वे यह युद्ध बन्द कर दें । मुझे यह अच्छा नहीं लगता । कितने वीरों का नित्य खून होता है । आज जिन वीरों से देश की उन्नति होती, वही व्यर्थ मर रहे हैं । जो वीर मिट्टी छूकर सोना बनाते, वही आज मिट्टी हो रहे हैं ।

चारु० : सच है, महारानी !

तिष्य० : लेकिन कलिंग के लोग लड़ना भी अच्छी तरह से जानते हैं, नहीं तो मगध की सेना के सामने कौन टिक सकता है ? दो वर्षों से तो यह लड़ाई चल रही है ।

चारु० : अभी बहुत वर्षों तक चलेगी, महारानी ।

तिष्य० : (आवेश से) क्या ? क्या ? चारु, तू महाराज की शक्ति का अपमान करती है ?

चारु० : महारानी, क्षमा कीजिये । इसमें महाराज की शक्ति का अपमान नहीं है । मेरे कलिंग के लोग वीर हैं । वे माता की तरह अपनी भूमि का आदर करते हैं । जब तक एक भी वीर है, तब तक तो कलिंग की जय का घोष वायु को सहन करना ही होगा ।

तिष्य० : तू विद्रोह की बातें करती है, चारु !

चारु० : महारानी, मैं विद्रोह की बातें नहीं करती, मैं अपने देश के गौरव की बातें कर रही हूँ।

तिष्य० : तब तो तू महाराज के साथ विश्वासघात कर सकती है ?

चारु० : महारानी, मैंने महाराज की सेवा उस समय से की है, जब उनका राज्याभिषेक भी नहीं हुआ था। आपके चरणों की छाया में ही बड़ी हुई हूँ। जब मैं महाराज की सेवा में कलिंग से आयी थी, तब तो युद्ध की बात नहीं थी। आज मेरा देश कलिंग संकट में है, तो महारानी, मुझे उसके संबंध में कुछ कहने की आज्ञा भी नहीं मिलेगी ?

तिष्य० : चारु, तुझे पूरी आज्ञा है। किन्तु मैं महाराज का अपमान सहन नहीं कर सकती।

चारु० : संसार में उनका अपमान करने की क्षमता किसी में नहीं है, महारानी ! और मैं तो उनकी आजन्म सेविका हूँ।

तिष्य० : लेकिन जब से कलिंग युद्ध प्रारम्भ हुआ है, तब से मैं महारानी होकर भी तुझसे डरती हूं।

चारु० : महारानी, आप मुझे आत्महत्या की ओर प्रेरित करती हैं।

तिष्य० : (हँसकर) मैं तो तुझसे हँसी कर रही थी, चारु ! तू भी कभी हमसे विश्वासघात कर सकती है ?...चारु, मुझे प्यास लग रही है।

चारु० : जो आज्ञा। (कोने के पात्र से जल भरकर देती है।)

तिष्य० : (दो घूंट पीकर) लेकिन चारु, यह युद्ध मुझे नहीं चाहिए। कितने दिनों से इस शिविर में रहते हुए जैसे मेरा सुख सपना बनता जा रहा है। महाराज का वियोग सहन कर सकती, तो चारु, मैं पाटलिपुत्र से कलिंग के इस शिविर में न आती। रात्रि में युद्ध की समाप्ति पर उनके दर्शन कर लेती हूँ तो जैसे वृद्धा से युवती बन जाती हूँ। आज कहूँगी कि वे कलिंग का युद्ध बंद कर दें। वीरों को स्वतन्त्र सांस लेने देना भी तो दया की क्रूरता पर विजय है। मुझे तो इस विजय पर ही संतोष है।

चारु० : आप देवी है।

तिष्य० : फिर बतला क्या उपाय करूँ, चारु ? महाराज तक्षशिला में रहकर बड़े साहसी बन गए हैं। कहते हैं, पूज्य पितामह, जिन्होंने निकेटर सेल्यूकस की प्रचण्ड सेना का नाश कर दिया था, जिन्होंने अलक्षेंद्र के राज्य की दिशा बदल दी थी, तक्षशिला के ही तो विद्यार्थी थे। पितामह के योग्य पौत्र बनने का आदर्श जो है उनके सामने।

चारु० : हाँ, महारानी।

तिष्य० : अच्छा, चारु ! आज महाराज से एक बात पूछूंगी कि आपके पूज्य पितामह ने तो सेल्यूकस पर विजय पाकर उनकी सुन्दरी कन्या पर विजय पायी

थी। क्या आपकी विजय में किसी...

चारु० : महारानी, क्षमा करें। कलिंग देश वीरों का देश है, कन्याओं का नहीं।

तिष्य० : क्या कलिंग देश में कन्याएँ होती ही नहीं ? चारु, तू तो अपने देश की प्रशंसा करते-करते ऊबती नहीं। महाराज की प्रशंसा क्यों नहीं करती जिन्होंने कलिंग से युद्ध होने पर भी कलिंग देश की सेविका को अपने देश से नहीं निकाला।

चारु० : महारानी, महाराज अशोक सम्राट् हैं। मेरे यहाँ रहने से उनका क्या बिगड़ता-बनता है ?

तिष्य० : आचार्य चाणक्य ने शत्रु के विषय में क्या कहा है, जानती है ? कहा है—शत्रु कभी छोटा नहीं होता।

चारु० : महारानी, मैं अपने पद से अलग होने की आज्ञा चाहती हूँ।

तिष्य० : (हँसकर) बस, बुरा मान गई ! बात-बात पर आज्ञा चाहती है। अरे, तू सेविका होकर भी मेरी सखी है। अच्छा देख, मेरा चित्र और ध्यान से देख।

चारु० : (ध्यान से देखते हुए) महारानी, आपने तो टूटे हुए वृक्ष बनाये हैं और उन में लाल रंग भर दिया है।

तिष्य० : बतला, इसमें क्या रहस्य है ?

चारु० : मैं चित्रकला नहीं जानती, महारानी।

तिष्य० : अरे, यह तो साधारण समझ की बात है। यह चित्र मैं महाराज को दिखलाना चाहती हूँ। उनसे कहूँगी, 'देखिए, आपने कलिंग के वीरों को तो खून से नहला ही दिया है। अब आपकी तलवार इन बेचारे वृक्षों पर भी पड़ी है और उनकी शाखाओं और टहनियों से रक्त निकल रहा है।'

चारु० : महारानी, आपकी बात की थाह नहीं ली जा सकती।

तिष्य० : चारु !

चारु० : महारानी !

तिष्य० : महाराज अभी नहीं आये ?

चारु० : नहीं, महारानी !

तिष्य० : देख ! यह गोदावरी का सुरम्य तट, ये पानी की लहरें जैसे सौन्दर्य की मालाएँ हों जो आप गुँथकर बड़ी होती हैं और तट पर किसी का हृदय न पाकर टूट जाती हैं।

चारु० : हाँ, महारानी !

तिष्य० : और ये जो पक्षी उड़ते चले जा रहे हैं जैसे प्रेम की ग्रंथियाँ हैं जिन्होंने आकाश में उड़ना सीख लिया है। अच्छा सुन, यह समस्त वातावरण तेरा नाच देखना चाहता है। तू नाच सकेगी ?

चारु० : जो आज्ञा, महारानी !

[चारु जाती है। तिष्यरक्षिता थोड़ी देर प्रकृति की ओर देखती है। फिर अपने चित्र के पास आकर तूलिका उठाती है और उसमें रंग भरने लगती है। धीरे-धीरे गाती जाती है—

अली पहचान गया कलि को !

चारु नूपुर पहनकर आती है और तिष्य के सामने खड़ी होती है।]

चारु० : आज्ञा है ?

तिष्य० : मेरी, और उस कली की भी जो तेरे नृत्य के साथ खिलना चाहती है।

[चारु प्रणाम कर नृत्य करती है। कुछ समय तक नृत्य होता है। तिष्य तन्मय होकर देखती है, कभी-कभी बीच में प्रशंसा करती जाती है। अकस्मात् 'महाराज अशोक की जय' का घोष। नृत्य रुक जाता है। तिष्य चारु को देखती है और चारु तिष्य को। शीघ्रता से एक परिचारिका का प्रवेश।]

परि० : महारानी, महाराज शिविर में लौट रहे हैं। (प्रस्थान)

चारु० : महारानी, अब क्या होगा ?

तिष्य० : कुछ नहीं। तू नूपुर उतार दे।

चारु० : (सिर हिलाकर) जो आज्ञा।

[चारु बैठकर नूपुर उतारने लगती है। एक पैर का नूपुर उतर जाता है, लेकिन दूसरे पैर का उतारने में उलझ जाता है और प्रयत्न करने पर भी नहीं उतरता। इतने में ही जयघोष के साथ महाराज अशोक का प्रवेश। तिष्य और चारु प्रणाम करती हैं। अशोक अभय मुद्रा में हाथ ऊपर करते हैं।]

अशोक : विजय, देवि ! आज युद्ध में फिर विजय ! ओह, तुम्हारी मंगल-कामनाओं में कितनी शक्ति है ! विजय, विजय, विजय ! (हाथ उठाता है।)

तिष्य० : महाराज की विजय हो !

चारु० : महाराजाधिराज की विजय हो !

अशोक : देवि, शत्रुओं की संख्या बहुत अधिक थी। हाथी और घोड़े जैसे दुर्भाग्य की तरह अड़े हुए थे, लेकिन तुम्हारी मंगल-कामना ने मुझे और मेरे वीरों को ऐसी शक्ति दी कि वे सूखे पत्तों की तरह बिखरकर चूर-चूर हो गये। मेरी शक्ति के पीछे, देवि ! तुम्हारी मंगल-कामना है। चारुमित्रा, देवी पर पुष्प-वर्षा हो।

[चारुमित्रा आगे बढ़ने के लिए पैर उठाती है कि उसके पैर का नूपुर शब्द कर उठता है।]

अशोक : (चारुमित्रा के पैरों पर दृष्टि गड़ाकर) अरे, यह क्या ? नृत्य ! संग्राम-भूमि में रंगभूमि ! (प्रश्नसूचक मुद्रा में) चारु !

चारु० : महाराज, क्षमा चाहती हूं।

अशोक : मेरी युद्धभूमि में केवल भैरवी का नृत्य हो सकता है, चारुमित्रा का नहीं।

चारु० : महाराज...

अशोक : और उस भैरवी नृत्य में तलवारों का संगीत होगा, नूपुरों का नहीं !

चारु० : महाराज...

अशोक : मेरे युद्ध के उत्साह में कोमलता भरने वाली, चारुमित्रा ! तुझे क्या पुरस्कार चाहिए—रत्नों का हार, मोती की माला ?

चारु० : मुझे दण्ड दीजिए, महाराज !

अशोक : मेरे युद्ध के उत्साह में कोमलता भरने वाली, चारुमित्रा ! तुझे दण्ड ही मिलेगा। तू इस नीति से मुझे युद्ध करने से रोकना चाहती है ? स्त्री ! कलिंग से उत्पन्न शरीर कलिंग का ही साथ देगा। विश्वासघातिनी ! चारुमित्रा !! (पुकारकर) राजुक !

[राजुक का प्रवेश]

अशोक : राजुक, चारुमित्रा जलते हुए अंगारों पर नाचना चाहती है। आग तैयार हो !

राजुक : जो आज्ञा ! (प्रणाम कर प्रस्थान)

अशोक : चारुमित्रा, दूसरे पैर में भी नूपुर पहन ले। एक पैर से पूरी ध्वनि नहीं निकलेगी। दूसरा पैर नूपुरों की प्रतीक्षा में है।

[चारु दूसरे पैर में भी नूपुर पहनने के लिए झुकती है।]

तिष्य० : महाराज !

अशोक : देवि !

तिष्य० : महाराज ! चारु का दोष नहीं है।

अशोक : देवि ! चारु का दोष नहीं है ? यह कैसी बात कहती हो ? कलिंग के शरीर में कलिंग की आत्मा का मगध के साथ क्या व्यवहार हो सकता है ? चारु जानती है कि मेरे क्रोध में उसका देश जल रहा है। वह मेरे क्रोध की ज्वाला को शान्त करने के लिए अपने संगीत और नृत्य का प्रयोग करना चाहती है। मुझे नहीं सुना सकती तो तुम्हें सुनाकर तुम्हारे द्वारा मुझमें कोमलता का संचार करना चाहती है। मैं देख रहा हूँ, तुम्हारे स्वभाव को भी उसने दया से भर दिया है।

तिष्य० : महाराज, दया करना तो स्त्री का स्वाभाविक धर्म है। चारु मुझे क्या दया से भर सकती है ? किन्तु महाराज, चारु निरपराध है। आपके वियोग के क्षणों को काटने का यह मेरा साधारण उपाय था। मैंने ही चारु को आज्ञा दी थी कि वह नृत्य करे।

अशोक : तुमने आज्ञा दी थी ?

तिष्य० : हाँ, महाराज ! युद्ध के भयानक क्षणों में स्त्री के एकाकी हृदय को कौन-सा सहारा है ? संगीत, नृत्य, चित्रकला—यही तो !

अशोक : तो चारु अपनी ओर से नृत्य करने नहीं आयी ?

तिष्य० : नहीं, महाराज ! उसे क्षमा कीजिए।

अशोक : अशोक ने किसी को भी अपराध करने पर क्षमा नहीं किया किन्तु इस समय क्षमा करता हूँ। (चारु की ओर देखकर) चारु, तुझे क्षमा करता हूँ। अच्छा हो कि तेरा नृत्य भैरवी-नृत्य बनकर मगध की विजय के लिए हो। और यदि ऐसा न कर सको तो फिर यह नृत्य अपने कलिंग के कटते हुए वीरों के रुंडों और मुंडों के लिए रहने दे। (पुकारकर) राजुक !

[राजुक का प्रवेश]

अशोक : आग तैयार हो गई ?

राजुक : जी।

अशोक : उस आग से उन कायरों को शीतल करो जो आज युद्धभूमि से पीछे हटे हैं।

राजुक : जो आज्ञा। (जाने लगता है।)

अशोक : और सुनो ! यह मत सुनना कि वे संचालन-कौशल से सावधानी के साथ पीछे हटे हैं। युद्धभूमि के अतिरिक्त प्रत्येक भूमि वीरों के लिए कलंक-भूमि है।

राजुक : जो आज्ञा ! (प्रस्थान)

अशोक : चारु ! जा, इन संगीत भरे पैरों को विश्राम की आवश्यकता है।

[चारु सिर झुकाकर जाती है।]

अशोक : देवि, कलिंग से युद्ध करते समय मुझे ज्ञात होता था जैसे पाटलिपुत्र की शक्ति से एक प्रलय उत्पन्न हुआ है, जो कलिंग को रक्त के समुद्र में डुबाना चाहता है। तक्षशिला, गान्धार, उज्जयिन के बड़े-बड़े वीर मेरी घूमती हुई दृष्टि की दिशा में ही अपनी तलवार घुमाते थे। सेना की एक-एक टुकड़ी पानी की लहर की तरह बढ़ती थी और धीरे-धीरे बड़ी होकर शत्रुओं की तलवार से टकराती थी। वे तलवार भी नहीं घुमा सकते थे। उस समय मुझे तो ऐसा ज्ञात होता था कि मेरी ललकार भी तलवार थी, जिससे सामने घूमा हुआ शस्त्र भी लक्ष्यभ्रष्ट हो जाता था।

तिष्य० : महाराज, इतना रक्तपात···

अशोक : मैंने अपनी सेना का अर्धव्यूह बनाकर आक्रमण किया था। शत्रु सोचते थे जैसे सहस्रों धूमकेतु एक विशेष आकार में कसे हुए मौत की आग लेकर आ रहे हैं। न जाने कितने शत्रु हाथियों के पैरों से पिस गये। सैकड़ों घोड़ों के पैरों में उलझकर खून से लथपथ हो गये। मालूम होता था, खून का नाला महानदी से मिलने के लिए जा रहा है।

तिष्य० : महाराज, इतना भयानक युद्ध !

अशोक : मुझ पर भी एक वीर ने तलवार चलाई। मैंने महानाग वासुकि की तरह अपना सिर बचा लिया। उसकी तलवार वायुमंडल में शून्य चक्र बनकर रह गई। अपने निष्फल हुए आक्रमण के वेग से वह मुड़ गया। उसके मुड़ते ही मैंने तलवार की नोक उसकी पसलियों में घुसेड़ दी। उसकी ललकार आह में बदलकर खून में डूब गई। वह टूटे हुए पेड़ की तरह

अशोक : देवि ! अग्नि में तपकर ही स्वर्ण पवित्र होता है। आज मेरी तलवार में शक्ति है। उसका अधिक से अधिक उपयोग होने दो।

तिष्य० : जैसी महाराज की इच्छा। लेकिन मुझे बहुत दुःख है इस क्रूरता पर। (सिर झुका लेती है।)

अशोक : (मनाते हुए) तुम दुखी हो, देवि ! नहीं, दुखी होने की क्या बात ? तुम तो दया की देवी हो, तुम्हें तो किसी के दुःख से भी दुःख होने लगता है। मैं यथाशक्ति तुम्हारे सद्भावों की रक्षा तो करता हूँ। देखो, देवि ! आज तुम्हारी दया की ढाल ने मेरे दण्ड के कृपाण को कुण्ठित कर दिया···

तिष्य० : महाराज, चारु निरपराध थी।

अशोक : रणभूमि की दृष्टि से या रंगभूमि की दृष्टि से ?

तिष्य० : महाराज, वह सेविका है, आपके चरणों की छाया में ही बड़ी हुई है।

अशोक : किन्तु आवश्यकता से अधिक बढ़ने पर उसे काटने-छाँटने की आवश्यकता होगी, देवि ! मैं अपने शिविर में शत्रु-पक्ष के किसी व्यक्ति को अब रहने की आज्ञा नहीं दे सकता।

तिष्य० : किन्तु अब वह शत्रु-पक्ष की कहाँ है, महाराज ! वह तो उस समय से आपकी सेविका है, जब कलिंग युद्ध भी नहीं छिड़ा था।

अशोक : किन्तु कृपा की दृष्टि राजनीति की दृष्टि नहीं होती, देवि ! आज युद्ध से लौटते समय मैंने चारु के सम्बन्ध में विचार किया था।

तिष्य० : युद्ध से लौटते समय ?

अशोक : हाँ, युद्ध से लौटते समय कलिंग के कुछ व्यक्ति मुझे प्रणाम कर रहे थे, मुझे उनके प्रणाम में चारु का प्रणाम दीख पड़ा। यदि इस समय चारु नृत्य न भी करती तो भी मैं उसे दंडित तो करता ही।

तिष्य० : किन्तु वह बेचारी···

अशोक : राजनीति देवी नहीं है, जो दया से तरल हो जाय। लेकिन आज तुम्हारे कहने से मैंने राजनीति को स्त्री का हृदय बना दिया।

तिष्य० : महाराज की कृपा। विश्राम कीजिए।

अशोक : देवि ! मुझे विश्राम ? पितामह चन्द्रगुप्त ने चौबीस वर्ष के शासन में कितना विश्राम किया ? तक्षशिला से मगध तक पृथ्वी का प्रत्येक कण उनकी आहट सुनकर काँपता था। बहुत से छोटे-छोटे राज्यों को एक संघ में गूँथकर उन्होंने अपनी राज्यश्री को विजय-माला पहनाई थी। सेल्यूकस निकेटर से उन्होंने गांधार और सीमाप्रांत लेकर जम्बूद्वीप के मुकुट में कुछ रत्न और जड़ दिये थे। मैं उन्हीं की संतान हूँ, देवि ! विश्राम के लम्बे क्षणों में राज्य-सीमा संकुचित हो जाती है।

तिष्य० : ठीक है महाराज, पर कलिंग युद्ध ने आपको बहुत उत्तेजित कर दिया है।

अशोक : कलिंग अपने को सम्राट् मानता है। वह पाटलिपुत्र का आधिपत्य नहीं

मानता। सुमात्रा और जावा में उसने अपने उपनिवेश स्थापित कर रखे हैं। जलयानों में विहार करता है और समझता है कि वह जम्बूद्वीप का सम्राट् है। देवि, वह मेरे शासन के मार्ग को एक स्तूप बनकर रोकना चाहता है। मैं आचार्य उपगुप्त के उपदेशों की भाँति उसे भी ठोकर मार देना चाहता हूँ।

तिष्य० : महाराज, आचार्य उपगुप्त में और कलिंग में समानता नहीं हो सकती।

अशोक : क्यों नहीं ? आचार्य उपगुप्त बौद्ध धर्म के सबसे बड़े आचार्य हैं, कलिंग विद्रोहियों का सबसे बड़ा नेता है। मैं बौद्ध धर्म और कलिंग दोनों का नाश करूंगा।

तिष्य० : क्षमा, दया, करुणा, महाराज ! आचार्य उपगुप्त कल यहां आये थे। उन्होंने कलिंग के भीषण रक्तपात को देखकर कहा था कि बुद्धि का अक्षय कोष मनुष्य, थोड़ी-सी भूमि के लिए, मनुष्यत्व को मिट्टी में मिला देना चाहता है। कलिंग के सम्बन्ध में कहा था कि अहंकार का फल यही हुआ है और होगा।

अशोक : यह व्यंग्य मुझ पर किया गया है, देवि !

तिष्य० : महाराज, उनके कथन में सत्यता है। क्या अहंकार का नाश नहीं होना चाहिए ?

अशोक : अहंकार और राज्य-धर्म में अन्तर है। राज्य-धर्म पाटलिपुत्र का अधिकार है और अहंकार कलिंग की वृत्ति है। उसे अपनी सेना का अहंकार है। उसके पास साठ हजार पैदल, सात सौ हाथी और एक हजार घुड़सवार हैं। समझता है कि वह इन्द्र का वंशज है। मैं अपनी सेना के हाथों उसके अहंकार के पौधे को उखाड़कर फेकूंगा, देवि !

तिष्य० : कितनों का रक्त बहेगा, महाराज ?

अशोक : उससे जम्बूद्वीप को नहलाकर पवित्र करना चाहता हूँ, देवि !

[नेपथ्य में भयानक तुमुल। किसी स्त्री का क्रन्दन स्वर—'अशोक का नाश हो! अशोक का सर्वनाश हो !!' प्रहरी का स्वर—'पुष्य, मार डालो इसे भी !']

तिष्य० : (कान बंद कर क्रंदन स्वर में) नहीं, महाराज ! (अशोक के वक्षस्थल में छिप जाती है।) नहीं !

अशोक : (जोर से आवाज देता है, फिर तिष्य की पीठ पर हाथ फेरकर) शान्त हो, शान्त हो—मैं अभी देखता हूँ। (तिष्य को संभालकर आसन पर बिठलाता है, फिर शिविर की खिड़की से देखता हुआ) पुष्य ! इस स्त्री को मेरे शिविर में भेजो।

[तिष्य अपने हाथों से नेत्र बन्द किये हुए है। अशोक तिष्य के हाथों को आँखों से हटा अपने हाथों में लेता है।]

अशोक : देवि ! मैं अभी देखता हूं कौन है।

तिष्य० : महाराज, मैं आपका अमंगल नहीं सुन सकती। (आकाश की ओर देखते हुए) महाराज का मंगल हो, महाराज का मंगल हो, महाराज का मंगल हो!

अशोक : कोई स्त्री है, गोद में एक बच्चे को लिये हुए है।

तिष्य० : मैं पूछूँगी, वह कौन है। क्यों ऐसी अशुभ बात मुंह से निकालती है?

अशोक : अवश्य, तुम्हीं पूछो। मैं वस्त्र बदलने जाता हूँ। (प्रस्थान)

[प्रहरी एक स्त्री को लेकर आता है। तिष्य के संकेत से प्रहरी हट जाता है। वह स्त्री लगभग पचीस वर्ष की होगी। उसके बाल और वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं। वह अपने बच्चे को गोद में लिये है। उसकी मुद्रा पागल स्त्री की तरह है।]

तिष्य० : आओ, आओ, तुम कौन हो?

स्त्री : (विस्फारित नेत्रों से एक बार ही फूटकर) ओह, रानी! अशोक का सर्वनाश हो! अशोक का सर्वनाश हो! मुझे भी मार डालो, मुझे मार डालो!

तिष्य० : ठहरो, ठहरो! तुम महाराज के सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सकती। चुप रहो। क्या चाहती हो?

स्त्री : मैं क्या चाहती हूँ? मेरे बच्चे के टुकड़े-टुकड़े कर डालो। यह अभी मरा नहीं है। (पुत्र की ओर देखकर) लाल, अभी तुम मरे नहीं हो। ये लोग तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे, तब तुम मरोगे। तब तक कुछ बोलो। बोलो, मेरे लाल! (अपने बच्चे को हाथों ही में झकझोरती है।)

[अशोक का प्रवेश। वह दूर चुपचाप इस तरह खड़ा हो जाता है कि तिष्य के पीछे है और तिष्य की दृष्टि उस पर नहीं पड़ती।]

स्त्री : (अपने बच्चे को देखकर) तेरा खून इतना मीठा है, मेरे बच्चे! राजा तक उसे पीना चाहता है। और खून हो तो अपने नन्हे-से कलेजे को सामने रख दे, ये सब मिलकर पी लें।

तिष्य० : क्या तुम्हारा बच्चा मर गया है? कैसे?

स्त्री : अशोक राक्षस ले गया मेरे बच्चे को। राज्य नहीं चाहता था मेरा लाल, लेकिन मेरे लाल को अशोक ले गया। इसे···

अशोक : (आगे बढ़कर) यह क्या कह रही हो तुम? ठीक तरह से बतलाओ, तुम्हारा न्याय होगा। यह बच्चा कैसे मरा?

स्त्री : मुझे न्याय नहीं चाहिए, नहीं चाहिए! पाटलिपुत्र से न्याय उठ गया! इसके पिता को सैनिकों ने घेरकर मारा और जब मैं इसे बचाने लगी तो इसके फूल-से कलेजे में भाला घुसेड़ दिया उन राक्षसों ने। मेरे बच्चे को राज्य नहीं चाहिए था। मेरा छोटा राजा तुम्हारा राज्य नहीं चाहता था। तब भी इसे···तब भी इसे···

अशोक : ठहरो, मैं उन दुष्टों को दण्ड दूंगा। वीरों के लिए उनका भाला है, शिशुओं के लिए नहीं।

तिष्य० : महाराज, न्याय होना चाहिए बेचारी स्त्री का ।

अशोक : होगा और अवश्य होगा ।

स्त्री : मैं अब न्याय लेकर क्या करूँगी ! लाओ महाराज, मैं तुम्हें राजतिलक कर दूँ । अपने बच्चे के खून का तिलक लगाकर···(चिल्लाकर) महाराज अशोक ! चक्रवर्ती अशोक···!

अशोक : मैं अभी न्याय करूँगा । (पुकारते हुए) पुष्य···!

[प्रहरी का प्रवेश]

अशोक : इस स्त्री को विश्राम-शिविर में ले जाकर अपराधियों की पहचान कराओ, मैं अभी आता हूँ । जाओ ! (जाने को उद्यत होता है ।) और उन अपराधियों को बंदी कर मेरे सामने उपस्थित करना । समझे !

प्रहरी : जो आज्ञा । (स्त्री से) चलो । (स्त्री को बलपूर्वक ले जाता है ।)

स्त्री : (जाते हुए, नेपथ्य में) मेरा बच्चा ! मेरा लाल !

[धीरे-धीरे शब्द क्षीण हो जाता है । कुछ देर तक स्तब्धता रहती है । अशोक विचारमग्न है ।]

तिष्य० : महाराज, मूर्च्छा-सी आ रही है ।

अशोक : देवि ! विश्राम करो । मैं अभी न्याय करूँगा ।

तिष्य० : महाराज, यह रक्तपात अब बन्द हो ।

अशोक : एक छोटी-सी घटना राज्य की बढ़ती हुई बेल को काट दे ? यह घटना तुम्हारा चित्र नहीं है, देवि ! जिसमें तूलिका के एक हलके झटके से राज्य की बेल कट जाय । देवि ! युद्ध में तो यह सब होता ही है ।

तिष्य० : महाराज, मैं क्या करूँ ?

अशोक : विश्राम करो । मैं विश्राम-शिविरों में अभी जाता हूँ । सेना के विश्राम की क्या व्यवस्था है, घायलों की क्या सुश्रूषा हो रही है, यह मुझे देखना है । (पुकारकर) राजुक !

[राजुक का प्रवेश]

अशोक : महामात्रों से कहो कि अश्व तैयार हों । उन्हें मेरे साथ नैश-निरीक्षण के लिए चलना होगा ।

राजुक : जो आज्ञा, महाराज ! (जाता है ।)

अशोक : देवि ! महाराज बिन्दुसार ने राज्य की सीमा नहीं बढ़ाई । वे कदाचित् यह उत्तरदायित्व मेरे लिए छोड़ गये हैं । सम्राट् चन्द्रगुप्त के परिश्रम की परम्परा कुछ वर्षों तक तो चले ।

तिष्य० : कब तक, महाराज ?

अशोक : जब तक कि पाटलिपुत्र का प्रवासी नागरिक, कलिंग के जनपद में निवासी होकर न रहने लगे ।

[राजुक का प्रवेश]

राजुक : महाराज, महामात्र और अश्व तैयार हैं ।

अशोक : अच्छा, जाओ ! मैं अभी आता हूँ। (तिष्य से) देवि ! आज उस स्त्री का न्याय भी करूँगा और निरीक्षण भी। सैनिकों के पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था एक साथ ही होगी। देवि ! मगंल-कामना करो कि मगध चिरंजीवी हो।

तिष्य० : महाराज, मेरे दुःख में भी मगध चिरंजीवी हो।

[अशोक का प्रस्थान]

तिष्य० : वायु के प्रवाह की भाँति सदैव अस्थिर ! अभी आये और अभी गये ! मैं क्या करूँ ? (चित्र की ओर दृष्टि डालती है।) यह चित्र ! (क्रोध से फाड़कर फेंक देती है। पुकारकर) स्वयंप्रभा !

[स्वयंप्रभा का प्रवेश। वह प्रणाम करती है।]

स्वयं० : महारानी, यह क्या ? यह चित्र किसने फाड़ दिया ? ओह...इतना सुन्दर चित्र !

तिष्य० : मैंने...मैंने इसे नष्ट कर दिया।

स्वयं० : मैं इसे जोड़ सकती हूँ।

तिष्य० : नहीं। इसे उठाकर बाहर फेंक दे।

[स्वयंप्रभा फटे हुए चित्र के टुकड़े एकत्र करती है।]

तिष्य० : स्वयंप्रभा, महाराज गये ?

स्वयं० : हाँ, महारानी ! पाँच महामात्रों के साथ अभी-अभी गये हैं।

तिष्य० : चले गये ! तू क्या कर रही थी ?

स्वयं० : महारानी, आपके सुन्दर गीतों की स्वरलिपि लिख रही थी।

तिष्य० : उसको नष्ट कर दे। महाराज यह सब कुछ नहीं चाहते।

स्वयं० : महारानी, बड़े सुन्दर गीत हैं।

तिष्य० : इस विषय में बात मत कर; जा।

[स्वयंप्रभा जाना चाहती है।]

तिष्य० : चारु कहाँ है ?

स्वयं० : महारानी, अभी तो यहीं थी। कदाचित् शिविरकक्ष में हो।

तिष्य० : रो रही थी ?

स्वयं० : महारानी, उदास तो बहुत थी। ज्ञात होता था कि उसके आँसू सूख गये हैं, किन्तु हृदय रो रहा है।

तिष्य० : तूने उससे बातें कीं ?

स्वयं० : महारानी, आपके गीतों की स्वरलिपि पूछी, वह कुछ भी नहीं कह सकी।

तिष्य० : बेचारी चारु ! आज चारु पर महाराज बहुत अप्रसन्न हुए।

स्वयं० : महारानी, उससे कभी कोई अपराध तो हुआ नहीं।

तिष्य० : कहते थे कि वह कलिंग की है, शत्रु-पक्ष की।

स्वयं० : महारानी, आज तक महाराज की सेवा उसने जितनी श्रद्धा और भक्ति से की है, उतनी पाटलिपुत्र की किसी सेविका ने नहीं। वह तो सम्राट् के अंतःपुर की अंगरक्षिका है।

य० : हाँ, मैं भी यही समझती हूँ।

यं० : महारानी, सम्राट् की इच्छा ही उनके कार्य का मान है। वह कैसे विश्वास-घातिनी हो सकती है?

ष्य० : कहते थे, राजनीति की दृष्टि प्रेम की दृष्टि नहीं है।

यं० : महारानी, राजनीति भी कोई राजनीति है, यदि उससे सच्ची सेवा और सच्चे प्रेम में संदेह उत्पन्न हो जाय?

ष्य० : यही संदेह तो शायद उनके जीवन की सफलता है। उन्होंने बड़े से छोटे से छोटे कार्य को अपनी शक्ति से छिन्न-भिन्न कर दिया है। आज मेरी प्रार्थना पर ही चारु को क्षमा किया।

स्वयं० : महारानी, आपकी करुणा ने महाराज की शक्ति के साथ रहकर राज्य को संतुलित किया है।

तिष्य० : स्वयंप्रभा, आज मेरी करुणा सीमा तक पहुँच गई।

स्वयं० : कैसे, महारानी?

तिष्य० : एक स्त्री के छोटे से बच्चे को सैनिकों ने मार डाला।

स्वयं० : हाँ, महारानी! मैंने भी सुना।

तिष्य० : महाराज न्याय करने गये हैं। देखें, क्या न्याय करते हैं। मैं तो आज बहुत अशान्त हूँ।

स्वयं० : महारानी, विश्राम कीजिये…

[नेपथ्य में—'बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि।']

स्वयं० : आचार्य उपगुप्त का कंठ-स्वर है, महारानी!

तिष्य० : (स्वस्थ होकर) जाकर उन्हें यहाँ ले आ। मैं बहुत विह्वल हो रही हूँ।

स्वयं० : जो आज्ञा, महारानी। (जाती है।)

तिष्य० : (अपने आप मंद कंठ स्वर से) महात्मा उपगुप्त…

[सम्हलकर उठती है और स्वयं आसन ठीक करती है। प्रतीक्षा-दृष्टि से द्वार की ओर देखती है। स्वयंप्रभा के साथ महात्मा उपगुप्त का प्रवेश। महात्मा उपगुप्त बौद्ध भिक्षु के वेश में हैं। पीत वस्त्र धारण किए हुए। हाथ में भिक्षा-पात्र।]

तिष्य० : प्रणाम करती हूँ, भंते!

उप० : (अभय हस्त उठाकर) सुखी रहो, देवि! क्या महाराज नहीं हैं?

तिष्य० : भंते! वीर पुरुष घर पर नहीं रहते। रणक्षेत्र ही उनका घर है।

उप० : देवि! रणक्षेत्र हृदय को शान्ति नहीं दे सकता। तथागत ने कहा है—अहंकार और एषणा का नाश करो। यह युद्ध अधिकार-लिप्सा है, इसका अंत नहीं है, देवि!

तिष्य० : भंते! आपका उपदेश महाराज के कानों तक पहुँचा?

उप० : देवि! महाराज नीतिकुशल हैं। मेरी बातें सुनते हैं। मुसकराकर कहते हैं—

आप थक गये होंगे, भंते ! विश्रामगृह आपकी प्रतीक्षा कर रहा है ।

तिष्य० : भंते ! यह युद्ध वन्द होना चाहिए । मैं इस अत्याचार को सहन नहीं कर सकती ।

उप० : देवि ! इस अत्याचार को कौन सहन कर सकता है ? एक लाख वीर तो रणक्षेत्र में मर गये । तीन लाख घायल हुए हैं, जो एक लाख के पथ का अनुसरण करना चाहते हैं । देवि ! रक्त की नदियाँ वह निकली हैं जो महानदी की समानता करने को अग्रसर हैं । कलिंग राज्य के घर फूल की पँखुड़ियों की तरह गिर रहे हैं । देवि ! तुम कुछ नहीं कर सकतीं ?

तिष्य० : भंते ! आज मैं रानी न होकर एक साधारण स्त्री होती तो किसी प्रकार आत्म-वलिदान कर महाराज के मन की दशा वदल देती । पत्नी होकर पति के मार्ग की वाधिका वनने का साहस मुझमें नहीं होता । राजवंश की मर्यादा कैसे नष्ट करूँ ? भंते ! मैं रानी होकर सावारण स्त्री भी नहीं रही ।

उप० : देवि ! शान्त हों । जव तक मनुष्य आर्य सत्य से परिचित नहीं होता, उसे दु:ख उठाना ही पड़ता है । तथागत ने कहा है, 'भिक्खुओ, मैं सव वन्धनों—लौकिक और अलौकिक—से मुक्त हो गया । अनेक के लाभ के लिए विचरण करो, अनेक के हित के लिए विचरण करो, संसार के प्रति करुणा के लिए विचरण करो, देवताओं और मनुष्यों के कल्याण के लिए विचरण करो ।' देवि ! मुझे विश्वास है, महाराज अशोक इस धर्म-शिक्षा को मानकर संसार का कल्याण करेंगे ।

तिष्य० : भंते ! मुझे तो विश्वास नहीं होता ।

उप० : समय की प्रतीक्षा करो । महाराज में परिवर्तन होगा । जव किसी व्यक्ति में शक्ति की क्षमता होती है तो बुरे मार्ग से अच्छे मार्ग पर और अच्छे मार्ग से बुरे मार्ग पर जाने में विलम्ब नहीं लगता । महाराज में शक्ति की क्षमता है और वे बुरे मार्ग पर हैं । किसी भयानक भावना से उनके हृदय का दिशा-परिवर्तन संभव है । वे विजय के आकांक्षी हैं, विजय प्राप्त करें; किन्तु हिंसा से नहीं, अहिंसा से । वे शासन करना चाहते हैं, करें; किन्तु क्रोध से नहीं, करुणा से । विनाश करें; किन्तु जाति का नहीं, अपनी तृष्णा का । वे ज्ञान-प्राप्ति में प्रयत्नशील हों, राज्य-प्राप्ति में नहीं । ज्ञान अमर है, राज्य क्षणभंगुर है ।

तिष्य० : महाभिक्षु, आपका उपदेश सुनकर हृदय को शांति मिलती है ।

उप० : शांति लाभ करो, देवि ! यही पथ निर्वाण का है । अच्छा, देवि ! अव मैं जाऊँगा । (उठ खड़े होते हैं ।)

तिष्य० : भंते ! आशीर्वाद दीजिए कि राज्य में शांति हो ।

उप० : ऐसा ही हो ।

तिष्य० : भंते ! भिक्षा स्वीकार कीजिए । मैं अपने हाथ से लाऊँगी ।

[तिष्य वाहर जाती है ।]

स्वयं० : भंते ! आपसे एक प्रार्थना करना चाहती हूँ !

उप० : कैसी ?

स्वयं० : भंते ! आप चारु को तो जानते हैं ?

उप० : हाँ, हाँ । महाराज की सेवा में सतत रहने वाली ।

स्वयं० : आज वह बहुत दुखी है ।

उप० : क्यों ?

स्वयं० : महाराज का उस पर से विश्वास उठ गया है ।

उप० : इसलिए कि वह कलिंग-बालिका है ?

स्वयं० : हाँ ।

उप० : तो उसके लिए उचित तो यही है कि वह महाराज की सेवा और भी संलग्नता के साथ करे । संदेह को सेवा से नष्ट कर दे । वह इस समय कहाँ होगी ?

स्वयं० : महाराज के बाहरी शिविर में ।

उप० : अच्छा, मैं उससे मिलता जाऊँगा । उसे संतोष और शांति देकर फिर मैं संघाराम जाऊँगा ।

स्वयं० : भंते ! बड़ी कृपा होगी आपकी ।

उप० : यह तो तथागत की आज्ञा है ।

[तिष्य भिक्षा लेकर आती है ।]

तिष्य० : मुझे अपने हाथों से आपकी सेवा में मधुकरी लाने में विशेष हर्ष होता है, भंते !

उप० : तुम सुखी रहो, देवि !

[तिष्य उपगुप्त को मधुकरी देती है ।]

उप० : अच्छा, अब जाऊँगा ।

तिष्य० : भंते ! प्रणाम ।

उप० : सुखी रहो ।

तिष्य० : स्वयं ! महाभिक्षु को शिविर-द्वार तक पहुँचा दो ।

स्वयं० : जो आज्ञा ।

[स्वयंप्रभा का उपगुप्त के साथ प्रस्थान]

तिष्य० : (सोचते हुए) तिष्य, तेरी दशा एक कीड़े की तरह है, जो ऐसी लकड़ी में रहता है जिसके दोनों ओर आग लग रही है । तू कहाँ रहेगी ?

[स्वयंप्रभा का प्रवेश]

स्वयं० : महारानी ! भंते जाते समय आपके लिए स्वस्ति-वचन कह गये हैं ।

तिष्य० : तथागत को प्रणाम । स्वयंप्रभा, या तो मैं संघाराम चली जाऊँगी या वनवासिनी हो जाऊँगी ।

स्वयं० : महारानी ! आप शांत हों ।

तिष्य० : नहीं, स्वयंप्रभा ! अब मुझे इस राज्यश्री से घृणा हो रही है ।

के लिए कितने मनुष्यों की वलि देनी पड़ रही है। रात-दिन युद्ध की बातें सुनते-सुनते जैसे मेरी श्रवण-शक्ति विद्रोह कर रही है। अब मैं और कुछ सुनना नहीं चाहती। देख, कितनी अच्छी वनश्री है। यहाँ के पेड़ और पर्वत कैसे सुख में दीख पड़ रहे हैं ! ये तो किसी से लड़ने नहीं जाते, किसी का खून नहीं बहाते, लेकिन रात-दिन इन पर हरियाली छाई रहती है, फूल खिलते रहते हैं, निर्भर इनके चरणों को धोते रहते हैं। इन्हें किस बात की कमी है ! यह मनुष्य ही रात-दिन न जाने किस सुख के लिए दूसरे का सुख नष्ट करने में जुटा रहता है, खून की नदियाँ बहाता है।

स्वयं० : महारानी ! जीवन का सत्य यही है।

तिष्य० : और स्वयंप्रभा, अगर मैं स्त्री न होकर इसी पास के पेड़ की एक कली होती, तो आनन्द के साथ वसंत के किसी प्रातःकाल में खिलकर सारे संसार को एक बार हँसती हुई आँखों से देख लेती और शाम होने पर सूर्य के पीछे-पीछे मैं चली जाती। स्त्री होकर और महारानी होकर मैं सुखी नहीं हूँ स्वयंप्रभा ! जीवन के सत्य से बहुत दूर जो जा पड़ी हूँ।

स्वयं० : महारानी, आपका हृदय शान्त हो।

तिष्य० : स्वयंप्रभा ! कैसे शान्त हो ? शान्ति का उपाय करने के बदले मैं अशांति की लहरों में बही जा रही हूँ। पास में कोई कूल-किनारा नहीं है। मालूम होता है, युद्ध की समाप्ति होते-होते मेरा जीवन भी समाप्त हो जायगा।

स्वयं० : महारानी, दुखी न हों। ऐसी बातें न करें।

तिष्य० : मैं महाराज के सामने बहुत साहस कर कुछ बातें कहना चाहती हूँ। या तो मैं कह नहीं सकती या महाराज की दृष्टि मुझे कहने नहीं देती। साहस कर दो-एक शब्दों में यदि कुछ कहती भी हूँ, तो महाराज की वीरता की लहर में मेरे शब्द बुद्‌बुद् की भाँति वह जाते हैं।

स्वयं० : महारानी, आप जो कुछ भी कह सकती हैं, महाराज के सामने उतना कहने की शक्ति संसार के किसी व्यक्ति में नहीं है।

तिष्य० : किन्तु उसका परिणाम कुछ नहीं, स्वयंप्रभा ! चारु को बुलायेगी ?

[नेपथ्य में 'महाराज अशोक की जय !']

तिष्य० : स्वयंप्रभा, रहने दे। किसी को मत बुला। महाराज आ रहे हैं।

[चिंतित मुद्रा में अशोक का प्रवेश। तिष्य प्रणाम करती है। स्वयंप्रभा अधिक झुककर प्रणाम करती है।]

अशोक : देवि ! न्याय नहीं हो सका।

तिष्य० : महाराज ! उस स्त्री का न्याय ?

अशोक : हाँ, देवि ! वह स्त्री उसी शिविर में आत्महत्या करके मर गई।

तिष्य० : मर गई ? (करुण स्वर में) आह, बेचारी स्त्री !

अशोक : मैंने पुष्य को आज्ञा दी थी कि वह उस स्त्री को विश्राम-शिविर में ले जाकर खड़ी कर दे। शिविर का प्रत्येक सैनिक उसके सामने आये और

वह स्त्री उस सैनिक को पहचाने, जिसने उसके शिशु की छाती में भाला घुसेड़ दिया था। मुझे ज्ञात हुआ कि १२३ सैनिक घरों में घुसे थे। उन्हीं १२३ सैनिकों के भाग्य का निर्णय था, किन्तु उस स्त्री ने १७ सैनिकों के आने पर एक बार अपने बच्चे को चूमा, हृदय से चिपटा लिया और अठारहवें सैनिक की कमर से छूरी निकालकर स्वयं अपने हृदय में भोंक ली। पुष्य उसे रोक नहीं सका और वह खून की नदी में तड़पने लगी। देवि! उसने मेरे न्याय पर विश्वास नहीं किया। उसने मेरी राज्यसत्ता से बढ़कर अपने बच्चे को समझा!

तिष्य० : महाराज, माता का हृदय संसार के किसी वैभव से नहीं तुल सकता। वह सबसे बड़ा है।

अशोक : किन्तु माता के हृदय में विशालता भी तो होती है।

तिष्य० : पहले वह अपने बच्चे के लिए होती है, महाराज! आप अनुमान कर लीजिये कि इस युद्ध में जितने वीरों की मृत्यु हुई है, उनकी माताओं के हृदय की क्या दशा होगी!

अशोक : मैं देख रहा हूँ, देवि! आज एक बच्चे की जननी ने मेरे सारे साम्राज्य को तुच्छ सिद्ध कर दिया।

तिष्य० : महाराज जम्बूद्वीप के सबसे बड़े वीर हैं।

अशोक : देवि! आज विश्राम-शिविर में जाने पर ज्ञात हुआ कि एक लाख से अधिक सैनिक अभी तक युद्ध में मारे जा चुके हैं जिनमें बहुत अधिक संख्या कलिंग के सैनिकों की है। तीन लाख सैनिक घायल हुए हैं। उनकी माताओं के हृदय की क्या अवस्था होगी!

तिष्य० : (आश्चर्य और दुःख के स्वर में) महाराज, चार लाख वीर इस संग्राम की बलि हुए हैं।

अशोक : जब कलिंग-नरेश को ज्ञात हुआ कि चार लाख वीर संग्राम की बलि हुए हैं, तब उसने यह संधि-पत्र भेजा है। (संधि-पत्र खोलते हुए) आज पाटलिपुत्र की विजय हुई। किन्तु देवि! उस स्त्री की आत्महत्या ने मेरा ध्यान संग्राम में मरे हुए वीरों की माताओं की ओर आकर्षित कर दिया है और मेरी विजय में जैसे उल्लास के बदले अभिशाप तड़प रहा है।

[बाहर कोलाहल होता है। "चारु!" "चारु!", "क्या हुआ?", "अभी प्राण शेष हैं", "कहां चोट लगी है?", "यह कैसे हुआ?," "शान्त-शान्त!" की आवाज़ें आती हैं।]

अशोक : (चौंककर) यह कैसा शब्द! (पुकारकर) राजुक!

[राजुक का प्रवेश]

राजुक : महाराज, चारुमित्रा का मूर्च्छित शरीर बाहर है।

अशोक : (पुनः चौंककर) चारुमित्रा का मूर्च्छित शरीर?

तिष्य० : आह! चारु! (सिर झुकाकर बैठ जाती है।)

राजुक : हाँ, उन्हें तलवार का गहरा घाव लगा है। आचार्य उपगुप्त उनके साथ हैं।

अशोक : शीघ्र भीतर लाओ।

[चारुमित्रा का शरीर लेकर दो प्रहरी आते हैं। साथ में उपगुप्त भी हैं।]

अशोक : महाभिक्षु को अशोक का प्रणाम ! भंते ! यह क्या ? (प्रहरियों से) यह शरीर नीचे रख दो ! ओह, चारुमित्रा ! (प्रहरी शरीर रख देते हैं।)

तिष्य० : ओह ! मेरी चारु ! मेरी चारु !!

उप० : देवि ! शान्त हों। महाराज, यह चारुमित्रा की स्वामिभक्ति का प्रमाण है।

अशोक : स्वामिभक्ति ! कैसी स्वामिभक्ति ? अभी जीवित है चारु ?

उप० : महाराज, अभी जीवित तो है, पर वह अचेतावस्था में है।

तिष्य० : भंते ! क्या हुआ ? क्या हुआ ?

उप० : देवि ! शान्त हों। चारुमित्रा ने आज संसार के सामने यह घोषित कर दिया कि एक नारी में कितनी शक्ति है, कितनी क्षमता है !

अशोक : किस प्रकार, भंते ?

उप० : मैंने सुना था, आपने चारुमित्रा पर अविश्वास किया था ?

अशोक : हाँ, वह कलिंग की अधिवासिनी थी। अविश्वास होना स्वाभाविक था।

उप० : किन्तु, महाराज ! उसने बाल्यावस्था से आपकी सेवा की थी और आज उसी सेवा से उसने अपने कलिंग को अमर बना दिया।

अशोक : मैं उत्सुक हूँ, भंते ! चारु के सम्बन्ध में सुनने के लिए।

उप० : महाराज ! जम्बूद्वीप जानता है कि आपने रक्त की नदी बहाकर कलिंग युद्ध में कितने वीरों को रणक्षेत्र में सुला दिया है। आपने रक्त की नदी से कलिंग की भूमि को लाल कर दिया है। और अब तो आपकी विजय निश्चित है।

अशोक : मैंने विजय प्राप्त कर ली, महाभिक्षु ! यह संधिपत्र है।

उप० : महाराज ! इस संधिपत्र से अधिक मूल्यवान चारु का बलिदान है।

अशोक : (आश्चर्य से) बलिदान !

तिष्य० : मेरी चारु ने अपना बलिदान कर दिया ?

उप० : हाँ, महारानी ! महाराज के अविश्वास से उसे हार्दिक दुःख हुआ था। आज वह महाराज के बाहरी शिविर में महाराज से आज्ञा लेकर चली जाती और महानदी की लहरों में विश्राम करती, किन्तु उसके पूर्व ही उसे विश्राम करने का अवसर मिल गया।

अशोक : किस प्रकार ? शीघ्र बतलाइये।

उप० : महाराज ! यदि चारुमित्रा के चरित्र-गान में कुछ विलम्ब लग जाय, तो आप धैर्य रखें। उसका चरित्र ही ऐसा है। आज चारुमित्रा आपके बाहरी शिविर में आपके लौटने की प्रतीक्षा कर रही थी, किन्तु सम्भवतः आपके लौटने में देर हुई।

अशोक : हाँ, आज मैं शिविरों के निरीक्षण के लिए चला गया था। अभी तक मैं अपने बाहरी शिविर में शयन के लिए नहीं पहुंचा।

उप० : महाराज! उस शिविर में आप पर आक्रमण करने के लिए कलिंग के कुछ सैनिक छिपे हुए थे। वे संध्या से ही मगध-सैनिकों के वस्त्र में शिविर में घूम रहे थे। चारुमित्रा को उन पर संदेह हुआ। उसने बातें कर यह जान लिया कि वे कलिंग के सैनिक हैं।

अशोक : (आश्चर्य से) फिर ?

उप० : महाराज! देवी चारुमित्रा ने उन्हें धिक्कारते हुए कहा, 'कायरो! तुम लोग मेरे देश कलिंग के नाम को कलंकित करने वाले हो! यदि महाराज अशोक को मारना है, तो युद्ध में तलवार लेकर क्यों नहीं जाते ? यहाँ चोरों की तरह घुमकर एक वीर पुरुष से छल करते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आती ?'

अशोक : चारुमित्रा ! तुम धन्य हो ! तुम देवी हो !

उप० : महाराज ! उन सैनिकों ने चारुमित्रा को लालच दिया, कलिंग की विजय का स्वप्न दिखलाया, किन्तु चारुमित्रा ने कहा, 'मैं अपने स्वामी से विश्वासघात नहीं कर सकती। मैं देशभक्ति को जितना आदर देती हूँ, उतना ही स्वामिभक्ति को !'

अशोक : चारु ! तू अमर हो !

उप० : महाराज! चारु निश्चय ही अमर होगी। उसने उन सैनिकों को हट जाने के लिए ललकारा। जब वे नहीं हटे तो कक्ष में टँगी हुई आपकी तलवार लेकर उसने उन सैनिकों पर आक्रमण कर दिया।

तिष्य० : धन्य, चारु ! चारु सैनिक भी है।

उप० : हाँ, देवि ! दो सैनिक तो घायल होकर भाग गये, लेकिन एक सैनिक की तलवार चारु के कंधे पर लगी और वह गिर पड़ी। उसी समय मैं पहुँचा। वह कायर वहाँ से भागकर पास की झाड़ी में छिप गया। देवि ! चारु ने अचेत होने से पहले सारी कथा मुझे टूटे-फूटे शब्दों में सुनाई थी।

अशोक : धन्य है चारु ! आज तूने अपने देश कलिंग को अमर कर दिया।

तिष्य० महाराज, मेरी चारु···

अशोक : महारानी, अधीर मत हो। चारु ने जो कार्य किया है, वह नारी जाति के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। और सुनो, देवि ! आज से अशोक ने···अत्याचारी अशोक ने युद्ध को सदैव के लिए छोड़ दिया। (तलवार-भूमि पर फेंक देता है।)

सब : महाराज अशोक की जय !

अशोक : महाभिक्षु, आज से मैं हिंसा किसी रूप में न करूँगा। और देखूँगा कि मनुष्य का रक्त इस पृथ्वी पर न पड़े। प्रत्येक स्थान पर, सिंहासन पर, अंतःपुर में, विहार में, मैं जनता की सेवा करूँगा। आज

कर्तव्य होगा कि मैं सब जीवों की रक्षा का अधिक से अधिक प्रबन्ध करूँ।

उप० : देवानामप्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक का कल्याण हो !

अशोक : मेरे आदेशों को शिलालेखों के रूप में लिखवाकर समस्त जम्बूद्वीप में प्रचार कर दो कि अशोक आज से उनकी रक्षा करने वाला उनका बन्धु है।

चारु० : (मूर्च्छा दूर होने पर) महाराज अशोक की जय !

तिष्य० : ओह, चारु ! चारु, तू अच्छी है ?

अशोक : चारुमित्रा की जय ! चारु !

चारु० : महाराज, क्षमा ! आपकी आज्ञा थी कि मैं मगध की ओर से तलवारों के साथ भैरवी-नृत्य सीखूँ। पूरी तरह नहीं सीख सकी, क्षमा हो !···क्षमा !

अशोक : चारुमित्रा, तू पाटलिपुत्र की शोभा है, उनके गौरव की विभूति है !

चारु० : महाराज ! आग के अंगारों पर नाचने का अवसर तो आपने नहीं दिया—अब मैंने अंगारों पर अपनी देह रखने का अवसर आपसे माँग लिया। (तिष्य से) क्षमा करें, देवि !

तिष्य० : ओह, चारु ! तू अच्छी हो जायगी।

चारु० : नहीं, देवि ! (शिथिल स्वर में) महाराज अशोक की जय !

[आँखें बन्द कर लेती है। अशोक अवाक् हो चारुमित्रा की ओर देखते रह जाते हैं।]

अशोक : चारु ! तु मरेगी नहीं और जब मैंने आजीवन प्राणियों की सुरक्षा का व्रत ले लिया है, तो तेरे जीवन की सुरक्षा में मैं अपनी सारी शक्ति लगा दूँगा। मगध-साम्राज्य के चिकित्सक तेरे जीवन की रक्षा करेंगे और समस्त जम्बूद्वीप के संघाराम तेरे जीवन की मंगलकामना !

[नेपथ्य में 'संघं शरणं गच्छामि ! धम्मं शरणं गच्छामि ! बुद्धं शरणं गच्छामि ! देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी सम्राट् अशोक की जय !']

लक्ष्मी का स्वागत

उपेन्द्रनाथ अश्क

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' मँजे हुए और सिद्धहस्त कहानी-लेखक और उपन्यासकार ही नहीं, उच्च कोटि के कवि और नाटककार भी हैं। आपकी नाटक-कला में कुछ विचित्र-सा अपनापन है। कुछ ऐसी चीज जो हमारे आस-पास के जीवन की लगती है, कदाचित् इसलिए कि आपके नाटकों के कथानक प्रायः दैनिक जीवन से चुने हुए होते हैं और आपके पात्र सिनिक, न्युराटिक, प्रेम-वीर या असाधारण न होकर यथार्थ जीवन ही में हमारे इर्द-गिर्द घूमते दिखाई देते हैं।

यही कारण है कि अति-साधारण-सी प्रतीत होने वाली घटनाएँ अथवा अत्यन्त ऊबड़-खाबड़ कथानक अश्क जी के कुशल हाथों द्वारा बन-सँवरकर सुन्दर और प्रभावोत्पादक एकांकी के रूप में हमारे सामने आते हैं। अश्क जी के एकांकी सुपाठ्य ही नहीं, पूर्ण रूप से अभिनेय भी होते हैं।

अश्क जी का प्रथम एकांकी 'पापी' था। तब से लेकर अब तक आप हिन्दी-एकांकी-साहित्य को मौलिक, सोद्देश्य और कलापूर्ण रचनाओं से अनवरत भर रहे हैं।

रचनाएँ

'छींटे', 'चरवाहे', 'सितारों के खेल', 'गिरती दीवारें', 'दो धारा', 'पिंजरा', 'पत्थर-अल-पत्थर', 'देवताओं की छाया में', 'बड़ी-बड़ी आँखें', 'पक्का गाना', 'ये आदमी, ये चूहे', 'पैंतरे', 'अंजो दीदी', 'छटा बेटा', 'परदा उठाओ, परदा गिराओ', 'पच्चीस श्रेष्ठ एकांकी', 'क़ैद और उड़ान', 'शहर में घूमता आईना' आदि।

पात्र

रौशन : एक शिक्षित युवक
सुरेन्द्र : उसका मित्र
भावी : उसका छोटा भाई
पिता : रौशन का बाप
माँ : रौशन की माता
अरुण : रौशन का बीमार बच्चा

स्थान : जिला जालन्धर के इलाके में मध्यम श्रेणी के एक मकान का दालान।
समय : नौ-दस बजे सुबह।

दालान में सामने की दीवार से मेज लगी है, जिसके इस ओर एक पुरानी कुर्सी पड़ी है। मेज पर बच्चों की किताबें बिखरी पड़ी हैं।

दीवार के दाएँ कोने में एक खिड़की है, जिस पर मामूली छींट का पर्दा लगा है, बाएँ कोने में एक दरवाजा है, जो सीढ़ियों में खुलता है।

दायीं दीवार में एक दरवाजा है, जो कमरे में खुलता है, जहाँ इस वक्त रौशन का बच्चा अरुण बीमार पड़ा है।

दीवारों पर बिना फ्रेम के सस्ती तसवीरें कीलों से जड़ी हुई हैं।

छत पर कागज का एक फानूस लटक रहा है। पर्दा उठने पर सुरेन्द्र खिड़की में से बाहर की तरफ देख रहा है। बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। हवा की सायँ-सायँ और मेंह के थपेड़े सुनाई देते हैं।

कुछ क्षण बाद वह खिड़की का पर्दा छोड़कर कमरे में घूमता है, फिर जाकर खिड़की के पास खड़ा हो जाता है और पर्दा हटाकर बाहर देखता है।

दायीं ओर से कमरे में रौशनलाल दाखिल होता है।

रौशन : (दरवाजे को धीरे से बन्द करके) डाक्टर अभी नहीं आया ?
सुरेन्द्र : नहीं।
रौशन : वर्षा हो रही है।
सुरेन्द्र : मूसलाधार ! इन्द्र का क्रोध अभी शान्त नहीं हुआ।
रौशन : शायद ओले भी पड़ रहे हैं।
सुरेन्द्र : हाँ, ओले भी पड़ रहे हैं।
रौशन : भापी पहुँच गया होगा।
सुरेन्द्र : हाँ, पहुँच ही गया होगा। यह वर्षा और ओले ! बाज़ारों में घुटनों तक से कम पानी न होगा।
रौशन : लेकिन अब तक उन्हें आ जाना चाहिए था। (स्वयं बढ़कर खिड़की के पर्दे को हटाकर देखता है, फिर पर्दा छोड़कर वापस आ जाता है।) अरुण की तबीयत गिर रही है।
सुरेन्द्र : (चुप)।
रौशन : (उसकी साँस जैसे हर घड़ी रुकती जा रही है, उसका गला बैठता जा रहा है, उसकी आँखें खुली हैं पर वह कुछ कह नहीं सकता [illegible] असहाय-सा चुपचाप बिटर-बिटर ताक रहा है। आँखें लाल [illegible] है।) सुरेन्द्र, जब वह साँस लेता है तो उसे बड़ा ही कष्ट [illegible]

कलेजा मुंह को आ रहा है। क्या होने को है, सुरेन्द्र ?

सुरेन्द्र : हौसला करो ! अभी डाक्टर आ जायेगा। देखो, दरवाजे पर किसी ने दस्तक दी है।

[दोनों कुछ क्षण तक सुनते हैं। हवा की सायँ-सायँ।]

रौशन : नहीं, कोई नहीं, हवा है।

सुरेन्द्र : (सुनकर) यह देखो, फिर किसी ने दस्तक दी।

[रौशन बढ़कर खिड़की से देखता है, फिर वापस आ जाता है।]

रौशन : सामने के मकान का दरवाजा खटखटाया जा रहा है।

[रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र कुर्सी से पीठ लगाये छत में हिलते हुए फानूस को देख रहा है।]

सुरेन्द्र : यह मामूली बुखार नहीं, यह गले की तकलीफ साधारण नहीं, मेरा तो दिल डर रहा है—कहीं अपनी माँ की तरह अरुण भी तो धोखा न दे जायेगा ? (गला भर आता है।) तुमने उसे नहीं देखा, साँस लेने में उसे कितना कष्ट हो रहा है !

[हवा की सायँ-सायँ और मेंह के थपेड़े]

रौशन : यह वर्षा-आँधी, ये मेरे मन में हौल पैदा कर रहे हैं। कुछ अनिष्ट होने को है। प्रकृति का यह भयानक खेल, यह मौत की आवाज़ें···

[विजली जोर से कड़क उठती है। दरवाजा जरा-सा खुलता है। माँ झाँकती है।]

माँ : रौशी, दरवाजा खोलो। आओ, देखो, शायद डाक्टर आया है। (दरवाजा बन्द करके चली आती है।)

: सुरेन्द्र···

[सुरेन्द्र तेजी से जाता है। रौशन बेचैनी से कमरे में घूमता है। सुरेन्द्र के साथ डाक्टर और भापी प्रवेश करते हैं। भापी के हाथ में इन्जेक्शन का सामान है।]

क्टर : क्या हाल है बच्चे का ? (बरसाती उतारकर खूँटी पर टाँगता है और रूमाल से मुंह पोंछता है।)

शन : आपको भापी ने बताया होगा। मेरा तो हौसला टूट रहा है। कल सुबह उसे कुछ ज्वर हुआ और साँस में तकलीफ हो गई और आज तो वह बेहोश-सा पड़ा है, जैसे अन्तिम साँसों को जाने से रोक रखने का भरसक प्रयास कर रहा है।

क्टर : चलो, चलकर देखता हूँ।

[सब बीमार के कमरे में चले जाते हैं। बाहर दरवाजे के खटखटाने की आवाज़ आती है। माँ तेजी से प्रवेश करती है।]

माँ : भापी ! भापी !

[बीमार के कमरे से भापी आता है।]

माँ : देखो भापी, बाहर कौन दरवाजा खटखटा रहा है ? (आँखों में चमक आ जाती है।) मेरा तो खयाल है वही लोग आये हैं। मैंने रसोई की खिड़की से देखा है। टपकते हुए छाते लिये और बरसातियाँ पहने…

भापी : वही कौन ?

माँ : वही जो सरला के मरने पर अपनी लड़की के लिए कह रहे थे। बड़े भले आदमी हैं। सुनती हूँ, सियालकोट में उनका बड़ा काम है। कराची [illegible] में भी…

[जोर-जोर से कुण्डी खटखटाने की निरन्तर आवाज आती है। भापी भागकर जाता है। माँ खिड़की में जा खड़ी होती है। बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। सुरेन्द्र तेजी से प्रवेश करता है।]

सुरेन्द्र : भापी कहाँ है ?

माँ : बाहर कोई आया है, कुण्डी खोलने गया है।

[सुरेन्द्र फिर तेजी से वापस चला आता है। माँ एक बार पर्दा उठाकर खिड़की से झाँकती है, फिर खुशी-खुशी कमरे में घूमती है। भापी दाखिल होता है।]

माँ : कौन है ?

भापी : शायद वही हैं। नीचे बिठा आया हूँ, पिताजी के पास, तुम चलो।

माँ : क्यों ?

भापी : उनके साथ एक स्त्री भी है।

[माँ जल्दी-जल्दी चली जाती है। सुरेन्द्र कमरे का दरवाजा [illegible] खोलकर देखता है और आवाज देता है।]

सुरेन्द्र : भापी !

भापी : हाँ।

सुरेन्द्र : इधर आओ।

भापी कमरे में चला जाता है। कुछ क्षण के लिए [illegible] बाहर मेंह बरसने और हवा के थपेड़ों से किवाड़ों के खड़खड़ाने [illegible] कमरे में फानूस के हिलने की सरसराहट। डाक्टर, सुरेन्द्र, [illegible] बाहर आते हैं।]

रौशन : डाक्टर साहब, अब बताइये।

डाक्टर : (अत्यधिक गम्भीरता) बच्चे की हालत नाजुक है।

रौशन : बहुत नाजुक है ?

डाक्टर : हाँ।

रौशन : कुछ नहीं हो सकता ?

डाक्टर : परमात्मा के घर कुछ कमी नहीं, लेकि

खन्नाक[1] में तत्काल डाक्टर को बुलाना चाहिए।

रौशन : हमें मालूम ही नहीं हुआ, डाक्टर साहब। कल शाम को इसे बुखार हो आया, गले में भी इसने बहुत कष्ट महसूस किया। मैं डाक्टर जीवाराम के पास ले गया, वही जो हमारे बाजार में हैं। उन्होंने गले में आयरन-ग्लिसरीन पेंट कर दी और फीवर-मिक्श्चर बना दिया। बस दो बार दवा दी, इसकी हालत पहले से भी खराब हो गई। शाम को यह कुछ बेहोश-सा हो गया। मैं भागा-भागा आपके पास गया, पर आप मिले नहीं, तब रात को भापी को भेजा, फिर भी आप न मिले। डाक्टर जीवाराम आये थे, पर मैं उनकी दवा देने का हौसला न कर सका और फिर यह झड़ी लग गई। (जरा-कांपता है।)

—ओले, आँधी और तूफान ! ऐसी प्रलयकारी वर्षा कभी न देखी थी।

[बाहर हवा की सायँ-सायँ सुनाई देती है। डाक्टर सिर नीचा किये खड़ा है। रौशन उत्सुक नजरों से उसकी ओर ताक रहा है। सुरेन्द्र मेज के एक कोने पर बैठा छत की ओर जोर-जोर से हिलते फानूस को देख रहा है।]

डाक्टर : (सिर उठाता है) मैंने इंजेक्शन दे दिया है। भापी ने जो लक्षण बताये थे, उन्हें सुनकर मैं बचाव के तौर पर इंजेक्शन का सामान और ट्यूब साथ लेता आया था और मेरा खयाल ठीक निकला। भापी को मेरे साथ भेज दो, मैं इसे नुस्खा लिख देता हूँ, यह बाजार से दवाई बनवा लेगा, मेरी जगह तो दूर है। पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के बाद हलक में दवा की दो-चार बूंदें टपकाते रहना और एक घंटे में मुझे सूचित करना। यदि एक घण्टे तक यह ठीक रहा, तो मैं एक इंजेक्शन और कर जाऊँगा। इंजेक्शन के सिवा डिप्थीरिया का दूसरा इलाज नहीं।

रौशन : डाक्टर साहब···(आवाज भर आती है।)

डाक्टर : घबराने से काम न चलेगा, सावधानी से उसकी तीमारदारी करो, शायद···

रौशन : मैं अपनी तरफ से कोई कसर न उठा रखूँगा। सुरेन्द्र, तुम मेरे पास रहना। देखो, जाना नहीं, यह घर उस बच्चे के लिये वीराना है। यह लोग इसका जीवन नहीं चाहते, बड़ा रिश्ता पाने के मार्ग में इसे रोड़ा समझते हैं। इसकी मृत्यु चाहते हैं, सुरेन्द्र।

सुरेन्द्र : तुम क्या कह रहे हो, रौशन ? उन्हें क्या यह प्रिय नहीं ? मूल से ब्याज प्यारा होता है ?

डाक्टर : क्या कह रहे हो, रौशनलाल ?

रौशन : आप नहीं जानते, डाक्टर साहब ! यहाँ सब लोग हृदयहीन हैं, आपको मालूम नहीं। इधर मैं अपनी पत्नी का दाह-कर्म करके आया था, उधर ये लोग

---

१. Diphtheria : गले का संक्रामक रोग, जिसमें साँस बन्द हो जाने से मृत्यु हो जाती है।

दूसरी जगह शादी के लिए शगुन लेने की सोच रहे थे ।

सुरेन्द्र : यह तो दुनिया का व्यवहार है, भाई ।

रौशन : दुनिया का व्यवहार इतना शुष्क, इतना निर्मम, इतना क्रूर है ? मैं उससे नफरत करता हूँ । क्या ये लोग नहीं समझते कि यह जो मर जाती है, वह भी किसी की लड़की होती है, किसी माता-पिता के लाड़ में पली होती है, फिर उसके मरते ही सगाइयाँ लेकर दौड़ते हैं। स्मृति-मात्र से मेरा खून उबलने लगता है ।

डाक्टर : (चौंककर) देर हो रही है, मैं दवा भेजता हूँ । (भापी से) चलो ।

[डाक्टर साहब और भापी का प्रस्थान]

रौशन : सुरेन्द्र, क्या होने को है ? क्या अरुण भी मुझे सरला की भाँति छोड़कर चला जायेगा ? मैं तो इसका मुँह देखकर सन्तोष किये हुए था । उस जैसी सूरत, उसी जैसी भोली-भोली आँखें, उसी जैसे मुसकराते होंठ, उसी जैसा सीधा-सरल स्वभाव । मै इसे देखकर सरला का गम भूल चुका था, लेकिन अब, अब···(हाथों से चेहरा छिपा लेता है ।)

सुरेन्द्र : (उसे ढकेलकर कमरे की ओर ले जाता हुआ) पागल न बनो, चलो, उसके घर में क्या कमी है ? वह चाहे तो मरते हुओं को बचा दे, मृतकों को जीवन प्रदान कर दे ।

रौशन : (भर्राये गले से) मुझे उस पर कोई विश्वास नहीं रहा । उसका कोई भरोसा नहीं—क्रूर, कठिन और निर्दयी । उसका काम सताये हुओं को और सताना है, जले हुए को और जलाना है । अपने इस जीवन में हमने किसको सताया, किसको दुःख दिया, जो हम पर ये बिजलियाँ गिराई गईं, हमें इतना दुःख दिया गया !

सुरेन्द्र : दीवाने न बनो । चलो, उसके सिरहाने चलकर बैठो ! मैं देखता हूँ, भापी अभी क्यों नहीं आया ।

[उसे दरवाजे के अन्दर ढकेलकर मुड़ता है । दायीं ओर के दरवाजे से माँ दाखिल होती है ।]

माँ : किधर चले ?

सुरेन्द्र : जरा भापी को देखने जा रहा था ।

माँ : क्या हाल है अरुण का ?

सुरेन्द्र : उसकी हालत खराब हो रही है ।

मां : हमने तो बाबा बोलना ही छोड़ दिया । ये डाक्टर जो न करें [illegible]
बहू के मामले में भी तो यही बात हुई थी । अच्छी-भली [illegible]
रही थी, आराम आ रहा था । जिगर का बुखार ही [illegible]
रहता है, पर यह डाक्टर को लाये बिना न माना ।
[illegible] के बिना कुछ [illegible] नहीं । जरा बुखार [illegible]
कि [illegible] का फतवा दे देते हैं । '[illegible] है [illegible]

की आधी जान तो पहले ही निकल जाती है। हमने तो भाई इसलिये कुछ कहना-सुनना छोड़ दिया है। आखिर मैंने भी तो पाँच बच्चे पाले हैं। बीमारियाँ हुईं, कष्ट हुए, कभी डाक्टरों के पीछे भागी-भागी नहीं फिरी। क्या बताया डाक्टर ने ?

सुरेन्द्र : डिप्थीरिया !

माँ : वह क्या होता है ?

सुरेन्द्र : बड़ी खतरनाक बीमारी है, माँजी ! अच्छा-भला आदमी दो-चार दिन के अन्दर खत्म हो जाता है।

माँ : (काँपकर) राम-राम, तुम लोगों ने क्या कुछ-का-कुछ बना डाला ! उसे जरा ज्वर हो गया, छाती जम गई, बस मैं घुट्टी दे देती तो ठीक हो जाता, लेकिन मुझे कोई हाथ लगाने दे, तब न ! हमें तो, वह कहता है, बच्चे से प्यार ही नहीं।

सुरेन्द्र : नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है ? आपसे अधिक वह किसे प्यारा होगा ? (चलने को उद्यत होता है।)

माँ : सुनो !

[सुरेन्द्र रुक जाता है।]

माँ : मैं तुमसे बात करने आयी थी। तुम उसके मित्र हो, उसे समझा सकते हो।

सुरेन्द्र : कहिये।

माँ : आज वे फिर आये हैं।

सुरेन्द्र : वे कौन ?

माँ : सियालकोट के एक व्यापारी हैं। जब सरला का चौथा हुआ था तो उस दिन रौशी के लिए अपनी लड़की का शगुन लेकर आये थे। पर उसे न जाने क्या हो गया है, किसी की सुनता ही नहीं, सामने ही न आया। हारकर बेचारे चले गये। रौशी के पिता ने उन्हें एक महीने बाद आने को कहा था, सो पूरे एक महीने बाद वे आये हैं।

सुरेन्द्र : माँजी !

माँ : तुम जानते हो बच्चा, दुनिया-जहान का यह कायदा ही है। गिरे हुए मकान की नींव पर ही दूसरा मकान खड़ा होता है। रामप्रताप ही को देख लो; अभी दाह-कर्म-संस्कार के बाद नहाकर साफा भी न निचोड़ा था कि नकोदर-वालों ने शगुन दे दिया। एक महीने के बाद विवाह भी हो गया और अब तो सुनते हैं, एक बच्चा भी होने वाला है।

सुरेन्द्र : माँजी, रामप्रताप और रौशन में कुछ अन्तर है।

माँ : यही कि वह माता-पिता का आज्ञाकारी है, और यह पढ़-लिखकर माँ-बाप की अवज्ञा करना सीख गया है। बेटा, अभी तो चार नाते आते हैं, फिर देर हो गई तो उधर कोई मुँह भी न करेगा। लोग सौ बातें बनायेंगे, सौ-सौ लांछन लगायेंगे और फिर ऐसा कौन क्वाँरा है !

सुरेन्द्र : तुम्हारा रौशन बिन-ब्याहा नहीं रहेगा, इसका मैं यकीन दिलाता हूँ।

माँ : यही ठीक है, पर अब यह शरीफ आदमी मिलते हैं, घर अच्छा है, लड़की अच्छी है, सुशील है, सुन्दर है, सुशिक्षित है, और सबसे बढ़कर यह है कि ये लोग बड़े भले हैं। लड़की की बड़ी बहन से अभी मैंने बातें की हैं। ऐसी सलीकेवाली है कि क्या कहूँ। बोलती है तो फूल झड़ते हैं। जिसकी बड़ी बहन ऐसी है, वह स्वयं कैसे अच्छी न होगी ?

सुरेन्द्र : माँ जी, अरुण की तबीयत बहुत खराब है। जाकर देखो तो मालूम हो।

माँ : बेटा, ये भी तो इतनी दूर से आये हैं। इस आँधी और तूफान में कैसे उन्हें निराश लौटा दूँ ?

सुरेन्द्र : तो आखिर आप मुझसे क्या चाहती हैं ?

माँ : तुम्हारा वह मित्र है। उससे जाकर कहो कि जरा दो-चार मिनट जाकर उनसे बात कर ले। कुछ वे पूछते हों, उन्हें बता दे। तब तक मैं लड़के के पास बैठती हूँ।

सुरेन्द्र : मुझसे यह नहीं हो सकता, माँ जी ! बच्चे की हालत ठीक नहीं बल्कि शोचनीय है और आप जानती हैं, वह उसे कितना प्यार करता है। भाभी के बाद उसका सब ध्यान बच्चे में केन्द्रित हो गया है। वह उसे अपनी आँखों में बिठाये रखता है। स्वयं उसका मुँह-हाथ धुलाता है, स्वयं नहलाता है, स्वयं कपड़े पहनाता है और इस वक्त जब बच्चे की हालत ठीक नहीं, मैं उससे यह सब कैसे कहूँ ?

[बीमार के कमरे का दरवाजा खुलता है। रौशन दाखिल होता है। बाल बिखरे हुए, चेहरा उतरा हुआ, आँखें फटी-फटी-सी।]

रौशन : सुरेन्द्र, तुम अभी यहीं खड़े हो ? परमात्मा के लिए जल्दी जाओ। मेरी बरसाती ले जाओ, नीचे से छतरी ले जाओ। देखो, भापी आया क्यों नहीं ? अरुण तो जा रहा है, प्रतिक्षण जैसे डूब रहा है।

[सुरेन्द्र एक बार खिड़की से बाहर देखता है और फिर तेजी से निकल जाता है। माँ रौशन के समीप जाती है।]

माँ : क्या बात है, घबराये क्यों हो ?

रौशन : माँ, उसे डिप्थीरिया हो गया है।

माँ : सुरेन्द्र ने बताया है। (असन्तोष से सिर हिलाकर) तुम लोगों ने मिल-मिलाकर···

रौशन : क्या कह रही हो ? तुम्हें अगर स्वयं कुछ मालूम नहीं तो दूसरों को कुछ करने दो।

माँ : चलो, मैं चलकर देखती हूँ। (बढ़ती है।)

रौशन : (रास्ता रोकता है) नहीं, तुम मत जाओ। उसे बेहद तकलीफ है, उसे साँस मुश्किल से आती है, उसका दम उखड़ रहा है, तुम कोई घुट्टी-बुट्टी की बात करोगी। तुम यहीं रहो, मैं उसे बचाने की अन्तिम कोशिश [illegible]। (जाता

चाहता है ।)

माँ : सुनो !

[रौशन मुड़ता है। माँ असमंजस में है ।]

रौशन : कहो !

माँ : (चुप)

रौशन : जल्दी कहो, मुझे जाना है ।

माँ : वही फिर आये हैं ।

रौशन : वे कौन ?

माँ : वही सियालकोट वाले ।

रौशन : (क्रोध से) उनसे कहो, जिस तरह आये हैं, वैसे ही चले जायँ । (जाना चाहता है ।)

माँ : रौशी !

रौशन : मैं नहीं जानता, मैं पागल हूँ या आप ! क्या आप मेरी सूरत नहीं देखतीं ? क्या आपको इस पर कुछ लिखा दिखाई नहीं देता ? शादी, शादी, शादी ! क्या शादी ही दुनिया में सब कुछ है ! घर में बच्चा मर रहा है और तुम्हें शादी की सूझ रही है । आखिर तुम लोगों को हो क्या गया है ? वह अभी मृत्यु-शैया पर पड़ी थी कि तुमने मेरी साली को लेकर शादी की बात चला दी । वह मर गई, मैं अभी रो भी न पाया कि तुम शगुन लेने पर जोर देने लगीं । क्या वह मेरी पत्नी न थी ? क्या वह कोई फालतू चीज़ थी ?

माँ : शोर मत मचाओ । हम तुम्हारे फायदे की बात करते हैं, रामप्रताप···

रौशन : (चीखकर) तुम रामप्रताप को मुझसे मिलाती हो ! अनपढ़, अशिक्षित, गँवार ! उसके दिल कहाँ है ? महसूस करने का माद्दा कहाँ है ? वह जानवर है ।

माँ : तुम्हारे पिता ने भी तो पहली पत्नी की मृत्यु के दूसरे महीने ही विवाह कर लिया था···

रौशन : वे···माँ, जाओ, मैं क्या कहने लगा था ?

[रौशन तेजी से मुड़कर कमरे में चला जाता है और दरवाज़ा बन्द कर लेता है । हाथ में हुक्का लिये हुए, खँखारते-खँखारते रौशन के पिता का प्रवेश ।]

पिता : क्या कहता है रौशन ?

माँ : वह तो बात भी नहीं सुनता । जाने बच्चे की तबीयत बहुत खराब है ।

पिता : (खँखारकर) एक दिन में ही इतनी क्या खराब हो गई ? मैं जानता हूँ, बस सब बहानेबाजी है । (जोर से आवाज देता है ।) रौशी, रौशी !

[खिड़कियों पर वायु के थपेड़ों की आवाज़]

(फिर आवाज़ देता है ।) रौशी ! रौशी !

[रौशन दरवाजा खोलकर झाँकता है । चेहरा पहले से भी उतरा

हुआ है। आँखें रुआँसी-सी और निगाहों में करुणा।]

रौशन : (अत्यन्त थके स्वर से) धीरे बोलें, आप शोर क्यों मचा रहे हैं ?

पिता : इधर आओ।

रौशन : मेरे पास समय नहीं।

पिता : (चीखकर) समय नहीं ?

रौशन : धीरे बोलिये आप !

पिता : मैं कहता हूँ, वे इतनी दूर से आये हैं, तुम्हें देखना चाहते हैं, तुम जाकर उनसे जरा एक-दो मिनट बात कर लो।

रौशन : मैं नहीं जा सकता।

पिता : नहीं जा सकता ?

रौशन : नहीं जा सकता।

पिता : तो मैं शगुन ले रहा हूँ। इस वर्षा, आँधी और तूफान में मैं उन्हें अपने घर से निराश नहीं भेज सकता, घर आयी लक्ष्मी को नहीं लौटा सकता। लड़की अच्छी है, सुन्दर है, घर के काम-काज में चतुर है, चार-पांच श्रेणी तक पढ़ी है। रामायण, महाभारत बखूबी पढ़ लेती है।

[रोने की तरह रौशन हँसता है।]

रौशन : हाँ, आप लक्ष्मी को न लौटाइये। (खट से दरवाजा बन्द कर लेता है।)

पिता : (रौशन की माँ से) इस एक महीने में हमने कितनों को इनकार किया है, पर इनको कैसे इनकार करें ? सियालकोट में बड़ी भारी इनकी फर्म है। मैंने महीने भर में अच्छी तरह पता लगा लिया है। हजारों का तो इनका यहाँ लेन-देन है। उन्हें कुछ बहू की बीमारी की ओर से आशंका थी। पूछते थे—उसका देहान्त किस रोग से हुआ ? सो भई, मैंने तो यही कह दिया—दिक-विक कुछ नहीं थी, जिगर की बीमारी थी। (गर्व से) लाख हो, रौशन जैसा कमाऊ लड़का मिल भी कैसे सकता है ? बेकारों की फौज दरकार हो तो चाहे जितनी मर्जी इकट्ठी कर लो। उस दिन लाला सुन्दरलाल अपनी लड़की के लिए कह रहे थे—कॉलेज में पढ़ती है। पर मैंने तो इनकार कर दिया।

माँ : अच्छा किया। मुझे तो आयु-भर उसकी गुलामी करनी पड़ती—बच्चे [illegible]
पूछते होंगे ?

पिता : हाँ, मैंने तो कह दिया—बच्चा है, पर माँ की मृत्यु के बाद उसकी [illegible]
ठीक नहीं रहती।

माँ : तो आप हाँ कर दें।

पिता : हाँ, मैं तो शगुन ले लूंगा। (चले जाते हैं।)

[हुक्के की आवाज दूर होते-होते गुम हो जाती [illegible]
कमरे में घूमती है। कमरे से [illegible] आता है और [illegible]

माँ : भापी !

सुरेन्द्र : मैं डाक्टर के यहाँ जा रहा हूँ।

[भापी तेजी से चला जाता है। बीमार से कमरे से सुरेन्द्र निकलता है।]

सुरेन्द्र : माँ जी!

माँ : क्या बात है ?

भापी : दाने लाओ और दीये का प्रबन्ध करो।

माँ : क्या ? (आँखें फाड़े उसकी ओर देखती रह जाती है।)

[हवा की सायँ-सायँ]

सुरेन्द्र : अरुण इस संसार से जा रहा है।

[फानूस टूटकर धरती पर गिर पड़ता है। माँ भागकर दरवाजे पर जाती है।]

माँ : रौशी, रौशी !

[दरवाजा अन्दर से बन्द है।]

माँ : रौशी, रौशी !

रौशन : (कमरे के अन्दर से भर्राये स्वर में) क्या बात है ?

माँ : दरवाजा···

रौशन : तुम पहले लक्ष्मी का स्वागत कर लो !

माँ : रौशी !

······

माँ : रौशी !

[बायीं ओर के दरवाजे के बाहर से खँखारने की और हुक्के की आवाज़]

पिता : (सीढ़ियों से ही) रौशन की माँ, बधाई हो !

[रौशन के पिता का प्रवेश। माँ उनकी ओर मुड़ती है।]

पिता : बधाई हो ! मैंने शगुन ले लिया।

[कमरे का दरवाजा खुलता है, मृत-बालक का शव लिये रौशन का प्रवेश।]

रौशन : हाँ, नाचो, गाओ, बाजे बजाओ।

[पिता के हाथ से हुक्का गिर जाता है और मुंह खुला रह जाता है।]

पिता : मेरा बच्चा ! (बैठ जाता है।)

माँ : मेरा लाल ! (रोने लगती है।)

सुरेन्द्र : भापी, जाकर दाने लाओ और दीये का प्रबन्ध करो।

ग्रहदशा

उदयशंकर भट्ट

भट्टजी का जन्म उत्तर प्रदेश के जिला बुलन्दशहर में सन् १८९७ में हुआ था।

भट्टजी ने प्रसाद-युग में ही नाटक-रचना प्रारम्भ कर दी थी। प्रसाद की शैली पर आपने दो-तीन ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाटक लिखे, जिनमें आपके कवि-रूप का गहरा प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। किन्तु बाद में आपने अपनी शैली में मौलिक परिवर्तन किया और नाटक की स्वाभाविक शैली पर आपने अनेक सम्पूर्ण नाटक तथा एकांकी लिखे जिनमें सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक—सभी कोटियों के नाटकों का समावेश है।

भट्टजी ने अपने एकांकियों में जीवन की विचित्रता को चित्रित करने के साथ अनेक समस्याएँ भी प्रस्तुत की हैं। जीवन का आन्तरिक संघर्ष और द्वन्द्व भी आपके एकांकी में प्रतिफलित हुआ है। कवि होने पर भी भट्टजी ने एकांकों में कल्पना और कविता को विशेष स्थान न देकर यथार्थ अनुभूति के आधार पर पात्र-चित्रण किया है।

सन् १९६६ में आपकी मृत्यु हो गई।

पात्र

गिरधारी : दफ्तर का क्लर्क

कृष्णमनोहर : अतिथि

रमा : पत्नी

आगन्तुक स्त्री : कृष्णमनोहर की पत्नी

लछमन : लड़का

समय : सवेरे आठ बजे

एक साधारण गृहस्थ का मकान। रंगमंच पर एक बरामदा। दीवार में पुराने ढंग के छोटे-छोटे दो आले। दोनों के बीच में बिना किवाड़ों की एक आलमारी जिसमें तीन छोटे-छोटे खाने हैं। दीवार पर वैसे कृष्ण, हनुमान, रामचन्द्रजी की तसवीरें लटक रही हैं। नीचे चटाई पर एक दरी। एक तरफ लोहे की दो कुरसियाँ। दरी के ऊपर मैली-सी चादर और किनारे पर गाव तकिया, वह भी मैला। दरी के कोने पर मकान का मालिक गिरधारीलाल मामूली ढंग की हजामत का सामान रखे हजामत बना रहा है। गिरधारीलाल की उम्र लगभग पैंतीस वर्ष है, दुहरा सांवला शरीर, सिर पर गंज, मुँह पर चेचक के दाग। मोटी नाक, भरी हुई दाढ़ी, मूँछें। आधी बाँह की बनियान और धोती पहने बैठा गुनगुना रहा है और हजामत बनाता जाता है। सिलबिली आदत के कारण हाथ से साबुन लगाता है और साबुन के झाग से सारे हाथ भर जाते हैं तो धोती से पोंछ लेता है, फिर दाढ़ी रगड़ने लगता है। दाढ़ी पर हाथ से साबुन मलने से खर्र-खर्र की आवाज़ भी आती है। बरामदे के पूर्वी भाग में एक दरवाजा रसोई को जाता है और पश्चिमी भाग में एक दरवाजा है जहाँ बाहर से लोग आते हैं। गिरधारीलाल साधारण प्रकृति का जल्दबाज आदमी है इसलिए चिल्लाता भी जाता है। आँखें कमजोर होने पर भी इस समय चश्मा नहीं है, इसलिए शीशा बहुत पास रखा है। कभी-कभी हजामत बनाते समय ब्लेड भी लग जाता है तो 'सी' कर उठता है और उस समय गुनगुनाना भूल जाता है।

गिरधारी : (हजामत बनाते हुए, चिल्लाकर) अरे, नहाने को गरम पानी रख दिया कि नहीं? साढ़े आठ बज रहे हैं, कुछ खबर भी है? रोज कहना पड़े है। चाहे हैं गरम पानी की महारनी रोज-रोज रटूँ। कभी इतना गरम कि पानी मिलाते-मिलाते बर्तन भर जाए है, कभी इतना ठण्डा···(ब्लेड लग जाता है।) सी! न जाने कैसे ब्लेड हैं सुसरे। तेज लाओ तो लग जाएँगे, खूनोखून कर देंगे। (खून पोंछता है। फिर हजामत का ही मैल कटी जगह चिपकाता है।) बीस दफे कह दिया पानी जरा गरम रखा करो, हजामत के लिए। पर कोई सुने तब न? भौंकते रहो।

[दूसरी आवाज़ रसोईघर से आ रही है पत्नी की।]

रमा : कुछ-न-कुछ बोलना हो तो दूसरी बात है। हजार दफे कह दिया पानी गुसलखाने में रखा है, रखा है। चिल्लाने की क्या जरूरत है, आदत ही पड़ गई है चिल्लाने की तो चिल्लाओ। मैं भी कहाँ तक करूँ मरी। लड़की पढ़ा लो या घर का काम करा लो। ये तो नहीं, बड़ी हो गई तो ब्याह की सोचें। कोई लड़का ढूँढकर हाथ पीले कर दें। सो नहीं होगा,

आठ बजे खाट से उठेंगे, नहा-धोकर दफ्तर चले जाएंगे। मुझे तो मौत भी नहीं आवे है। (आवाज आती रहती है।)

गिरधारी : बस, जरा कुछ कहो तो पुराना रोना ले बैठेगी। मैं कह रहा हूँ...और मैं कह ही क्या रहा हूँ···पानी की ही बात तो कही है, कोई गुनाह तो नहीं कर दिया, किसी की जान तो नहीं ले ली। लड़की पढ़ती है तो बुराई क्या है ? आजकल कौन है जो अपने बच्चों को नहीं पढ़ाता ?

रमा : पढ़ाने को पढ़ाओ, नौकरी कराओ, बाहर घुमाओ पर ब्याह भी तो कर दो। इतनी बड़ी लड़की घर में बैठी है। न जाने नींद कैसे आवे है !

गिरधारी : नींद कहाँ आती है ? बारह बजे तक दोस्त-मित्र नहीं छोड़ते। सवेरे तुम कान पर भोंपू बजाने लगती हो। उठो-उठो के मारे परेशानी में जान है। जैसे मैं ही अकेला उठने को रह गया हूँ। न आप सोवेगी, न बच्चों को सोने देगी और मुझसे तो जैसे पुरानी दुश्मनी है। ब्याह क्या किया आफत मोल ले ली है।

रमा : (उसी तेजी में) हाँ-हाँ, मैं ही तुम्हारी सत्रू हूँ। मैं ही दुस्मन हूँ। जहर लाकर क्यों नहीं दे देते ! मर जाऊँ, पाप कटे। (एकदम रोने की आवाज में बोलती हुई सुनाई पड़ती है।) भला कहो बुरा होय है, नेकी करो बदी होय है। कहती हूँ सवेरे उठा करो तो आठ बजे उठेंगे। रात को जल्दी सोया करो। इन मरे लफंगों में बैठने से फायदा क्या ? नहीं मानेंगे, अपने मन की करेंगे। ही-ही-ही···

गिरधारी : अरे, तो मैंने क्या कहा है ? रोने की क्या जरूरत है भाई ! अच्छा, अब से कसम खाई जो कुछ कहूं, बस। (इसी समय अखबारवाला आता है।) अखबारवाले भाई, यह कोई वक्त है अखबार का ? पहले से लाते तो कुछ पढ़ते भी। ले जाओ, अब नहीं लेंगे।

अखबार० : बाबूजी, देर हो गई। सवेरे तो आपका दरवाजा बन्द रहता है, लेटरबक्स का दरवाजा टूटा है।

गिरधारी : (क्रोध में) दरवाजा बन्द रहता है तो खिड़की में डाल देते। लेटरबक्स है तो उसमें डाल देते। टूटा है तो क्या है ? टूटा रहने दो। (चुप रहता है।) खैर, दे जाओ। आगे से ध्यान रखना। (तेज होकर) हाँ, देखना, कल देर से लाओ तो मत लाना। चाहे ले आना। मैं नहीं पढ़ता तो साधना तो पढ़ती है। दे जाना। सवेरे ही चली जाती है पढ़ने जैसे इन कालेजवालों को रात को नींद न आती हो। (हड़बड़ी में हजामत का सामान बटोरता है। इसी समय एक स्त्री आती है, गिरधारी चश्मा न होने के कारण ठीक-ठीक नहीं पहचान पाता। स्त्री की आयु पैंतीस से ऊपर, सफेद धोती, ऊपर से चादर ओढ़े) कौन, कौन है ? (आंखें फाड़कर) आइए, आइए।

स्त्री : मैं साधना के लिए आयी हूं।

गिरधारी : (खड़ा होकर) साधना के लिए क्या मतलब ? वह तो कालेज चली गई।

स्त्री : राममनोहर है न ?

गिरधारी : (दौड़कर ग्रालमारी में से चश्मा निकालकर लगाता हुग्रा) ग्रोह, ग्राप हैं ! धन्य भाग हमारे। राममनोहर बाबू के लिए। तो सुनिए, साधना तो ग्राप की ही है। ऐसे भाग कहाँ !

स्त्री : ज़िद पकड़ रहा है, ब्याह करूँगा तो साधना से। दोनों एक ही कालेज में हैं न !

गिरधारी : हाँ-हाँ, राममनोहर तो हमारे ही हैं। ऊँचा खानदान, कुलीन घर। भला इसमें भी कोई कहने की बात है ? पक्की है। घर में बात कर लो। मैं ग्राया। सुनती हो ! (ऊँची ग्रावाज़ में) देखो, ये राममनोहर बाबू की माँ हमारे घर पधारी हैं। देर हो रही है···ही-ही, दफ्तर को।

[गिरधारी चला जाता है। उसकी पत्नी ग्राती है। गिरधारी की पत्नी मोटी धोती पहने है। रंग गेहुँग्रा, नाक-ग्राँख बड़ी।]

रमा : ग्ररे-ग्ररे, ग्राप हैं। बैठो-बैठो, बड़े भाग, भगवान घर ग्राए। हम गरीब तुम्हारे ही ग्रासरे रहे हैं।

स्त्री : नहीं-नहीं, ऐसा क्यों कहो हो। बड़े तो तुम्हीं हो। हमीं गरीब हैं भाई।

रमा : नहीं-नहीं, लो, बैठ जाग्रो। (ग्रपने हाथ से दरी ठीक करके) लो बैठो। कहो, सब ग्रच्छे तो हैं ? सुना, भैया के बाबू बाहर गए थे ? हमारी जात में तो एक ही घर है तुम्हारा। इत्ता ऊंचा, इत्ता बड़ा।

स्त्री : नहीं बहन, तुम्हारा भी घर बहुत बड़ा है। मैंने तुम्हारे सास-ससुर देखे हैं, राज़ करें थे राज। पचासों नौकर-चाकर बाहर खड़े रैवें थे। जिधर को ग्राँख उठ गई उधर ही हुकम हो गया। लोग उनकी बातों को सिर-ग्राँखों पर लैवें थे। खानदान ही तो देखा जाए हैगा।

रमा : तुम्हारे ही कौन कमी थी बहन, हाथी झूमें थे हाथी। बड़े-बड़े ग्रफसर हाथ जोड़े खड़े रेवैं थे। ग्रौर वो उनकी तरफ देखें भी नाय थे। सुना है एक बार कलट्टर साब ग्राए तो तुम्हारे ही हियां ठहरे। बोले, रहूँगा तो म्हई।

स्त्री : हाँ, तुम्हारा यह घर थोड़े ही था। तुम तो तब छत्ते में रहो थे। इत्ती बड़ी हवेली, पाँच सौ ग्रादमी ग्रा जाएँ। दो दरबान तो हर वखत हाज़िर देवें थे—बन्दूक ताने। मैंने वे दिन देखे है, तुम लोग तो राजा थे राजा

रमा : दिनों का फेर है। नहीं तो तुम्हारे घर से कभी कोई खाली हाथ [illegible] भला ? जो माँगो सो मिले था। जो कैवें थे वो होय था। [illegible] बांधे खड़े रैवें थे।

स्त्री : इसीलिए···इसीलिए तो बहन, तुम जानो दिनों का फेर है। [illegible] सो बिगड़ गई। करज क्या थोड़ा लिया ? हमारे ही ग्रौर देते वखत...

रमा : (चौकन्नी होकर) क्या नहीं माने है ? (बिना पूरी बात समझे) ये तो तुम्हारा ही घर है। जाओगी क्यों, बैठो । क्या खातर करूँ ? शरबत पियो ? गरमी के दिन हैं। गरमी भी क्या सड़ी पड़े है। (बैठ जाती है।)

स्त्री : (बैठकर) कुछ न पूछो। भुने जाए हैंगे। तुम्हारा मकान कुछ जादा गरम है। छोटा है न !

रमा : मकान तो तुम्हारा भी कोई बड़ा नहीं है।

स्त्री : इससे तो बड़ा है। बड़े-बड़े कमरे, दल्लान, तिदरी, गुसलखाना, रसोई, आँगन, बैठक।

रमा : इसके पीछे के कमरे भी बड़े हैं। इसी दल्लान में चार खाटें बिछ जाए हैं। रसोई ऐसी कि दस आदमी बैठकर खा लें। बड़े लड़के का ब्याह यहीं हुआ। जापे, दष्ठौन, मूँडन, सब यहीं हुए।

स्त्री : फिर भी घर तो हमारा ही बड़ा है। तुम्हारे घर उतना बड़ा एक भी कमरा नहीं है।

रमा : वह कोई मकान है ? उसमें तो भंगी भी न रैवें।

स्त्री : और इसमें कोई थूके भी नहीं। मेरे घर के पाखाने-जैसी तो तुम्हारी कोठरियाँ हैं।

रमा : तुम्हारा भी कोई घर है, घूर है घूर ! दीवारें ऐसी जैसे कागज के ताजिए। फर्श ऐसा जैसी गांव की कीचड़-भरी गली, कीड़े बिलबिलाय हैंगे जहाँ-तहाँ। न जाने कैसे रहो हो तुम लोग ? जैसा खानदान वैसा घर !

स्त्री : हमने रुपया किसी का नहीं मारा है, बाजार में जूते नहीं खाए हैं।

रमा : जूते खाए होंगे तुम्हारे घरवालों ने। मुंह संभालकर बात करना। हम क्यों किसी का रुपया मारते ! सवेरे-सवेरे आई है गाली देने।

स्त्री : मैं क्यों गाली देती ? मैं तो साफ कहूँ हूँ।

रमा : मैं भी साफ कहूँ हूँ। किसी को बुरी लगे चाहे भली।

स्त्री : (अँगूठा दिखाकर) अरे तो तुम्हारी बात ही कौन सुने है ?

रमा : (वैसे ही अंगूठा दिखाकर) और तुम्हारी ही कौन सुने है ? भौंकती फिरो।

स्त्री : (हाथ मारकर) तू भौंक !

रमा : तू भौंक। चली वहाँ से !

स्त्री : तू तू !

रमा : तू तू तू तू !

स्त्री : (घबराकर सिर पकड़ लेती है जैसे गश आ गया हो, फिर ज़मीन पर हाथ रखकर) हाय पानी, मैं मरी। पानी दो, दो घूंट पानी, गला सूख रहा है। न जाने किस घड़ी मैं घर से निकली। पानी !

रमा : मैं पानी लाती हूँ। (उठती है।)

गिरधारी : उससे पहले क्या ?

रमा : बातों-बातों में उन्होंने मेरे घरवालों की बुराई की। उन्हें चोर-बेईमान बताया।

गिरधारी : (तमककर) और तू सुनती रही ! (क्रोध में भर जाता है।)

रमा : मैंने भी खूब खरी-खोटी सुनाई। तभी तो लड़ाई हुई।

गिरधारी : पर लड़का अच्छा है।

रमा : मैं तभी तो कह रही हूँ। मैंने ऐसा क्यों कहा। कह लेती वह दो बातें और मैं सुन लेती।

गिरधारी : मुझे याद ही नहीं रही कहने की। मेरा ही कसूर है। (हताश भाव से) अब क्या हो ?

रमा : पर जब तुम्हें मालूम था कि राममनोहर की माँ इसलिए आई है, फिर नहा के आते ही क्यों लड़ पड़े ?

गिरधारी : यही तो मुझमें ऐब है, मैं भूल जाता हूँ।

रमा : और यही मुझ में ऐब है, मैं किसी की धौंस नहीं सह सकती। मैं किसी की दबैल नहीं हूँ।

गिरधारी : (सोचकर) फिर अब क्या किया जाए, कैसे बात बने ? लड़की है तो दो बातें सुननी पड़ेंगी। अब अगर वह आ जाए तो मैं इतनी तारीफ़ करूँ कि···

रमा : पर अब तो मैं भी तैयार हूँ। अब चाहे कोई दस गाली दे ले, मैं बोल जाऊँ तो मेरे मुँह पर थूक देना।

गिरधारी : पर बात तो तूने बिगाड़ दी। सारा खेल खराब कर दिया।

रमा : तुम भी तो लड़ पड़े। इतना भी खयाल नहीं किया कि कौन है, क्या है, क्यों आई है ? जाओ, बुला लाओ न। जाओ। बात पक्की हो जाए तो अगले महीने···

गिरधारी : हाँ, अगले महीने। छुट्टी ले लूँगा। काम ही कितना है। और हो भी तो क्या ? बड़ा बुरा हुआ। (सिर पकड़कर घूमता है। कोई आवाज लगाता है।) देखो, कौन है ?

रमा : तुम्हीं देखो।

आगन्तुक : अरे, बाबू गिरधारीलाल हैं क्या ?

गिरधारी : आइए-आइए, बाबू कृष्णमनोहर ! ओह, बड़े भाग।

[पत्नी दौड़कर दरी ठीक करती है। कृष्णमनोहर बैठ जाते हैं।]

आप महान् हैं। देवता पुरुष। और हम तो बिलकुल तुच्छ, आपके नौकरों के नौकर। कहिए, जल लाऊँ ?

रमा : मैं जलपान ला रही हूँ। आपकी कृपा है। मैं···

गिरधारी : मैं आपका दास हूँ। चरण सेवक। (पैर पकड़ने को आगे बढ़ता है।)

कृष्ण० : (पीछे हटकर) नहीं, ऐसा क्यों कर रहे हैं ? हम-आप कोई दो थोड़े

ही हैं ।

गिरधारी : दो क्यों नहीं हैं ? आप मालिक हैं, मैं तो आपके खानदान का नौकर रहा हूं । मेरे बुजुर्ग आपके यहाँ नौकर रहते रहे हैं । हम लोग बहुत ही छोटे हैं, आपके टुकड़ों पर पलने वाले । बड़ी कृपा की आपने । मेरा घर पवित्र हो गया । (स्त्री से) जरा जल्दी करो ।

कृष्ण० : आप ऐसा क्यों कह रहे हैं ? मेरे बुजुर्गों ने न कभी किसी को नौकर रखा, न उनकी हैसियत ही ऐसी थी । हम लोग मामूली आदमी रहे हैं । हाँ तो···

गिरधारी : नहीं, पहले आपको यह मान लेना होगा कि आपके बड़े-बूढ़े बहुत बड़े आदमी थे । उनके यहाँ हाथी झूमते थे । नौकर ऐसे रहते थे उनके आस-पास जैसे गुड़ के चारों ओर ततैये, और हम लोग उनके यहाँ नौकर थे । यानी मेरे बड़े-बूढ़े उनके आसरे पलते थे ।

कृष्ण० : (परेशान-सा होकर) होगा बाबू गिरधारीलाल, इसमें क्या बड़ी बात है, मुझे तो याद नहीं आता । मैंने बचपन से ही अपने को बहुत मामूली आदमी पाया है । रोज कुआँ खोदना और रोज पानी पीना । अब लड़के पढ़ रहे हैं । उन्हीं का खर्च नहीं संभाल पाता ।

गिरधारी : यह तो आपकी भद्रता है, जो आप अपने को वैसा मानते हैं । नहीं तो मेरे बुजुर्ग कहा करते थे आप लोग इस मोहल्ले के राजा थे । बड़ी-बड़ी हवेलियाँ, बड़े-बड़े मकान, दीवानखाने, कचहरियाँ थीं । रुपया गाड़ियों पर लादकर ले जाया जाता था । सिपाही साथ चलते थे । गारद रहती थी गारद । कोई देख तो जाए उनकी तरफ, खोदकर न गाड़ दें ।

[पत्नी जलपान लेकर आती है, सामने रख देती है ।]

रमा : यह भी कोई कहने की बात है । सारा सहर उन्हें माने था, सारे सहर में उनका रौब था । बाहर निकलें थे तो सलाम करनेवालों की कतारें खड़ी रैवें थीं । हमारे बुजुरग लोग उनके पीछे-पीछे चलें थे ।

कृष्ण० : आप लोगों को न मालूम कहाँ से ये बातें मालूम हो गईं । मुझे···

गिरधारी : अब भी सरकारी गजेटियर में उनका जिक्र है । कलक्टर साहब के बंगले पर इसका कभी जिक्र होता है । लोग सुनते हैं तो सिर झुका लेते हैं । उस दिन एक बड़े मियाँ कह रहे थे कि एक बार लार्ड डलहौजी शहर में आए तो सबसे पहले उन्हें ही बुलाया । उनसे ही हाथ मिलाया और उन्हीं के घर जाकर खाना खाया । ऐसे थे वे लोग । लीजिए, खाइये ।

कृष्ण० : (लापरवाही और घबराहट के साथ खाता हुआ) हाँ, अब तो रहने को गत का मकान भी नहीं है । ऊपर का कमरा अब गिरा, अब गिरा हो रहा है । सोचता हूँ मरम्मत करा लूं, पर पाँच सौ का खर्च है । तनखा मिलती है दो सौ बीस । आठ प्राणी, कहाँ से आवे, पेट को भी पूरा नहीं पड़ता । हाँ···

रमा : (घूंघट में) अभी बहन जी कह रही थीं...और कह क्या रही थीं मैंने क्या नहीं सुना ? सहर में कोई भी ऐसा नहीं था जिसपे दो-चार हजार का करज न हो। चाय और दो न !

कृष्ण० : (चुपचाप खाता हुआ सोचता है कि आखिर यह सब क्या है; क्यों ये लोग इतनी बेतुकी हाँक रहे हैं ? बार-बार सोचता है, कुछ समझ में नहीं आता। फिर यह सोचता है कि कहीं ये मेरा मजाक तो नहीं उड़ा रहे। फिर सोचता है—बातों से ऐसा नहीं लगता। आज बहुत दिनों बाद इधर आया हूँ। शायद इन लोगों को पत्नी ने आकर कहा हो, शायद हमारे बुजुर्ग ऐसे हों। इन्हें कोई वैसा प्रमाण मिला हो।) पर आपको इन सब बातों का पता कैसे हुआ, मुझे तो कुछ भी नहीं मालूम ?

गिरधारी : पूछने के लिए दूर जाने की जरूरत नहीं है। ऐसा कौन है बूढ़ा जो यह नहीं जानता और आपका खानदान लाखों में एक।

रमा : औरतें तो देवी थीं देवी। साच्छात् लछमी। देखो तो लगे था अभी सुरग से उतरी हों।

गिरधारी : ये थोड़ा हलुवा लीजिए न ! (देता है।) हम क्या हैं—गरीब मरभुखे, रोज कमाना, रोज खाना। जिन्दगी किसी तरह कटी जाए है। लड़की पढ़ रही है बी० ए० में। गी है गी।

रमा : सिवा पढ़ने के और कोई काम ही नहीं है। मैं कहूँ—अरी, फिर पढ़ियो, खाना तो खा ले। मजाल है खाना खा जाए। पढ़ती रहेगी। दिन हो चाहे रात।

गिरधारी : मैं कहता हूँ ऐसी लड़की मैंने नहीं देखी। न उसे दीन की खबर है, न दुनिया की। न कपड़ों का ध्यान है, न खाने का।

कृष्ण० : तो उसे सिखाइए। कल को पराए घर जाएगी तो···

रमा : सीखने को सब सीखी है—बुनना, काढ़ना, सीना।

गिरधारी : नहीं साहब, पढ़ने के सिवा और उसे कोई ध्यान नहीं रहता। फर्स्ट आई पिछले इम्तहान में। मैं कहता हूँ उससे घर का काम भी कराओ। उसे पराए घर जाना है।

रमा : तुम्हीं नहीं करने देते। (हाथ मटकाकर) 'पढ़ो, बेटी ! पढ़ो, बेटी !' हर वखत करते रहेंगे। हाथ न मैले हो जाएँ लड़की के। बर्तन तक माँजने उसे आते नहीं हैं।

कृष्ण० : (गिरधारी से) यह तो बुरी बात है, सभी कुछ आना चाहिए उसे। सभी कुछ सीखना चाहिए। न जाने कब कैसी जरूरत पड़ जाए।

गिरधारी : पक्की हो जाय तो मैं उसे बरतन माँजना सिखा दूंगा, और आजकल पढ़ी-लिखी बरतन माँजे ही कौन है ? हमारे दफ्तर में एक नये बाबू आए हैं पिछले महीने से। होटल से रोटी आती है दोनों वक्त। बरतन-चौके का झगड़ा ही नहीं रखा उन्होंने। हर समय साफ-सुथरे। इतवार

के दिन होटल में जाकर खा आए बाकी दिनों थाली बराबर आती है।

रमा : हाय मेरे राम, फिर दिन भर क्या करती होगी वह औरत ? पड़े-पड़े तो दिन भी नहीं कटे है।

गिरधारी : उपन्यास पढ़ती है, रेडियो सुनती है। इस मकान से उस मकान में, इस घर से उस घर में। न हुआ दो औरतें मिलीं और बाजार घूम आईं। बाज़ार में चाट खा ली, मिठाई खा ली और शाम तक घर लौट आईं। ऐसे बहुत परिवार हैं जिनके घर होटल में हैं।

रमा : फिर उनका घर तो मुसाफिरखाना होगा, घर थोड़े ही होगा। ऐसे घर परिवार नहीं कहलाते।

गिरधारी : परिवार कहलाएँ या न कहलाएँ, ऐसे घर हैं और ऐसी औरतें हैं जिन्हें बिना सींग के पशु की तरह बाजार में चरते कभी देख लो। लेकिन बाबू कृष्णमनोहर, मेरी लड़की ऐसी नहीं है।

कृष्ण० : मैं चाहता हूँ ऐसी न हो। परिवार की भी एक मर्यादा है। एक शोभा है।

गिरधारी : सो तो है ही, सो तो है ही। जैसा आप कहते हैं वैसा ही है।

कृष्ण० : क्या ? मैं क्या कहता हूँ ?

गिरधारी : (सकपकाकर) मेरा मतलब…(अपनी पूर्व प्रकृति में आ जाता है।) आप क्या कहते हैं हम क्या जानें ? यह तो आप ही जानें।

कृष्ण० : मेरा मतलब है लड़की की आदत कैसी है ?

गिरधारी : (तुनककर) जैसी लड़कियों की आदत होती है वैसी है।

रमा : (पति के चुटकी काटती है।) लड़की की आदत बहुत अच्छी है। गौ है गौ।

गिरधारी : गौ भी सींग वाली। किसी की धौंस नहीं सह सकती। जैसे मैं किसी से दबता नहीं हूँ। साफ बात कहता हूँ मैं तो।

कृष्ण० : ठीक है, साफ ही कहना चाहिए। कितनी उम्र है ?

रमा : (जल्दी में) सोलह साल की।

कृष्ण० : सोलह साल की, क्या कहा ? बी० ए० में सोलह साल की कैसे हो सकती है ? क्या दो साल की पढ़ने बैठ गई थी ?

गिरधारी : (पत्नी से) सच क्यों नहीं कहती ? बाईस साल की है।

रमा : (टोककर) कहाँ है बाईस साल की ! तुम तो झूठ कहो हो। जादा-से-जादा बीस साल की होगी।

कृष्ण० : हूँ, खैर !

गिरधारी : अरे साहब, जन्मपत्री मिला लीजिए।

कृष्ण० : जन्मपत्री पीछे देखी जाएगी। कोई रोग ?

रमा : रोग क्या होता ? तन्दुरुस्त है।

गिरधारी : मैं तो सच कहता हूँ।

कृष्ण० : हाँ, सच ही कहना चाहिए। जन्म-भर का सवाल है। मेरे लड़के की आप डाक्टरी करा सकते हैं। सब तरह से ठीक है। अगर उसमें कोई भी कसूर

होता तो मैं उसे जन्म-भर क्वारा रखना पसन्द करता । हां, तो क्या है···

गिरधारी : जब आप राममनोहर की बावत सब सच ही कह रहे हैं तो मैं भी सच कहता हूँ कि पिछले दिनों उसे 'प्लूरिसी' हो गई थी । पर अब ठीक है ।

रमा : कहाँ हुई थी प्लूरिसी ? न जाने क्या कैंवे हैं उस मरी बीमारी को । पर उससे क्या, तुम जानो बुखार न आया प्लूरिसी हो गई । आखिर ऐसा कौन है जिसे कोई-न-कोई बीमारी न होती हो या न हुई हो ।

कृष्ण : पर प्लूरिसी तो भयंकर बीमारी है, गिरधारीलाल भाई । प्लूरिसी के आगे की स्टेज है तपेदिक ।

गिरधारी : सच ही कहलवाना चाहते हो तो उसे 'प्लूरिसी' नहीं 'अस्थमा' हुआ था ।

रमा : यह क्या होता है ?

कृष्ण० : 'अस्थमा' ? क्या सचमुच ? तब तो···

गिरधारी : नहीं साहब, मैं भी बड़ा भुलक्कड़ हूँ । बात असल में यह है उसे कभी कोई बीमारी हुई ही नहीं ।

रमा : हां, यों कहो । मुझसे कसम ले लो जो उसे कभी बुखार भी आया हो । लड़की के सिर पर हाथ रखकर कह सकू हूँ ।

कृष्ण० : खैर, ऐसी कोई बात नहीं है । अच्छा साहब, शादी···पर आपने 'प्लूरिसी' क्यों कहा ?

गिरधारी : बात यह है मेरे एक मित्र की लड़की को प्लूरिसी हो गई । अब ठीक भी हो रही है । मैंने कहा, मनुष्य है तो कुछ बीमारी तो होगी ही कभी-न-कभी । इसीलिए मैंने अनजान में 'प्लूरिसी' कह दी । मुझे क्या मालूम वह ऐसी कोई भयंकर बीमारी होती है ।

कृष्ण० : और 'अस्थमा' !

गिरधारी : बीमारी के कुछ अंग्रेजी नाम तो आने ही चाहिए, इसीलिए कह दिया।

कृष्ण : (हँसकर) तो आप सिर्फ यहाँ अंग्रेजी का पाण्डित्य दिखा रहे थे । और कोई अवगुण तो नहीं है कन्या में ? वैसे आप चाहे मेरे लड़के को देख सकते हैं, उसका डाक्टरी मुआयना करा सकते हैं । आचार-विचार, शील, सौजन्य—सभी-कुछ जान सकते हैं ।

गिरधारी : लड़का हीरा है । मैं उसे रोज ही देखता हूँ ।

रमा : और लड़की अँगूठी । (सब हँसते है ।)

कृष्ण० : तो बात पक्की रही ।

रमा : तुम्हारा भला हो, तुमने तो हमें तार दिया ।

गिरधारी : (खुश होकर) अरे, ऊँचा खानदान कहीं छिपे है ? मैंने कहा था, इनके घर में हाथी झूमे थे हाथी और आदमी तो इतने नौकर थे जैसे [illegible] हो । सचमुच । मकान, महल, बैठक, दीवानखाना, कचहरी, [illegible] मुझे तार दिया कृष्णमोहन बाबू, आपने । फिर कब ?

कृष्ण० : बस अगले सान्गों में । मैं न दान माँगता हूँ, न दहे[illegible]

बंगला। जो-कुछ पुजे लड़की को दे देना। मैं गरीब हूँ तो दूसरे की गरीबी को भी जानता हूँ। बहुत आदमी न होंगे। यही थोड़े से दस आदमी लाऊँगा। सुबह बरात के लोग आएँगे, ब्याह होगा, खाना खाएँगे और शाम को विदा।

रमा : नहीं, ऐसा भी क्या। दो दिन तो कम-से-कम बरात रहेगी ही। हम भी तुम जानो गरीब हैं तो क्या कुछ अपना मान नहीं रखेंगे ?

गिरधारी : नहीं, मैं तो जो ये कहेंगे करूंगा। बरात एक दिन रखना चाहेंगे तो एक दिन रहेगी, दो दिन चाहें तो दो दिन। अरे लछमन, पान तो ला। सिगरेट ले आ दौड़कर। लछमन, ओ लछमन बेटा !

लछमन : (चिल्लाता आता है।) बाबूजी, बाबूजी !

गिरधारी : लछमन, देख बेटा, दौड़ के एक पान और एक सिगरेट ले आ। उस पान वाले मोती से कहियो झट से दे दे। कैसा खाते हैं आप पान, मीठा या सिर्फ कत्था-चूना-सुपारी ? और एक सिगरेट। तमाखू तो आप नहीं खाते। मैं तो साहब खाने लगा हूँ। दाँतों में दर्द रहे था। एक ने बताया तमाखू खाया करो। बस, तभी से खाने लगा। ले आ जल्दी। कहियो पैसे फिर दे देंगे।

लछमन : वह नहीं देता उधार, कहता है पहले पैसे लाओ।

रमा : अरे, तो पैसे दे दो। ले, मैं देती हूँ। कौन से पैसे हैं उसके ?

गिरधारी : बकता है साला, कोई भी उसका पैसा नहीं है।

लछमन : हैं कैसे नहीं ? उस दिन पान, दो सिगरेट मँगाई थीं, उसी के पैसे नहीं दिए।

गिरधारी : तो दे देंगे, वे भी दे देंगे। जा, ले आ। (कृष्णमनोहर के सामने) ये दुकानदार भी बड़े कमीने हैं। अव्वल तो कोई पैसा है नहीं और हो भी तो क्या माँगना चाहिए ? मैं देखूंगा आज साले को ठीक न किया तो मेरा नाम गिरधारी नहीं। तू मोड़ पर बैठे चिरंजी पनवाड़ी से ले आ। मत जा उसके पास।

रमा : तो उसके पैसे क्यों नहीं दे देते ? लो, दे दो।

गिरधारी : तू मत बोल, मैं एक भी पैसा नहीं दूंगा। जा, दौड़ के जा, मेरा नाम लीजो।

कृष्ण० : पर जो जिसका है वह तो उसे देना ही चाहिए। दे दीजिए। मैं दे दूँ, वैसे मैं पान नहीं खाता हूँ, रहने दीजिए। (पैसे जेब से निकालता है।)

गिरधारी : रहने दीजिए, मैं पान तो आपको खिलाऊँगा ही। बिना पान खाये आप जा ही कैसे सकते हैं। हां, जा। पहली बार आप आए। आज उस मोती के बच्चे को देखना है।

लछमन : अच्छा, जाता हूँ बाबूजी, पर यह घेर वाली जमीन तो हमारी है न ?

गिरधारी : हां-हां, पर तुझे उससे क्या ? जा जल्दी।

कृष्ण० : मैं भी अपनी घेर वाली जमीन के बारे में सोच रहा हूँ। न हो एक छप्पर डलवा दूँ या किसी टालवाले को दे दूँ।

गिरधारी : क्षमा कीजिए । वह जमीन, उस पर तो मेरा कब्जा है । मैंने ही तो उसे इतने दिनों खाली छोड़ रखा था ।

रमा : उस पर कोई कब्जा कैसे कर सके है ?

कृष्ण० : पर वह तो हमारी है, हमीं ने उसे इतने दिनों तक खाली छोड़ रखा था। आजकल मँहगाई के दिन हैं इसलिए…

गिरधारी : लेकिन वह तो मेरी है। सुनिए कृष्णमनोहरजी, मैं लड़की की शादी कर रहा हूँ तो यह मतलब नहीं कि आप मेरी जमीन दबा लें । यह हरगिज-हरगिज नहीं होगा । (कड़ककर) बेईमानी…

कृष्ण० : पर उस पर तो आपका कब्जा कभी भी नहीं था ?

रमा : हमारा तो सदा से उस पर कब्ज रिया है, कौन कँवे है ?

कृष्ण० : तो वह जमीन आपकी है ?

गिरधारी : (ताल ठोककर) मेरी, मेरी और मेरी ! किसी ने हाथ लगाया तो…

कृष्ण० : क्या कह रहे हैं आप ?

गिरधारी : जो मैं कह रहा हूँ वही ।

कृष्ण० : आश्चर्य है । वह जमीन आपकी कैसे हो गई ?

रमा : जैसे होती है वैसे हो गई । व्याह करने आए हो तो क्या हमें लूट लोगे ?

कृष्ण० : (उसी गम्भीरता से) लूटने का तो इसमें कोई प्रश्न ही नहीं है । मैं जानता हूँ वह जमीन का टुकड़ा मेरा है । बहुत दिनों से खाली पड़ा है । अब…

गिरधारी : (उसी तेजी से) वह जमीन मेरी है । मैं उसका मालिक हूँ। मैंने ही उसे खाली छोड़ रखा था। इसका मतलब यह नहीं है कोई भी ऐरा-गैरा नत्थू-खैरा उस पर कब्जा कर ले । खून न पी जाऊँगा ।

कृष्ण० : तो सुनो मि० गिरधारीलाल, यह साफ बेईमानी है । वैसे कोई बात नहीं, पर यह अधिकार का मामला है । मेरे पास और जमीन होती तो मैं छोड़ देता, पर मजबूर हूँ ।

गिरधारी : तो सुनो मि० कृष्णमनोहर, कान खोलकर सुन लो, मैं यह धाँधली नहीं चलने दूँगा। जो कोई उस जमीन को हाथ लगाएगा उसके सिर की खैर नहीं है । कान खोलकर सुन लो ।

कृष्ण० : यह शादी नहीं होगी । मैं जाता हूँ । मुझे नहीं मालूम था, लोग इतने बेईमान होते हैं (उठता है), जो दूसरे की जमीन भी हड़पना चाहते हैं।

गिरधारी : तुम हमको बेईमान समझते हो ?

कृष्ण० : लेकिन मैं अपने को भी बेईमान नहीं मानता ।

गिरधारी : लेकिन मुझे लगता है ।

कृष्ण० : कि मैं बेईमान हूँ, क्यों ?

गिरधारी : हाँ।

कृष्ण० : तो फिर इसका फैसला कचहरी में होगा ।

गिरधारी : जरूर, भला इसी में है कि तुम यहाँ से चले जाओ,

मुझे गुस्सा आ रहा है। भाग यहां से सूअर ! (दौड़ता है उसकी तरफ।)

कृष्ण० : (डरकर) पर सुनो तो सही, इस तरह का व्यवहार···

गिरधारी : ऐसी-तैसी तुम्हारे व्यवहार की। भुखमरे साले कहीं के !

कृष्ण० : मेरा खयाल है तुम ग़लती पर हो। मैं जाता हूँ। गंज पर के घेरवाली जमीन तुम्हारी नहीं है। (चला जाता है।)

दोनों : (चिल्लाकर) गंज के घेर वाली ?

रमा : नहीं, गंज के घेर वाली जमीन हमारी नहीं है।

गिरधारी : गंज की कैसी ?

रमा : कोई होगी गंज में जमीन। तो उनसे कह दो न गंजवाली जमीन हमारी नहीं है, तुम्हारी ही है। जाओ, दौड़कर जाओ। हाय, किया-कराया सब मिट्टी में मिल गया। न जाने मैं भी कैसी हूँ। कटकर गिर भी तो नहीं पड़ती यह मरी जीभ।

गिरधारी : मुझे क्या मालूम था कि यह गंज की जमीन की बाबत बातचीत हो रही है। मैंने अपनी जमीन समझी। अब क्या हो ?

रमा : हो क्या, मैं औरत जात नहीं समझती थी तो तुम तो समझते। तुमने गाली देना शुरू कर दिया।

गिरधारी : गाली तो पहले तूने ही दी थी। मैं तो चुप था।

रमा : तुम्हीं ने कहा था, किसी ने हाथ लगाया तो···सोच तो लेते पहले क्या बात है, कौन-सी जमीन है, कहाँ है, फिर बात करते। पर नहीं, हर एक बात में लड़ पड़ोगे। अब बुलाओ न उन्हें। हाय राम, अब वे आ जाएँ तो मैं उनके पैरों पर गिर पड़ूँ।

गिरधारी : मैं इतना झूठ बोला, इतनी प्रशंसा की, इतनी खुशामद की···मैं क्या करूँ ! अब वह नहीं मानेंगे।

रमा : लड़की का मरा भाग ही ऐसा है जहाँ बात चले है वहीं कोई-न-कोई विघन पड़ जाए है। क्यों न किसी ज्योतिषी को दिखाओ ?

गिरधारी : पहले तू अपनी जबान को रोक, ज्योतिषी तो पीछे देखेगा।

रमा : और तुम तो अम्रित घोल रहे हो ? छूटते ही गाली। हाथापाई को उतारू।

गिरधारी : (सिर पकड़कर बैठ जाता है।)

रमा : लो, उठो दफ्तर को देर हो रही है। मुझे तो ग्रहदशा लगे है।

गिरधारी : क्या कोई उपाय नहीं है उनके लौटने का ? यदि अब के आ जाएँ तो मैं उनके पैरों की धूल चाट लूँ।

रमा : और अब के आ जाएं तो मैं उनके पैर धोकर पी लूँ। न जाने कौन-सी ग्रहदशा है, नहीं तो हम दोनों पर यह भूत न सवार होता। तभी तो कहें हैं···

गिरधारी : क्या कहें हैं ?

रमा : न जाने क्या कहें हैं, मरे को मैं क्या जानूं। कोई ग्रहदशा ही होगी।

४

सबसे बड़ा आदमी

भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा का जन्म उत्तर प्रदेश के शफीपुर, जिला उन्नाव में सन् १९०३ में हुआ। आपने कवि के रूप में साहित्य-क्षेत्र में प्रवेश किया। कवि के साथ आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध उपन्यासकार भी हैं।

नाटककार के रूप में वर्मा जी की विशेष ख्याति नहीं है, फिर भी आपने जितने एकांकी नाटक लिखे हैं वे सभी उच्चस्तरीय हैं। सामाजिक वैषम्य और विरोध का आभास देने तथा रूढ़ियों के ध्वंसात्मक चित्र प्रस्तुत करने में तो आपको अद्भुत सफलता मिली है। 'सबसे बड़ा आदमी' आप का एक प्रसिद्ध एकांकी है जिसमें इसी प्रकार के एक व्यंग्यात्मक चित्र को लेखक ने बड़ी समर्थ शैली में अंकित किया है।

वर्मा जी की भाषा में ओज गुण की प्रधानता है। बड़े सशक्त शब्दों में चयन कर वे प्रवाहपूर्ण भाषा लिखने के अभ्यासी हैं। नाटकों में उनकी भाषा अपेक्षाकृत सरल और पात्र तथा देश के अनुकूल रहती है।

रचनाएँ

चित्रलेखा, तीन वर्ष, भूले-बिसरे, चित्र रेखा, सबहि नचावत राम गोसाईं, रुपया उन्हें खा गया, सीधी-सच्ची बातें आदि।

पात्र

गजाती : एक रेस्टोरॉं का मालिक
राधे, शंकर : दो दोस्त
शर्माजी : एक स्वदेश-भक्त
अहमद : एक कामरेड
रामेश्वर : एक उचक्का
मि० वर्मा : एक एडवोकेट
चिरौंजी : रेस्टोरॉं का बैरा

गजाती की रेस्टोराँ की दुकान है। सामने वाली दीवार को ढके हुए दो आलमारियाँ कोनों से मिली रखी हैं। एक आलमारी में चीनी के बर्तन, काँटे, छुरी आदि हैं; दूसरी में शक्कर, पावरोटी आदि सजे रखे हैं। दोनों आलमारियों के बीच में एक मेज रखी है, जिसमें शीशे के ढकने लगे हैं। मेज में केक, मिठाइयाँ आदि रखी हैं।

कमरे की दाहिनी दीवार में तीन दरवाजे हैं जिन पर परदे पड़े हैं। ये दरवाजे सड़क पर खुलते हैं। कमरे की बायीं ओर बीचोंबीच एक दरवाजा है।

कमरे के बीचोंबीच सामने की दीवार के सामने दो लम्बी-लम्बी मेजें पड़ी हैं—इन मेजों पर तख्तों की जगह सीमेन्ट के टुकड़े जड़े हैं। मेजों के इधर-उधर कुर्सियाँ पड़ी हैं। दाहिनी तरफ दरवाजे से मिली हुई एक मेज है, जिसके सामने एक कुर्सी पड़ी है। उस कुर्सी से मिली हुई दाएँ-बाएँ एक आराम-कुर्सी पड़ी है। आराम-कुर्सी की पीठ मेज की तरफ है।

गजाती साहब आरामकुर्सी पर लेटे हुए अखबार पढ़ रहे हैं। कद नाटा—शरीर दुबला-पतला। स्पोर्ट शर्ट और पतलून पहने हैं, पैरों में मोज़ा नदारद और चप्पल पहने हैं। दाढ़ी-मूंछ साफ—उनकी उम्र पचीस से पैंतालीस तक अन्दाजी जा सकती है। बायीं ओर से चिरौंजी का प्रवेश।

चिरौंजी : बाबूजी! (गजाती चुप) बाबूजी!

गजाती : (अखबार पर से नजर उठाकर चिरौंजी की तरफ देखते हुए) क्या बे!

चिरौंजी : चाय ले जाई?

गजाती : हाँ। (अखबार उठाता है।)

[चिरौंजी दरवाजे तक जाता है।]

गजाती : चिरौंजी! इधर आओ।

[चिरौंजी लौटता है।]

गजाती : क्यों जी, आज तुमने एक रोटी में आठ स्लाइसें क्यों निकाली, जबकि मैंने सोलह निकालने को कल कह दिया था?

चिरौंजी : बाबूजी!

गजाती : (उँगलियों पर हिसाब लगाते हुए) बाबूजी-बाबूजी क्या करना है—एक··· दो···तीन···सात···आठ···हाँ, अभी तक आठ रोटियाँ ज्यादा खर्च हुई। ये आठ आने तुम्हारी तनख्वाह से काटे जावेंगे।

चिरौंजी : बाबूजी मर जायेंगे।

गजाती : अबे, बाबूजी नहीं मरेंगे—मरेगा तू!

चिरौंजी : अबकी बाबूजी माफ करें—आगे से सोलह नहीं बत्तीस स्लाइस निकालूँगा

[बाहर से आवाज आती है।]

ए० ग्रा० : तुम मेरी बात नहीं समझते।

दू० ग्रा० : अगर तुम ठीक बात कहो तो वह सबकी समझ में आ सकती है।

गजाती : (चिरौंजी से) जा बे, काम कर।

[चिरौंजी जाता है।]

[दाहिनी ओर से शंकर और राधे का प्रवेश। शंकर पोलोशर्ट और हाफ पैंट पहने है। हृष्ट-पुष्ट, खूबसूरत युवक। राधे रेशम का कुर्ता और महीन धोती पहने है। आंखों पर चश्मा—इकहरे बदन का दुबला-सा युवक। राधे और शंकर गजाती की पासवाली कुर्सियों पर आमने-सामने बैठते हैं।]

राधे : मिस्टर शंकर, आप शेली[1] को समझे नहीं। नेपोलियन[2] की क्या हस्ती जो शेली की समता कर सके!

शंकर : हाँ जनाब, वह पिनपिनाने वाला शेली! उसकी नेपोलियन से तुलना करना नेपोलियन का अपमान करना है।

राधे : अच्छा, आप बतलाइये कि इतनी ऊँचाई, इतनी गहराई, इतनी पवित्रता, इतना विद्रोह और इतना सत्य, जितना शेली की पक्तियों में है, कहाँ मिलेगा? उसने जो संसार को सन्देश दिया है, वह नेपोलियन के वश की बात कहाँ थी? शेली ने हमें प्रेम का मार्ग दिखलाया, उसने वर्बरता और पशुता के उन सिद्धान्तों का खण्डन किया, जिनका नेपोलियन प्रवर्त्तक था।

शंकर : देखो जी राधे, शेली ने जो कुछ कहा वह सब पागलपन था। किस पवित्रता और किस सन्देश की बातें कर रहे हो? इनका दुनिया में कोई अस्तित्व ही नहीं। नेपोलियन शक्ति का प्रतिनिधि था और शक्ति ही सत्य है, नित्य है। कल्पना के लोक में जो आदमी विचरता है, वह कायर है। इस वास्तविक जगत् से मुंह छिपाकर वह कल्पना का जगत् बनाता है। आदमी तो वह है जो इसी दुनिया को अपनी कल्पना की दुनिया में बदल सके। नेपोलियन में वह ताकत थी—वह व्यक्तित्व था।

राधे : नेपोलियन पशु था।

शंकर : और शेली अपाहिज था।

[गजाती उठते हैं, पास आकर खड़े होते हैं।]

गजाती : किस बात पर बहस छिड़ी है? (मेज के सिरे की कुर्सी पर बैठ जाते हैं।) चा मंगवाऊँ?

शंकर : दो प्याले चा!

गजाती : (जोर से पुकारता है) तीन प्याले चा! (राधे से) हाँ साहेब, किस बात पर बहस छिड़ी है?

---

१. एक प्रख्यात अंग्रेजी कवि।

२. जगत्-प्रसिद्ध फ्रांसीसी विजेता।

राधे : मिस्टर गजाती, मिस्टर शंकर नेपोलियन को शेली से बड़ा बताते हैं। शैतान की तारीफ कर रहे हैं, फ़रिश्ते की निन्दा करके !

शंकर : जी हां—गजाती साहेब ! ये राधे साहेब उन जनाने शेली की तारीफ कर रहे हैं—एक बौने की एक योद्धा से तुलना कर रहे हैं !

[चाय आती है ।]

गजाती : (सिर पर हाथ फेरते और कुछ सोचते हुए) मामला तो बड़ा टेढ़ा है ।

राधे : मिस्टर गजाती, आपने आॅन्द्रे-मोसाव[1] की 'एरियल' पढ़ी है ?

गजाती : ओह, वह एक महान् ग्रंथ है और शेली एक महान् व्यक्ति था !

शंकर : और गजाती साहेब, अपने एबट की 'लाइफ आॅफ नेपोलियन' पढ़ी है ?

गजाती : वह एक महान् ग्रन्थ है और नेपोलियन एक महान् व्यक्ति था ।

[शर्मा जी का प्रवेश । मोटे-से आदमी; खद्दर का कुर्त्ता-धोती । कांग्रेसशाही झोला कुर्सी की पीठ पर लटका देते हैं; टोपी मेज पर रख देते हैं । कुर्सी पर बैठ जाते हैं ।]

राधे : (चाय पीता हुआ) मिस्टर गजाती, आपकी चा उतनी ही सुन्दर है, जितना शेली था !

शंकर : मिस्टर गजाती, आपकी चा उतनी ही तगड़ी है, जितना नेपोलियन था !

[शर्मा जी सतर्क होते हैं, कनखियों से राधे और शंकर को देखते हैं; फिर गजाती को इशारे से बुलाते हैं । गजाती पास जाता है ।]

शर्माजी : एक प्याला चा !

[गजाती आवाज देता है—'एक प्याला चा !' फिर लौटता है ।]

राधे : शंकर, मुझे दुःख है कि तुम जीवन में कवि की महत्ता नहीं समझते !

शंकर : जी हाँ, मैं बेवकूफी से दूर रहना ही ठीक समझता हूँ ।

राधे : बेवकूफी—तुम शैतान के उपासक !

शंकर : देखो राधे, जरा सोच-सम्हलकर ! योद्धा का उपासक यदि कुछ क्षणों के लिए स्वयं योद्धा बन जाय तो कोई ताज्जुब की बात नहीं !

गजाती : (बैठता हुआ) मिस्टर शंकर ! साधारण बातचीत में इस तरह गरम हो जाना ठीक नहीं ।

शर्माजी : (उस ओर मुखातिब होकर) भ्राताओ, वन्दे ! आपको इस प्रकार कलह करना शोभा नहीं देता ।

[दोनों मुड़कर आश्चर्य से उस ओर देखते हैं ।]

शर्माजी : क्या मैं यह पूछने का साहस कर सकता हूँ कि आप सज्जनों में विवाद का विषय क्या है ?

शंकर : यह झगड़ा हमारा पर्सनल (निजी) है—आपको दस्तन्दाजी की कोई जरूरत

---

१. प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक, जिसने 'एरियल' नाम से शेली की जीवनी लिखी है

नहीं।

शर्माजी : गांधी-गांधी ! कितना भयानक पतन हो गया हमारे नवयुवकों का ! वे विशुद्ध मातृभाषा का प्रयोग तक नहीं कर सकते, शिष्ट होना तो दूर रहा !

राधे : मैं अपने अशिष्ट मित्र की ओर से माफी माँगे लेता हूँ।

[मिस्टर वर्मा एडवोकेट का प्रवेश। सफेद पतलून जो काफी मैली हो चुकी है तथा काला कोट जो अब जवाब देने लगा है, पहने हैं। टाई अस्त-व्यस्त, कॉलर इतना ऊपर चढ़ गया है कि कमीज और कॉलर के बीच गरदन साफ दिखाई देती है।]

वर्मा : (मेज के पास खड़े होते हैं, तीनों सज्जनों को गौर से देखते हैं। ठंडी साँस भरते हैं और शंकर की बगल में बैठ जाते हैं) एक प्याला चा !

गजाती : (आवाज देता है) एक प्याला चा !

शंकर : राधे ! तुमने मुझे अशिष्ट क्यों कहा ? मुझ से माफी माँगो।

गजाती : अरे, जाने भी दीजिये।

शंकर : नहीं, इन्हें माफी मांगनी ही पड़ेगी।

राधे : (शर्माजी की ओर इशारा करते हुए) पहले इनसे माफी मँगवाइये, मिस्टर शंकर।

शंकर : (शर्माजी से) देखिए, आप कौन हैं जो हम लोगों की बातों में कूद पड़े ? आप माफी मांगिए।

शर्माजी : मैं सत्याग्रही हूं—देश का सेवक हूँ। मैंने सरकार तक से माफी नहीं माँगी और जेल चला गया। पिता से लड़कर घर छोड़ आया हूँ, पर उनका फिर मुंह नहीं देखा, और परिणाम यह हुआ कि भूखों मर रहा हूँ। सत्याग्रह करने के समय पुलिस ने मुझे डण्डों से मारा, शराब की पिकेटिंग करने के समय शराबियों ने मुझे लातों से मारा और कर-बन्दी आन्दोलन के समय जमींदारों ने मुझे जूतों से मारा, पर मैंने कभी क्षमा-प्रार्थना नहीं की।

[शर्मा कहते-कहते कुछ अकड़ जाते हैं।]

वर्मा : (शंकर से) इनके ऊपर मानहानि का मुकद्दमा दायर कर दीजिए !

शर्माजी : गांधी-गांधी ! इन्हीं वकीलों के कारण तो हम अधःपतन की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। वकील साहेब ! आपको मानहानि की परिभाषा भी विदित है ?

[नौकर चाय लाता है।]

राधे : (मिस्टर वर्मा से) आप शायद एडवोकेट हैं ?

वर्मा : मुझे एडवोकेट होने का सौभाग्य प्राप्त है। (छाती पर हाथ रखते हैं और गरदन झुकाते हैं।)

राधे : आप अच्छे आ गये। हम दोनों में यह तय नहीं हो रहा था कि शेली बड़ा था या नेपोलियन ?

शर्माजी : दोनों ही पतित थे ! इस संसार में सबसे बड़े है महात्मा गांधी।

वर्मा : महात्मा गांधी बड़े हैं, उन्होंने अपना जीवन वकील की हैसियत से आरम्भ किया था और बिना वकालत पढ़े कोई आदमी बड़ा हो ही नहीं सकता। न शेली ने वकालत पढ़ी थी और न नेपोलियन ने।

[कॉमरेड अहमद का प्रवेश]

अहमद : हैलो ! गजाती—चा !

गजाती : (आवाज देता है) एक प्याला चा !

[थोड़ी देर तक सब चुप रहते हैं—अहमद सब लोगों को ध्यान से देखता है।]

शंकर : जी हाँ, आप वकील हैं। जरा आपका हुलिया तो देखिए !

[मिस्टर वर्मा अपना कॉलर और टाई ठीक करते हैं।]

राधे : (शंकर से) देखिए, कृपा करके आप किसी शरीफ आदमी का अपमान मत कीजिए।

अहमद : (हँसता है) वकील और शराफत—मजेदार बात है। (शर्माजी से) कहिये जनाब, वकील और शराफत ! इतनी मजेदार बात कभी आपने सुनी ?

शर्माजी : अवश्य, भ्राता—आप उचित कथन करते हैं। हमारे देश के एकमात्र नेता और विश्व के एकमात्र महापुरुष महात्मा गांधी का आदेश है कि वकालत छोड़ देनी चाहिए। गांधी-गांधी ! ये वकील कितने पतित होते हैं !

अहमद : गांधी ! वह 'अहिंसा-अहिंसा' पुकारने वाला गांधी—गलत रास्ते पर चलने वाला और दूसरों को चलाने वाला—अरे, वह खब्ती फकीर—वह महात्मा —क्या कहा, दुनिया का सिर्फ अकेला बड़ा आदमी ?

शंकर : खूब कहा—खूब ! जनाब, जरा आपको देखिए, आप कह रहे थे कि गांधी नेपोलियन से भी बड़ा था। शर्म नहीं आती।

अहमद : (शंकर से) देखो जी, मुझे जनाब-बनाब मत कहना वरना आदमी मैं बिगड़ैल हूँ। मुझे सिर्फ कामरेड कहो।

[रामेश्वरप्रसाद का प्रवेश। नाटे कद के दुबले-से आदमी, शेरवानी और चूड़ीदार पाजामा। पैरों में चप्पल, बाल बड़े-बड़े और बिखरे हुए। बैठ जाते हैं।]

शर्माजी : (कान में उंगली देते हुए) महाशय जी, मेरी एक प्रार्थना है कि आप लोग एक देवता का अपमान न करें, नहीं तो आप एक भयानक नरक के भागी होंगे।

अहमद : नरक ! हाः हाः हाः ! इस नरक को तो लेनिन[1] ने बहुत पहले ही नेस्तनाबूद कर दिया है।

राधे : दूसरा हत्यारा।

अहमद : क्या कहा—हत्यारा ? हाँ, अगर हत्यारा कहते हो तो मुझे [illegible]

---

१. रूस का क्रान्तिकारी नेता।

नहीं। लेकिन इतना तय है कि लेनिन-सा बड़ा आदमी न कभी पैदा हुआ और न कभी पैदा होगा। (मेज पर हाथ पटकता है।)

रामेश्वर : आप ठीक कहते हैं, लेनिन में बिखरी हुई शक्तियों का प्रबल संग्रह, उसका व्यक्तीकरण, उसकी उग्रता—ये सब मिलेंगे। लेनिन—नियति के क्रम और विकास में उसका प्रमुख हाथ है!

शर्माजी : घोर पतन है भारत माता का! देश के कपूतो! तुम अपने देवता, अपने इष्टदेव महात्मा गांधी को नहीं पहचान रहे हो—धिक्कार है!

रामेश्वर : महात्मा गांधी देवता हैं, इसमें भी कोई शक नहीं। उनकी गणना अवतारों में की जा सकती है।

शंकर : ये दोनों नेपोलियन की बराबरी नहीं कर सकते।

रामेश्वर : नेपोलियन हीरो था हीरो! उसका नाम विश्व-इतिहास में अमर है। नेपोलियन! अहा—वह तूफान की भाँति आया और पतझड़ की भाँति चला गया।

राधे : क्या नेपोलियन शेली से बड़ा था?

रामेश्वर : शेली! शेली फरिश्ता था फरिश्ता! अहाहा शेली! उसने दुनिया को एक सन्देश दिया।

[नौकर चाय का प्याला रामेश्वर के सामने रखता है।]

रामेश्वर : (चाय पीते हुए) ये लोग दानव थे—दानव! मानव-समाज में दानव ही मान पा सकते हैं!

अहमद : (रामेश्वर से) आप शायद शायर हैं!

रामेश्वर : जी हाँ, मैं कलाकार हूं! (चाय पीता है।)

शर्माजी : आपने कौन-कौन पुस्तकें लिखी हैं?

रामेश्वर : अभी नहीं लिखी हैं—लिखने वाला हूं। अभी तो लिखने के लिए मसाला ढूंढ रहा हूं! (चाय पीता है।)

शंकर : वैसे आपका पेशा क्या है?

रामेश्वर : मेरा पेशा क्या है? क्या आप यह पूछना चाहते हैं कि रोजी कमाने के लिए मैं क्या करता हूं? (चाय पीता है, सिर उठाकर हँसता है।) हाः हाः हाः! बड़ा मजेदार सवाल है। तो जनाब इस सवाल का जवाब यह है कि मैं सब कुछ करता हूं और कुछ भी नहीं करता। मैं घूमता हूं, मौज करता हूं और यही जिन्दगी है। मैं लोगों को देखता हूं, उन्हें समझता हूं—और उसके बाद…? उसके बाद की बात न कोई जानता है, न जान सकता है। (चाय खतम कर देता है।)

राधे : आप अजीब तरह के आदमी हैं!

रामेश्वर : जी हाँ, मैं अजीब तरह का आदमी हूं। लेकिन दुनिया में यह जरूरी है कि हरएक आदमी अजीब तरह का हो। दुनिया में यह जरूरी है कि अजीब तरह का आदमी बना जाय। और जो अजीब तरह का आदमी नहीं बन

सकता, वह दुनिया में बढ़ भी नहीं सकता। समझे! (उठता है—चलकर अहमद के पीछे खड़ा होता है।) आप लोग जिन-जिन लोगों के नाम ले रहे थे वे सब अजीब तरह के आदमी थे—थे न! (चलकर मि० वर्मा के पास रुकता है।) और आप लोग चूंकि अजीब तरह के आदमी नहीं है, इसलिए इन लोगों की तारीफ करते हैं—इन पर लड़ने के लिए आमादा हो जाते हैं। लेकिन मैं एक बात जानता हूं—बड़ा वह है जो दुनिया को देने के बजाय उससे वसूल कर सके—इन सब लोगों ने दुनिया से वसूल ही किया, उसे दिया कुछ भी नहीं। (शंकर के पास खड़ा होता है।) लेकिन मैं समझता हूं कि वे सब के सब मर गये—एक गांधी को छोड़कर, और जो मर गया, वह समाप्त हो गया। बड़ा वह जो वसूल कर सके—रुपया-पैसा, दीन-ईमान सब कुछ आपसे छीन सके—और जो मर गया वह कुछ नहीं वसूल कर सकता। आज उसकी कोई हस्ती नहीं और जब उसकी कोई हस्ती नहीं, तो उसका नाम ही क्यों? (गजाती के सामने एक आना फेंकता है—दरवाजे और मेज के बीच खड़ा होकर) और इसी से जनाब, मैं कह सकता हूं कि आप सब गलती करते हैं। शेली, नेपोलियन, लेनिन, गांधी—ये सब नाम हैं—नाम। इन सबों से बड़ा—कहीं बड़ा मैं हूं, अभी आप लोगों पर यह साबित हो जायेगा। अच्छा दोस्तो, सलाम। (जाता है।)

शंकर : मुझे तो मालूम होता है कि इसका दिमाग खराब हो गया है।

अहमद : (हँसते हुए) बहुरूपिया था।

वर्मा : मगरूर लौंडा!

राधे : लेकिन बोलता खूब था।

शर्माजी : वह हमारी दया का पात्र है!

शंकर : चलो जी राधे, अभी हमारा मामला तय नहीं हुआ।

[शंकर उठता है और राधे भी उठता है। दोनों जेब में हाथ डालते हैं और निकाल लेते हैं।]

शंकर : मेरा पर्स गायब है!

राधे : मेरी, तो जेब ही गायब है। (कुरते की जेब दिखाता है।)

मिस्टर : (एक के बाद एक अपनी सब जेबें देखते हैं) अरे, एक हफ्ते में आज पांच रुपए का नोट मिला था वह भी गायब।

शर्माजी : अरे, मेरा झोला कहां गया? उसमें आज ही पचास रुपए चन्दे में लाया था, वे पड़े थे।

अहमद : एँ—ये जेब से रुपए कहां गए?

[सब एक-दूसरे का मुंह देखते हैं।]

गजाती : (सामने से इकन्नी उठाकर कैश-बक्स में डालना चाहता है लेकिन कैश-बक्स नदारद।) दोस्तो, मेरी राय है कि वह साहब सबसे बड़े आदमी थे!

नहीं। लेकिन इतना तय है कि लेनिन-सा बड़ा आदमी न कभी पैदा हुआ और न कभी पैदा होगा। (मेज पर हाथ पटकता है।)

रामेश्वर : आप ठीक कहते हैं, लेनिन में बिखरी हुई शक्तियों का प्रबल संग्रह, उसका व्यक्तीकरण, उसकी उग्रता—ये सब मिलेंगे। लेनिन—नियति के क्रम और विकास में उसका प्रमुख हाथ है!

शर्माजी : घोर पतन है भारत माता का! देश के कपूतो! तुम अपने देवता, अपने इष्टदेव महात्मा गांधी को नहीं पहचान रहे हो—धिक्कार है!

रामेश्वर : महात्मा गांधी देवता हैं, इसमें भी कोई शक नहीं। उनकी गणना अवतारों में की जा सकती है।

शंकर : ये दोनों नेपोलियन की बराबरी नहीं कर सकते।

रामेश्वर : नेपोलियन हीरो था हीरो! उसका नाम विश्व-इतिहास में अमर है। नेपोलियन! अहा—वह तूफान की भाँति आया और पतझड़ की भाँति चला गया।

राधे : क्या नेपोलियन शेली से बड़ा था?

रामेश्वर : शेली! शेली फरिश्ता था फरिश्ता! अहाहा शेली! उसने दुनिया को एक सन्देश दिया।

[नौकर चाय का प्याला रामेश्वर के सामने रखता है।]

रामेश्वर : (चाय पीते हुए) ये लोग दानव थे—दानव! मानव-समाज में दानव ही मान पा सकते हैं!

अहमद : (रामेश्वर से) आप शायद शायर हैं!

रामेश्वर : जी हाँ, मैं कलाकार हूं! (चाय पीता है।)

शर्माजी : आपने कौन-कौन पुस्तकें लिखी हैं?

रामेश्वर : अभी नहीं लिखी हैं—लिखने वाला हूं। अभी तो लिखने के लिए मसाला ढूंढ रहा हूं! (चाय पीता है।)

शंकर : वैसे आपका पेशा क्या है?

रामेश्वर : मेरा पेशा क्या है? क्या आप यह पूछना चाहते हैं कि रोजी कमाने के लिए मैं क्या करता हूं? (चाय पीता है, सिर उठाकर हँसता है।) हाः हाः हाः! बड़ा मजेदार सवाल है। तो जनाब इस सवाल का जवाब यह है कि मैं सब कुछ करता हूँ और कुछ भी नहीं करता। मैं घूमता हूँ, मौज करता हूँ और यही जिन्दगी है। मैं लोगों को देखता हूं, उन्हें समझता हूँ—और उसके बाद···? उसके बाद की बात न कोई जानता है, न जान सकता है। (चाय खतम कर देता है।)

राधे : आप अजीब तरह के आदमी हैं!

रामेश्वर : जी हाँ, मैं अजीब तरह का आदमी हूँ। लेकिन दुनिया में यह जरूरी है कि हरएक आदमी अजीब तरह का हो। दुनिया में यह जरूरी है कि अजीब तरह का आदमी बना जाय। और जो अजीब तरह का आदमी नहीं बन

सकता, वह दुनिया में बढ़ भी नहीं सकता । समझे ! (उठता है—चलकर अहमद के पीछे खड़ा होता है ।) आप लोग जिन-जिन लोगों के नाम ले रहे थे वे सब अजीब तरह के आदमी थे—थे न ! (चलकर मि० वर्मा के पास रुकता है ।) और आप लोग चूँकि अजीब तरह के आदमी नहीं हैं, इसलिए इन लोगों की तारीफ करते हैं—इन पर लड़ने के लिए आमाद हो जाते हैं । लेकिन मैं एक बात जानता हूँ—बड़ा वह है जो दुनिया को देने के बजाय उससे वसूल कर सके—इन सब लोगों ने दुनिया से वसूल ही किया, उसे दिया कुछ भी नहीं । (शंकर के पास खड़ा होता है ।) लेकिन मैं समझता हूँ कि वे सब के सब मर गये—एक गांधी को छोड़कर, और जो मर गया, वह समाप्त हो गया । बड़ा वह जो वसूल कर सके—रुपया-पैसा, दीन-ईमान सब कुछ आपसे छीन सके—और जो मर गया वह कुछ नहीं वसूल कर सकता । आज उसकी कोई हस्ती नहीं और जब उसकी कोई हस्ती नहीं, तो उसका नाम ही क्यों ? (गजाती के सामने एक आना फेंकता है—दरवाजे और मेज़ के बीच खड़ा होकर) और इसी से जनाब, मैं कह सकता हूँ कि आप सब गलती करते हैं । शेली, नेपोलियन, लेनिन, गांधी—ये सब नाम हैं—नाम । इन सबों से बड़ा—कहीं बड़ा मैं हूँ, अभी आप लोगों पर यह साबित हो जायेगा । अच्छा दोस्तो, सलाम । (जाता है ।)

शंकर : मुझे तो मालूम होता है कि इसका दिमाग खराब हो गया है ।

अहमद : (हँसते हुए) बहुरूपिया था ।

वर्मा : मगरूर लौंडा !

राधे : लेकिन बोलता खूब था ।

शर्माजी : वह हमारी दया का पात्र है !

शंकर : चलो जी राधे, अभी हमारा मामला तय नहीं हुआ ।

[शंकर उठता है और राधे भी उठता है । दोनों जेब में हाथ डालते हैं और निकाल लेते हैं ।]

शंकर : मेरा पर्स गायब है !

राधे : मेरी, तो जेब ही गायब है । (कुरते की जेब दिखाता है ।)

मिस्टर : (एक के बाद एक अपनी सब जेबें देखते हैं) अरे, एक हफ्ते में अब [illegible] रुपए का नोट मिला था वह भी गायब ।

शर्माजी : अरे, मेरा झोला कहाँ गया ? उसमें आज ही पचास रुपए [illegible] था, वे पड़े थे ।

अहमद : ऐं—ये जेब से रुपए कहाँ गए ?

[सब एक-दूसरे का मुँह देखते हैं ।]

गजाती : (सामने से इकन्नी उठाकर कैश-बक्स में डालता [illegible] बक्स नदारद ।) दोस्तो, मेरी राय है कि वह [illegible]

५
विषकन्या

गोविन्दवल्लभ पन्त

श्री गोविन्दवल्लभ पंत का जन्म रानीखेत, जिला अल्मोड़ा में हुआ था। सन् १९२० में असहयोग आन्दोलन में सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज, काशी से पढ़ना-लिखना छोड़कर मेरठ की 'व्याकुल भारत नाटक कम्पनी' में नाटककार नियुक्त हो गए। कम्पनी के टूट जाने पर पहाड़ चले गए और ताड़ीखेत के गांधी-आश्रम से कुछ वर्षों तक संयुक्त रहे। इसके बाद कई वर्ष तक लेखनी के ही श्रम को जीवन और जीविका का लक्ष्य बनाया। बीच-बीच में सिनेमा और नाटक-कम्पनियों में भी रहे। बनारस, लखनऊ और बम्बई की प्रेसों में भी कुछ समय तक पत्रकार के रूप में कार्य किया। हिन्दी नाट्य तथा उपन्यास क्षेत्र में आपका अग्रगण्य स्थान है।

रचनाएँ

नूरजहां, जल-समाधि, पर्णा, सुजाता, विषकन्या, मदारी, चक्रकांत, मुक्ति के बंधन, वरमाला, अमिताभ, प्रगति की राह, मैत्रेय, फॉरगेट मी नॉट सपने आदि।

पात्र

चन्द्रविजय : विजेता राजा

अपराजिता : विजित पक्ष की कन्या

पहला सेनापति }
दूसरा सेनापति } : चन्द्रविजय के सेनापति

एक सैनिक

स्थान : पराजित शत्रु से छीने गए दुर्ग के प्रासाद में एक सुसज्जित शयनागार।

समय : संध्या।

खुले वातायन के पास एक सुन्दर शैया बिछी हुई है और एक पिंजरे में बन्द एक कपोत लटक रहा है। महाराज चन्द्रविजय के दो सेनापति प्रवेश करते हैं।

प० सेना० : क्यों मित्र सेनापति ! शत्रु के इस दुर्ग को जीत लेने में हमें कई महीने लगे हैं सही, पर यह विजय कहीं वहुमूल्य है।

दू० सेना० : लेकिन आश्चर्य इसी बात का है, विजित महाराज का पता न तो युद्ध के आहत और मृतकों में है, न बंदियों में ही उनकी गिनती हुई है।

प० सेना० : हो न हो वे किसी गुप्त सुरंग से सुरक्षा के स्थान को निकल गए।

दू० सेना० : और राजा का अंतःपुर ?

प० सेना० : वह क्या हमारे स्वागत के लिए यहाँ रख दिया जाता ? वे भी सब भाग गए होंगे। मेरी समझ में हमारे महाराज चन्द्रविजय के विश्राम के लिए यह प्रकोष्ठ सबसे अधिक उपयुक्त है।

दू० सेना० : लेकिन कुछ दिन बड़ी सावधानी से चौकसी रखनी पड़ेगी।

प० सेना० : ऐसा क्यों कहते हो ? हमने दुर्ग का एक-एक कोना छान डाला है, एक एक ईंट बजाकर सुन ली है। कहीं कोई सन्देह के आधार नहीं मिले हैं।

दू० सेना० : ये वज्रकूट-वासी, विश्वकर्मा का निर्माण बताकर अपने स्थापत्य की महिमा जताते हैं। ये घूम जानेवाले स्तम्भ, नीचे धँस जानेवाले धरा-तल और बीच से विभक्त हो जानेवाले प्राचीर हैं तो बड़े आश्चर्य-जनक ! तुम जिन भू-भागों को प्रांगण समझे हुए हो, वे गुप्त भवनों की छतें भी हो सकती हैं।

प० सेना० : छिपकर रहने के लिए वायु का प्रबन्ध हो सकता है, जल के भी कूप खुद सकते हैं। लेकिन इन सबके ऊपर जिस अनाज के दाने में मनुष्य की काया और कामना टिकी है, वह कहाँ से आएगा ? छः महीने से हमने उनका तमाम बाहरी संसर्ग काटकर रख दिया है। फिर क्यों तुम्हारे ऐसी संभावना जागती है ?

दू० सेना० : नीचे ही नीचे सुरंगों के मार्गों से अवश्य ही ग्रामों के साथ उन्होंने अपना सम्बन्ध बना रखा है।

प० सेना० : अगर ऐसा होता तो वे इतनी शीघ्र आत्मसमर्पण न कर सकते। आहत और मृतकों में महाराज के न मिलने की क्या चिन्ता ? दुर्ग की किसी

टूटी दीवार के नीचे उनका समाधिस्थ हो जाना कोई असम्भव नहीं है।
[दूसरा सेनापति एकाएक कुछ चौंकता है।]

प० सेना० : क्यों ? क्यों ? चौंकते क्यों हो ? क्या हो गया ?

दू० सेना० : मैंने किसी की साँस का शब्द सुना है।

प० सेना० : क्या विश्वकर्मा के बनाए किसी गुप्त और अदृश्य कक्ष में ? लेकिन यह तो बताओ वह साँस है कैसी, ठंडी या गरम ?

दू० सेना० : आशय तुम्हारा ?

प० सेना० : सेनापतिजी, विरह की साँस ठंडी और मिलन की गरम होती है। जो ठंडी होती है वही लम्बी भी। अब तो बताओ कैसी है वह ?

दू० सेना० : (ध्यान से सुनता है।) ठहरो, सुनने दो। (फिर सुनता है।) है, अवश्य है और वह ठंडी साँस है।

प० सेना० : एक बात और बताओ, नर की है या नारी की ?

दू० सेना० : हुं ! शब्द का भेद पाया जा सकता है, साँस का कैसे ?

प० सेना० : अजी महोदय, साँस ही पर तो शब्द ठहरा हुआ है।

सैनिक : (नेपथ्य में) महाराज चन्द्रविजय की जय !

दू० सेना० : महाराज तो स्वयं ही इधर आ गए।

चन्द्रविजय : (आकर) मैं तुम दोनों सेनापतियों की खोज में हूँ।

प० सेना० : और महाराज, हम आपके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थान ढूँढ रहे हैं।

दू० सेना० : यह कक्ष सर्वथा आपके योग्य है, परन्तु···

चन्द्रविजय : और तुमने तो इसे बिलकुल परिपूर्ण भी कर दिया है। खाने-पीने की वस्तुएँ ही नहीं, मनोरंजन के लिए वाद्य-यन्त्र भी लाकर रख दिए।

दू० सेना० : हमने इसमें कुछ नहीं किया महाराज, इसीलिए तो मैं कहता हूँ···

प० सेना० : तुम क्या कहते हो ? यह कक्ष ही कहता है कि शत्रु-पक्ष को इसका कुछ भी आभास नहीं था कि उनके दुर्ग का इतनी शीघ्र पतन हो जायगा।

चन्द्रविजय : भगवान का यह विचित्र विधान है। दास-दासियों ने यह शैया न जाने किसके लिए बिछाई और इसमें विश्राम करने को आ गया कौन ? (खड्ग एक कोने में रखता है और कमर के कटिबंध पर हाथ रखता है।)

दू० सेना० : (चन्द्रविजय का कटिबन्ध और कवच खोलने में सहायता देता है।) पर महाराज···

चन्द्रविजय : तुम्हारे भीतर विश्वास की मात्रा बहुत कम है, सेनापति ! ऐसा भी क्या ? दिन-भर के युद्ध से मैं बहुत थक गया हूँ। तुरन्त ही मेरे लिए विश्राम आवश्यक है। सच पूछो, तो यह शयनागार इस समय सबसे बड़ा वरदान है।

दू० सेना० : महाराज, मेरे कहने का आशय यही है, शत्रु के इस दुर्ग को जीत लेने

पर अगर हम पहली निशाओं में निद्रा के विलकुल वशीभूत हो गए, तो हम धोखा भी खा सकते हैं।

प० सेना० : तुम शत्रु की वात कहते हो, हमें धोखा देने में क्या हमारी इंद्रियां ही कम प्रवीण हैं? महाराज को विश्राम करने दो, सेनापति। उनकी रक्षा के लिए हम और हमारे अधीन इतनी वड़ी सेना क्या पर्याप्त नहीं है?
[दोनों मिलकर चन्द्रविजय के आयुध और कवच खोलकर यथास्थान रखते हैं।]

चन्द्रविजय : (शैया पर जाता है।) हाँ सेनापति, जो कुछ है उस पर कोई संशय न करो, जो नहीं है उसका आयोजन होना चाहिए।

प० सेना० : अगर एक गायिका होती तो इन वाद्य-यन्त्रों में प्राण प्रस्फुटित हो जाते और आपको विना प्रयास ही निद्रा आ जाती।

चन्द्रविजय : हँ-हँ-हँ! सेनापति, दिन-भर के कर्म की श्रांति संगीत से अधिक सम्मोहक है!

दू० सेना० : परन्तु…(कोने में से खड्ग उठाकर चन्द्रविजय के सिरहाने रख देता है।)

प० सेना० : दीपक में सब कुछ है, केवल ज्वाला अपेक्षित है। हम अभी उसे भेजते हैं। आप वेखटके सोइए, महाराज। आपकी सेवा में पुराने और पक्के प्रहरी नियुक्त हैं। ये द्वार वन्द कर दें?

दू० सेना० : नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है।

चन्द्रविजय : हाँ, ऐसी ही वात है।
[दोनों सेनापति जाते हैं। चन्द्रविजय सावधानी से सिर का मुकुट खोलकर शैया में ही एक ओर रख देता है। वह ज्यों ही सोने लगता है, त्यों ही एक ध्वनि पर उसका ध्यान खिच जाता है। वह एकाएक उठ वैठता है।]

चन्द्रविजय : हैं, अवश्य ही कोई है। कौन हो तुम? (फिर कुछ देर ध्यान लगाकर सुनता है।) निस्संदेह! मेरे अतिरिक्त और भी कोई तुम इस प्रकोष्ठ में साँस ले रहे हो? सामने क्यों नहीं आते? किसी भी [illegible] में तुम्हारा स्वागत है। मित्र हो तो वैसा कहो, नहीं तो मैं अपने [illegible] हुए आयुध फिर उठा लूँगा। (फिर कुछ प्रतीक्षा कर सुनता है। शैया छोड़कर भूमि पर खड़ा होता है। कक्ष में इधर-उधर देखता है।) कक्ष के भीतर तो नहीं जान पड़ते, बाहर कहीं हो क्या? (द्वार पर [illegible] दाएँ-वाएँ झाँकता है।) नहीं, [illegible] बहुत दूर पर कोई है। [illegible] साँस क्या वोल भी कानों को [illegible] है। (फिर भीतर आता है।) [illegible] क्या यह ध्वनि मेरे भीतर का ही [illegible] है? हूँ … [illegible] इसका एक कारण हो सकता है और कभी-कभी [illegible] अपने आप वोल उठती है। ([illegible] फिर कुछ [illegible]) निश्चय के साथ शैया की [illegible] उठाकर उसके नीचे

चकराकर पूछता है) हैं ! कौन हो तुम यहाँ पर छिपी और सिमटी हुई ? इतनी देर से मैं बड़बड़ा रहा हूँ और तुम प्रतिमा के कानों से सुन रही हो। तुम्हें तुरन्त ही मेरा भ्रम मिटा देना था। कौन हो, अब तो उत्तर दो ?

अपराजिता : पहले ये द्वार ढक दीजिये।

चन्द्रविजय : क्यों ? भय कैसा ?

अपराजिता : आपका परिचय पा चुकी हूँ मैं। मैं भी राजकुल की रमणी हूँ। अपनी बात भीड़ के बीच में अनावृत नहीं कर सकती।

चन्द्रविजय : ठीक है, ऐसा ही होना चाहिए। (द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा देता है।)

अपराजिता : शैया के नीचे से अपने वस्त्रालंकार सँभालती हुई बाहर निकल उठ खड़ी होती है और सिर नीचा कर लेती है।) अपराजिता मेरा नाम है। पिता के साथ पराजित हो जाने पर मेरे नाम की सारी महिमा जाती रही। ज्योतिषी की गणना पर मुझे क्यों न सन्देह हो ? कैसा नाम रख दिया उन्होंने मेरा ?

चन्द्रविजय : कोई चिन्ता न करो। तुम अविवाहित जान पड़ती हो ?

[अपराजिता और भी सिर नीचा कर चुप रहती है।]

चन्द्रविजय : तुम्हें ज्ञात होगा, महाराज कहाँ गए ? उनके अन्तःपुर का और तो कोई भी हमें नहीं दिखाई दिया। केवल तुम ही अकेली यहाँ कैसे रह गईं ?

अपराजिता : इसे मेरा दुर्भाग्य ही समझिए, महाराज ! भोजन के अभाव से पिता को जब दुर्ग-रक्षा की अन्तिम आशा छोड़ देनी पड़ी, तो कल आधी रात में उन्होंने परिवार-सहित दुर्ग का परित्याग कर देने का निश्चय किया। हतभागिनी मैं ही अकेली यहाँ छूट गई।

चन्द्रविजय : कभी-कभी निद्रा हमारी बड़ी वैरिन हो जाती है।

अपराजिता : नहीं महाराज, ऐसी तामसी रात में नींद ही किसे आती है ? एक रस्सी के सहारे सब लोग दुर्ग छोड़कर उतर गए। मैं स्वभाव से ही बड़ी भय-ग्रस्ता हूँ। बराबर अपनी बारी को टालती रही। सब-के-सब उतर गए, तब भी मेरे साहस जमा नहीं हुआ। सबके अन्त में अचानक वह रस्सी कई दासियों के बोझ से टूट गई, तब जाकर मेरे उत्साह हुआ ! फिर क्या होता ?

चन्द्रविजय : इसके लिए तुम्हें कोई चिन्ता न होनी चाहिए। घोर दुःख की कालिमा में हमें बड़ा दिव्य-प्रकाश प्राप्त हो जाता है। अपने मान और सुख को तुम यहाँ सुरक्षित ही समझो। तुम्हारे पिता के साथ मेरी शत्रुता हो सकती है, तुम्हारे साथ उसके होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता।

अपराजिता : दुर्ग की दीवार से नीचे कूद जाने के लिए माता-पिता पुकारते ही रहे।

जो रस्सी के सहारे नहीं उतर सका, उसे कूद जाने की शक्ति कहाँ से मिलती ? ये पापी प्राण बड़े प्रिय हो गए !

चन्द्रविजय : नहीं अपराजिते, ऐसा न कहो । यह अप्रतिम रूप-ज्योति लेकर बिना संसार का अनुभव किए आत्मघात, कोई अर्थ नहीं रखता । तुम घोर पातक से बच गईं, तुमने ठीक ही किया, जो दुर्ग की दीवार को मृत्यु की फाँद नहीं बनाया । फिर मरण क्या सदैव ही माँगने से मिल जाता है ? अगर किसी हाथ-पैर की विच्युति हो जाती, तो कैसे तुम्हारी यह सुकुमारता, उस अंगहीनता के भार को जीवन-भर ठेलती रहती ? पिता के निर्णय में मोह था और तुम्हारे निश्चय में मुझे बुद्धिवादिता दिखाई देती है ; यद्यपि तुम्हारी आयु अभी कच्ची ही है ।

अपराजिता : हूँ ऽ हूँ ऽ ऽ (फफक-फफककर रोने लगती है ।)

चन्द्रविजय : तुम्हारे रोने का कोई भी तो कारण नहीं देखता । कदाचित् माता-पिता का विछोह···

अपराजिता : मैं आज तक कभी उनसे एक क्षण के लिए भी विलग नहीं हुई थी ।

चन्द्रविजय : एक ही दशा से प्रकृति की शत्रुता है । अपराजिते, तुम पराए घर की संपत्ति हो । एक दिन सगे-सम्बन्धियों से क्या तुम्हारा विच्छेद विवाह के हाथों से नहीं लिखा गया है ?—बड़ी कठोरता से पाषाण की गहरी रेखाओं में ! इसलिए चुप रहो । अगर तुम किसी अन्यायी और आततायी के हाथों में पड़ गई होतीं, तभी दुख होता । जो भी कहोगी, वही तुम्हारे लिए प्रस्तुत किया जायेगा । कौन इस स्वर्गीय रूपांगना की उपेक्षा कर सकेगा ?

[बाहर से कोई धीरे-धीरे द्वार खटखटाता है । अपराजिता फिर शैया के नीचे छिपने को बढ़ती है ।]

चन्द्रविजय : नहीं, हमें क्यों किसी का भय हो ? (द्वार की ओर जाता है ।)

[अपराजिता एक कोने में खड़ी हो जाती है, फिर कोई द्वार खटखटाता है ।]

चन्द्रविजय : कौन हो तुम ?

सैनिक : (बाहर से) महाराज, अपराध क्षमा हो । वेला हो चुकी । मैं संध्या के दीपक के लिए प्रकाश लेकर आया हूँ । दोनों सेनापतियों ने आपके लिए माथा नवाया है ।

चन्द्रविजय : ठहरो, प्रहरी ! इस नवीन अधिकृत दुर्ग में बड़े विश्वास के साथ मुक्तद्वार होकर सो जाना बुद्धिमानी नहीं है । मैं खोलता हूँ उसे । (द्वार का थोड़ा-सा भाग खोलकर) लाओ, मुझे दे दो दीपक । (सैनिक के हाथ से दीपक लेकर फिर द्वार ढक देता है । दीपक लेकर अपराजिता की ओर बढ़ता है ।) लो ।

[अपराजिता उस दीपक को अपने दोनों हाथों में लेती है ।]

चन्द्रविजय : धन्य ! आज की यह संध्या कितनी मधुर हो उठी ! मेरे और तुम्हारे प्रथम स्पर्श के बीच में कैसी पवित्र कांति से यह दीपक प्रज्ज्वलित हो उठा ? यह दिव्य प्रतीक ! एक ओर अग्नि की साक्षी रखता है और दूसरी ओर सूर्य की तेजस्विता ! क्यों न हम दोनों इसे प्रणाम करें । (दीपक को हाथ जोड़ता है ।)

[अपराजिता बड़े संकोच के भाव से एक हाथ से अपना मुख ढक, दूसरा दीपक-युक्त हाथ सिर के ऊपर उठा लेती है ।]

चन्द्रविजय : सौम्ये ! यह बड़ी मनोहारिणी मुद्रा तुमने प्रकट की है। चाहता तो था, इसी नृत्य की माधुरी-भरी भंगिमा में तुम निरन्तर खड़ी रहतीं— एक सुवर्ण प्रतिमा की भाँति, लेकिन पहले ही दर्शन का यह स्वार्थ बहुत दिन तक तुम्हारे भुलाए न भूलेगा। इसे दीपाधार में रख दो। जिस तरह तुमने मेरे मानस का अन्धकार दूर कर दिया, यह हमारे इस कक्ष को ज्योतित कर दे ।

[अपराजिता कक्ष के दीपक को जलाकर उस दीपक को भी दीपाधार पर रख देती है ।]

चन्द्रविजय : अद्भुत ! अनुपम ! तुम्हारे पिता के इस दुर्ग का विजेता यह चन्द्रविजय इस दुर्ग के सामने पराजित हो गया । अपराजिते ! तुम्हारे नाम की सार्थकता अक्षुण्ण ही रह गई । तुम्हें पिता के निर्णय का अभिमान न खोना चाहिए । सुन्दरी, क्या सेवा करूँ तुम्हारी ?

अपराजिता : मुझे मेरे पिता के पास न पहुँचा देंगे आप ? उधर वे मेरे लिए चिंतित, और इधर मैं उनके लिए व्याकुल !

चन्द्रविजय : हमारी दृष्टि के आगे के वे अपने सभी पदांक मिटाते चले गए हैं। यह कैसा असंभाव्य कर्तव्य तुमने मेरे आगे रख दिया । मैं कहाँ तुम्हें उनके पास पहुँचा दूं ? तुम्हें विधाता के इस प्रबन्ध का विश्वास करना चाहिए । हमारा अनुराग तुम्हारे किसी भी अपने के विराग का कारण न होगा ।

अपराजिता : (फिर रोने लगती है ।) हूँ ऽ ऊँ ऽ ऊँ ऽ !

चन्द्रविजय : तुमने भोजन नहीं किया होगा । चिन्ता मनुष्य की बड़ी कठोर आहुति है । वह स्वयं नहीं पचती और हाड़-माँस को पचा देती है । प्रभु की कृपा से अब तुम निश्चिंत हो, अब अवश्य तुम्हारे भूख जाग पड़ी होगी । कहीं जाने की भी आवश्यकता नहीं ।

[अपराजिता चुप रहती है ।]

चन्द्रविजय : और यदि तुम्हें हमारी पाकशाला का स्वाद इष्ट है, तो वह भी प्रस्तुत हो रही है । मैं सैनिक को भेजकर अभी मँगा दूंगा ।

अपराजिता : नहीं-नहीं, महाराज !

चन्द्रविजय : तुम्हारे संकोच की रक्षा के लिए तुम्हारे नाम या व्यक्तित्व का

उल्लेख न किया जायगा। मुझे भी भूख लगी है।

अपराजिता : आप अपने अभाव की पूर्ति करें। मेरा जी अच्छा नहीं है।

चन्द्रविजय : तो इस शैया पर विश्राम करो।

अपराजिता : नहीं।

चन्द्रविजय : यह प्रकोष्ठ किसका है ?

अपराजिता : मेरा। मैं महाराज की एकमात्र कन्या हूँ। उनके स्नेह की ही अकेली अधिकारिणी नहीं, उनके राज्य और सम्पदा की भी।

चन्द्रविजय : उनकी यह पराजय केवल दिखावे की है। लौट-फिरकर यह राज्य फिर तुम्हारे ही अधिकार में आ गया—इतना ही नहीं, साथ में मेरा राज्य भी तो।

अपराजिता : नहीं, महाराज।

चन्द्रविजय : क्यों ? क्या उनका विचार तुम्हें इस राज्य का सिंहासन सौंपकर चिरकुमारी ही रख देने का है ? बलिहारी इस न्याय की ! अपने हृदय के सिंहासन को शून्य और रिक्त रखकर तुम किसी सिंहासन की पूर्ति न कर सकोगी, सुन्दरी ! यह अभिषेक नहीं अभिशाप है। मेरी बात पर विचार करो—इसी से तुम्हें सच्चा सुख मिलेगा। मुझे अपना हाथ पकड़ लेने दो। (उसका हाथ पकड़ने को बढ़ता है।)

अपराजिता : नहीं, इसके लिए मुझे माता-पिता की अनुमति चाहिए।

चन्द्रविजय : पहली आवश्यकता तुम्हारी रुचि है, उनकी अनुमति उसी का अनुसरण करेगी।

अपराजिता : यह कन्या की दुःशीलता होगी।

चन्द्रविजय : कभी-कभी हमारी ऊपरी विनय, पाखंड से भी निकृष्ट हो जाती है।

अपराजिता : मुझे अपने माता-पिता की खोज के लिए छोड़ दीजिए।

चन्द्रविजय : इस कक्ष में बन्दी तुम नहीं, मैं हूँ। यह कक्ष तुम्हारा है और तुम्हारी ही आज्ञा पाकर इस लोह की शृंखला से मैंने इन काठ के कपाटों को एक किया है। तुम द्वार खोलकर जहाँ चाहो, जा सकती हो। हमारे बीच में कोई बन्धन या वचन न होगा।

अपराजिता : (द्वार तक बढ़ती है, शृंखल पर हाथ रखती है, पर खोल नहीं सकती। लौट आती है।) लेकिन कहाँ ? किधर जाऊँ ? (असहाय होकर चन्द्रविजय की ओर बढ़ती है।) आप देंगे वचन ?

चन्द्रविजय : हाँ, दूँगा।

अपराजिता : मैं आपकी शरण हूँ। मुझ पर दया कीजिए। (चन्द्रविजय के पैरों पर गिरती है।)

चन्द्रविजय : ऐसी क्या आवश्यकता है ? मैं तुम्हें अपने हृदय की अधिष्ठात्री बनाकर अपना सब-कुछ तुम्हारे चरणों में न्योछावर कर दूँगा। (उस[illegible] पकड़कर उसे ऊपर उठा लेता है।)

अपराजिता : (हाथ छुड़ाकर अलग हो जाती है।) यह क्या किया तुमने ?

चन्द्रविजय : जब तुमने अपनी सारी सत्ता मेरे चरणों पर रख दी, तो क्या तुम्हें अपनी ठोकर बनाता ? नहीं-नहीं, तुम्हारा हाथ पकड़ तुम्हें अपने हृदय का हार बनाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग ही नहीं।

अपराजिता : राजन्, आपके ये वचन ?

चन्द्रविजय : कर्म के साथ इनकी संधि के लिए यह दीपक साक्षी है। तुम्हें पाकर कृतकृत्य हो गया मैं। मुझे ज्ञात न था वज्रकूटों के बीच में मुझे तुम्हारे समान कुसुम-कोमलांगना प्राप्त हो जायेगी। इस शैया में विश्राम करो। तुम्हारे लिए अब मेरी वाणी साधिकार हो गई है, तुम उसकी अवमानना नहीं कर सकोगी। (उसे शैया में बिठा देता है।)

अपराजिता : मेरी शीर्ष-मणि बालों में उलझ गई है। मैं इसे खोलकर सुलझा लेती हूँ। (सिर से शीर्ष-मणि खोलती है।)

चन्द्रविजय : तुम्हारी शीर्ष-मणि से मेरा ध्यान तम्हारे सीमंत पर चला गया और सीमंत से मुझे अपने कुल की एक परम्परा याद हो उठी। हमारे यहाँ विवाह के अवसर पर क्षत्रिय पति अपनी वधू के सीमंत में अपने खड्ग की धारा से सिंदूर की पहली रेखा अंकित करता है।

अपराजिता : तुम क्या कह रहे हो यह ? बड़ी भयानक प्रथा है ! रक्त नहीं निकल पड़ता क्या ?

चन्द्रविजय : रक्त का निकलना ही तो बड़ा शुभ शकुन माना जाता है। इसीलिए बड़ी सावधानी और हल्के हाथों से सिंदूर की रेखा खींचनेवाले पति के तीक्ष्ण खड्ग पर सदैव ही नववधू बड़े वेग से अपना माथा रगड़ देती है। स्मृति हो गई तो उस प्रथा को पार्थिव रूप देना ही चाहिए। सिंदूर है ?

अपराजिता : (शैया से उठकर शीर्ष-मणि एक चौकी पर रख देती है और सिंदूर निकालने को जाती हुई) लेकिन महाराज !

चन्द्रविजय : रक्त की क्या चिंता हो उठी तुम्हें ? सिंदूर तत्क्षण ही घाव को भर देता है।

[अपराजिता सिंदूर की डिबिया निकालकर चौकी पर रखती है। चन्द्रविजय खड्ग उठाकर कोष से बाहर निकालता है। दोनों सेनापति बाहर से द्वार खटखटाते हैं।]

प० सेना० : अपराध क्षमा हो, महाराज ! आपको कोई कष्ट देने का विचार तो था नहीं, परन्तु विवश होना ही पड़ा। कृपया द्वार खोल दीजिए।

चन्द्रविजय : (चकित होकर) क्यों आ गए फिर ?

दू० सेना० : आवश्यकता खींच लायी, महाराज।

[अपराजिता घबराकर फिर शैया के नीचे चली जाती है।]

चन्द्रविजय : (द्वार थोड़ा-सा खोलकर) कुशल तो है ?
[दोनों सेनापति पूरे द्वार को खोलकर भीतर घँस आते हैं ।]

प० सेना० : बड़ी विचित्र बात हो गई, महाराज। दुर्ग के परकोटे पर पहरा देते हुए हमारे एक सैनिक ने हमें चौकन्ना कर दिया, नहीं तो···(चौकी पर नारी की शीर्ष-मणि देखकर चौंकता है।)

चन्द्रविजय : तुम चन्द्रविजय के प्रधान सेनापति हो। प्रहरी ने ऐसा क्या देख लिया कि तुम्हारा सारा साहस तुमसे विदा हो गया ?

दू० सेना० : कहीं क्षितिज के आस-पास दूर जंगल में महाराज, पहले थोड़ा-सा उजाला हुआ, फिर बढ़ते-बढ़ते बहुत बढ़ गया।

चन्द्रविजय : शिव ! शिव ! मुझे तुम्हारी बुद्धि की पूंजी पर बड़ी दया आती है। तुम दोनों मेरे मुख्य सेनापति हो। एक-एक ग्यारह होना चाहिए था तुम्हें, तुम एक-एक दो भी नहीं हो सके ! एक में एक गया—शून्य ! भाई, ग्रामवासियों ने अलाव जला रखा होगा।

प० सेना० : महाराज, सभी लोग कहते हैं, उधर गाँव होने की कोई संभावना ही नहीं है।

दू० सेना० : और भी एक प्रार्थना है महाराज, अलाव एक ही स्थान पर रहता है। वह प्रकाश कई टुकड़ों में विभक्त हो गया। और वे सब-के-सब चलने लगे। (चौकी पर नारी की शीर्ष-मणि देखकर घबराता है।)

चन्द्रविजय : गाँव होगा वहाँ पर और गाँव में होगा कोई उत्सव। जाओ, सो रहो, तुम एक सुदृढ़ दुर्ग के भीतर सुरक्षित हो। इसके लौह प्राचीर रात में किसी के द्वारा खंडित नहीं हो सकते। चौकसी पर जागरूक और स्वामिभक्त सेवक ही नहीं, बुद्धि का उपयोग करनेवाले सैनिकों को नियुक्त करो। जाओ, मुझे विश्राम करने दो और तुम्हें भी तो उसी की आवश्यकता है।

प० सेना० : महाराज, वे प्रकाश बराबर चल ही रहे हैं और हमारे जीते हुए दुर्ग की दिशा की ओर ही तो। हमारे मन में अकारण ही संदेह की वृद्धि नहीं हुई। आप चलकर देख लेंगे तो इसी निर्णय पर पहुँच जायेंगे।

चन्द्रविजय : इतनी छोटी-छोटी बातें अपने राजा की दृष्टि में भर दोगे तो वह कहाँ से बड़ी बातें देख सकेगा ? (उसे कुछ याद आती है।) हां, हमारी वह अतिरिक्त सेना, जिसे हम गंगा से उस पार के शिविर में छोड़ आये थे—क्या आश्चर्य है, वही मशालें लेकर हमसे मिलने न आ रही हो ?

प० सेना० : महाराज, हमारी सेना की दिशा दूसरी थी।

चन्द्रविजय : किसी कारणवश वह दिशा बदल भी सकती है। जाओ, सेनापति ! हार जाने से पहले ही रो देनेवाला व्यक्ति पराजय को निमन्त्रण दे···

दोनों सेना० : महाराज चन्द्रविजय की जय हो !

चन्द्रविजय : जय के लिए केवल ध्वनि ही नहीं, धारणा भी दृढ़ होनी उचित है। इसलिए जाओ, परिश्रम से जिस विजय को प्राप्त किया है, विश्वास से उस पर जमे रहो। अकारण ही मुझे बाधा पहुँचाने से कोई लाभ नहीं।
[महाराज के अलक्ष्य में दोनों सेनापति एक-दूसरे को शीर्ष-मणि दिखाते हैं।]

दू० सेना० : आप निश्चिंत होकर विश्राम कीजिये। अब हम आपको कष्ट न देंगे।

प० सेना० : पवन में केले के पत्ते-सा कोमल हृदय लेकर हम आये थे, आपके दो ही शब्दों ने उसमें अचल पर्वत की स्थिरता भर दी।
[दोनों सेनापति चले जाते हैं। चन्द्रविजय तुरन्त ही द्वार बंद कर सांकल चढ़ा शैया के पास जाता है।]

चन्द्रविजय : बाहर आओ अपराजिते, यदि वह तुम्हारे पिता की सेना भी है तो मुझे कोई भय नहीं है।

अपराजिता : (शैया के नीचे से बाहर निकलकर) क्यों, भय क्यों नहीं है?

चन्द्रविजय : दुर्ग के द्वार पर तुम्हें खड़ा कर क्यों न मुझे सहज ही संधि प्राप्त हो जायेगी? तुम्हारे सीमंत में खींची गई यह सिंदूर की रेखा क्या संधिपत्रों के हस्ताक्षरों में न बदल जायेगी? (खड्ग की धार से सिंदूर लगाता है।)

अपराजिता : यह किसकी सेना है?

चन्द्रविजय : किसी की भी हो। जो दोनों पक्षों में उपेक्षित है, इस जगत में केवल वही सुख से रहता है, अपराजिते! लाओ, अपने सीमंत के इन दोनों पक्षों को मेरे निकट लाओ। बिना पक्षपात के ठीक बीचोंबीच, मैं इस सिंदूर की रेखा को अंकित करूँगा। (उसके सीमंत की ओर खड्ग बढ़ाता है।)

अपराजिता : (अपना सिर चन्द्रविजय की तरफ बढ़ाते हुए) धीरे-धीरे, राजन्!

चन्द्रविजय : हाँ, अपराजिते! धीरे-धीरे कि क्षत गहरा न हो और अन्धविश्वास की रक्त-भिक्षा पूरी हो जाय। (खड्ग से उसके सीमंत में सिंदूर की रेखा खींचता है।)

अपराजिता : रेखा खिंच गई?

चन्द्रविजय : (अपनी उंगली से क्षत में सिंदूर दबाकर) हाँ, रेखा भी खिंच गई और हमारे मंगल को दशगुणित करने के लिए रक्त का बिन्दु भी प्रकट हो गया। (ज्यों ही अपराजिता के कंधे पर हाथ रखना चाहता है, फिर बाहर द्वार पर एक सैनिक खटखटाता है।)

सैनिक : महाराज की जय हो!

चन्द्रविजय : (रोष के स्वर में) जय हो चुकी, दुर्ग पर अधिकार भी हो गया, फिर क्या हल्ला मचाते हो? (द्वार के पास जाता है।)

सैनिक : महाराज, भोजन तैयार हो गया, भण्डारी ने आपकी आज्ञा माँगी है।

चन्द्रविजय : मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ।

सैनिक : तो सेना को भोजन की आज्ञा दी जाय !

चन्द्रविजय : वह स्वयं ही तभी तुम्हें मिल चुकी। जाओ, अब सेना के श्वास-प्रश्वास की आज्ञा माँगने को न आना। (अपराजिता के पास आता है।) देखा तुमने ! आज ये सब के सब अपनी चाटुकारिता से हमारे प्रेम-मिलन के बाधक हो उठे !

अपराजिता : आप कोई उत्तर न दें, महाराज। वे लौट जायेंगे, जो भी होंगे।

चन्द्रविजय : तुम सारी रात की जागी हो। तुम्हारा फूल-सा मुख चिंता और जागरण की दोहरी व्यथा से कुम्हला गया है। (अपराजिता का हाथ पकड़कर उसे शैया पर बिठा देता है। एकाएक बाहर फिर किसी की चापें सुनाई देती हैं।) फिर कोई आता है। ये नहीं मानेंगे। बिलकुल मार्ग में, कैसी तुम्हारे इस प्रकोष्ठ की अवस्थिति है, अपराजिते ?

अपराजिता : अंतःपुर के प्रांगण में ही तो आपकी पाकशाला बना दी गई है। इसी से यह सब गड़बड़ है।

चन्द्रविजय : अपराजिते ! और कहीं कोई दूसरा प्रकोष्ठ नहीं है जहाँ हम रात बिता सकें—इस कोलाहल से दूर ?

अपराजिता : क्यों नहीं ? दुर्ग के उत्तरी पार्श्व में उधर मेरे पिता के कई कक्ष हैं।

चन्द्रविजय : चलो, यहाँ ऐसे ही बंद कर हम वहाँ देखें तो सही।

अपराजिता : चलिये।

चन्द्रविजय : भोजन के उपरान्त, विजय के उल्लास में आसव की अतिरिक्त घूंट पीकर और भी अधिक ऊधम मचायेंगे। तब कैसा राजा और कैसी प्रजा ? कैसा स्वामी और कैसा सेवक ? चलो।

[अपराजिता अपनी शीर्ष-मणि उठाकर पहनती है।]

चन्द्रविजय : ठहरो, मैं देखता हूँ, बाहर कोई है तो नहीं। (द्वार खोलकर देखता है, फिर लौट आता है।) चलो, पहरे पर भी कोई नहीं है, सब भोजन पर टूट पड़े हैं। चलो। (अपना मुकुट पहन लेता है।)

[दोनों जाते हैं। चन्द्रविजय जाते समय द्वार बंद कर जाता है। कुछ देर में फिर वे दोनों सेनापति बाहर से द्वार खटखटाते हैं।]

प० सेना० : महाराज ! (अचानक द्वार खुल जाता है, दोनों सेनापति उस कक्ष के भीतर प्रवेश करते हैं।)

दू० सेना० : हैं ! कहाँ गये महाराज ? वे तो यहाँ नहीं हैं !

प० सेना० : मैंने क्या तुमसे झूठ कहा था ?

दू० सेना० : फिर किसकी थी वह शीर्ष-मणि ?

प० सेना० : यह पराजित राजा का अंतःपुर है, होगी किसी अंतःपुर-चारिणी की।

दू० सेना० : शीर्ष-मणि होगी किसी अंतःपुर-चारिणी की ! लेकिन कहाँ है वह ? किसी का एक पदांक भी तो ढूंढ़े नहीं मिलता !

प० सेना० : कोई अवश्य रह गयी है यहाँ !
दू० सेना० : कैसे कहते हो ?
प० सेना० : वह शीर्ष-मणि। पहले थी वह यहाँ पर ?
दू० सेना० : नहीं।
प० सेना० : फिर उसके होने का क्या अर्थ है ?
दू० सेना० : कुछ समझ में नहीं आता।
प० सेना० : महाराज ने क्यों द्वार बंद कर दिये ?
दू० सेना० : क्यों किये ?
प० सेना० : इस कक्ष में रहनेवाली रमणी की शीर्ष-मणि चुराने के लिए नहीं।
दू० सेना० : स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?
प० सेना० : महाराज को अवश्य यहाँ कोई मिल गई है।
दू० सेना० : असम्भव सत्य है।
प० सेना० : इस कक्ष में तुमने पहले किसी की साँसें सुनी थीं, याद तो करो।
दू० सेना० : हाँ, याद तो आती है।
प० सेना० : तुम्हारा अनुमान ठीक ही है, शीर्ष-मणि उसकी साक्षी है। इसलिए चलो, भाग चलें। महाराज किसी आवश्यक काम से ही कहीं गए हैं। उनके आयुध और कवच यहीं रखे हैं। आते ही होंगे। चलो।
दू० सेना० : चलो, लेकिन इस बढ़ती हुई शत्रु की आशंका का क्या करें ?
प० सेना० : जो भी होगा, देखा जायेगा।

[दोनों जाते हैं। कुछ देर बाद अकेली अपराजिता आती है और द्वार वन्द कर जल्दी-जल्दी एक ताड़पत्र पर कुछ लिखकर उसे पढ़ती है, फिर उसे अपनी कंचुकी के भीतर रख लेती है। वह कपोत के पिंजरे के पास जाती है और ज्योंही पिंजरे का द्वार खोलना चाहती थी, बाहरी द्वार पर खट-खट होती है। अपराजिता दौड़कर उसे खोल देती है। चन्द्रविजय आता है।]

चन्द्रविजय : यही कक्ष मुझे प्रिय है, क्योंकि यह तुम्हारा है। अब मैं प्रहरी को सावधान कर आया हूँ, इधर से किसी को न आने दे। (वीणा को दिखाकर) यह वीणा तुम्हारी ही है ?
अपराजिता : हाँ, महाराज।
चन्द्रविजय : सुनूँ तो। तुम्हारे स्वर के प्रकाश से यह रात्रि सुवासित हो उठेगी।
अपराजिता : नहीं महाराज, लोग क्या कहेंगे ?
चन्द्रविजय : तुम्हारा गीत सुन लेने पर फिर किसी का साहस न रहेगा इधर आने का।
अपराजिता : आज क्षमा कर दीजिये, मेरी आँखें नींद से भारी हो उठीं।
चन्द्रविजय : अच्छा, सो जाओ। कैसा अद्भुत यह हमारा और तुम्हारा मिलन है। यह एक दिन का परिचय नहीं, जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध है। जिस

तरह जगत सूर्य की परिक्रमा करता रहता है, जी चाहता है मैं भी ऐसे ही निरन्तर तुम्हारी प्रदक्षिणा करता रहूँ। जीवन की समस्त कामनाएँ इसी एक कर्म में विलीन हो जायँ। (उसकी परिक्रमा करनी आरम्भ करता है। दोनों सेनापति फिर बाहर से आकर द्वार खट-खटाते हैं। चन्द्रविजय क्रुद्ध होकर अपना खड्ग उठाता है।) कौन है?

प० सेना० : (बाहर ही से) महाराज, वे प्रकाश के पुंज बराबर इसी दुर्ग की ओर बढ़े चले आ रहे हैं। वे हमारे सैनिक नहीं हैं क्योंकि हमने मशालों से जो संकेत दिए, उन्हें ग्रहण कर नहीं लौटाया गया। हमने भेरियों में भी उन्हें गुप्त संवाद दिए, वे उन्हें समझकर कोई उत्तर नहीं दे सके।

चन्द्रविजय : (बिना द्वार खोले ही भीतर से) तो क्या बिगड़ गया तुम्हारा?

प० सेना० : उनके बराबर हमारी ओर बढ़ने के उत्साह को देखकर तो यही जान पड़ता है, वे कहीं से ठोस सहायता पाकर हमारे ऊपर आक्रमण करने आ रहे हैं।

चन्द्रविजय : आने दो। इस अंधेरे में तुम्हारे-जैसे डरपोकों की परीक्षा होनी उचित है।

दू० सेना० : अगर रात ही में उन्होंने आक्रमण कर दिया तो?

चन्द्रविजय : क्या तुम्हारी सेना गोबर और मिट्टी की रचना है? तुरन्त चले जाओ, मैं ऐसे कापुरुषों की कोई बात सुनने के लिए तैयार नहीं हूँ। हटो, बुद्धि रखते हो तो उसका उपयोग करो, नहीं तो मेरे पास आने से अच्छा है कि शत्रु द्वारा तुम्हारी समाप्ति हो जाय। (कुछ देर द्वार पर कान लगा-कर सुनता है।) चले गए! (हँसता है।) हा-हा! इन बेचारों को मालूम नहीं है—और उन आक्रमण करनेवालों को भी नहीं कि संधिपत्र हमें मिल गया है। (अपराजिता की ठोड़ी पकड़ता है।) हाँ, अपराजिते! मेरे निकट आओ कि हमारे मिलन में दो विग्रह-प्रिय राज्यों के संधि-वाद्य सम पर झंकृत हो उठें। (ज्योंही उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने लगता है त्योंही नेपथ्य में अटूट स्वरों में भेरियाँ बजने लगती हैं। सैनिकों का कोलाहल सुनाई देता है। वह अपराजिता का हाथ छोड़कर उधर ध्यान देता है।)

अपराजिता : (चन्द्रविजय के सामने जाकर) यह क्या हो रहा है?

चन्द्रविजय : यह सन्निपात भेरी है।

अपराजिता : क्या अर्थ है इसका?

चन्द्रविजय : मेरा प्रत्येक सेवक इसे सुनकर जहाँ भी जिस दिशा में हो तुरन्त ही भेरी बजने के स्थान पर चला जाता है, यही इस भेरी का अर्थ है। इसकी अवज्ञा मृत्यु-दण्ड है। लाओ, मेरा कवच पहना दो मुझे।

अपराजिता : (चन्द्रविजय का हाथ पकड़कर) लेकिन महाराज···

चन्द्रविजय : हाँ, हाँ, हृदयेश्वरी! (द्वार का शृंखल खोलता है।)

अपराजिता : प्रियतम !

चन्द्रविजय : कहती क्यों नहीं ?

अपराजिता : आप अभी तक बिलकुल निर्भय थे। सन्निपात भेरी के वश में आप भी हो जायँ क्यों ? वह किसकी आज्ञा है ?

चन्द्रविजय : हाँ, मेरी। मैं ही उस आज्ञा का जनक हूँ। इसलिए मैं उसके बन्धन से मुक्त भी हूँ। तुम विश्राम करो। (उसे शैया पर सुला देता है।) नहीं, मैं कहीं नहीं जाऊँगा। कोई आवश्यकता नहीं रही।
[दोनों सेनापति द्वार खोलकर भीतर आ जाते हैं। अपराजिता जल्दी से पीठ फिराकर मुँह ढँक लेती है।]

प० सेना० : महाराज, शत्रु ने आक्रमण आरम्भ कर दिया है। किन्तु···(शंकित होकर शैया की ओर देखता है।)

चन्द्रविजय : (क्रोध के आवेश में) तुम बिना आज्ञा के मेरे कक्ष में क्यों चले आए ?

प० सेना० : राष्ट्रीय संकट के समय शिष्टाचार भूले जाते हैं।

चन्द्रविजय : ऐसा कहना तुम्हारी अशिष्टता की पराकाष्ठा है।

दू० सेना० : क्षत्रित्व की पुकार के लिए, मर्यादा के मान के लिए, राष्ट्र-धर्म की रक्षा के लिए, कर्तव्य के ऐसे भीषण आह्वान के समय—आप यह क्या कर रहे हैं ?

चन्द्रविजय : क्या कर रहा हूँ ?

प० सेना० : कर रहे हैं, रक्त के क्षेत्र में रंग की क्रीड़ा, युद्ध के मैदान में प्रेम की लीला, मृत्यु के प्रांगण में मन्मथ की पूजा ! क्या शरों की बौछार में आपने यह फूलों की शैया नहीं बिछाई है ?

चन्द्रविजय : क्या बकते हो ? तुम मेरे नौकर हो !

प० सेना० : हम सब मनुष्यता के नौकर हैं ! यदि हम राष्ट्र के सेवक नहीं हैं, उसकी आपदा के समय अपने इन्द्रिय-सुख के समर्थक हैं तो कामी, विलासी और पशु हैं। मानवता के नाम पर कलंक, धरती-माता के भार हैं। हमारी वीरता हमारा ढोंग, हमारा युद्ध हमारा स्वार्थ और हमारी विजय दूसरे के सर्वस्व का हरण है।

दू० सेना० : राजन्, ऐसा ही है, इसीलिए तुम कोई उत्तर नहीं दे सकते।

चन्द्रविजय : (माथा नीचा करता हुआ) अपराध हो गया मुझसे ? क्या अपराध हो गया ?

प० सेना० : आप सेवकों के नरमुण्डों पर अपनी पशु-कामना से खेलते हैं ! रण की यह काल-रात्रि और आप कानों में तेल भर चुप बैठे हैं ? धिक्कार है ! वह सन्निपात भेरी बज उठी ! उसके आह्वान पर सब अपने जीवन को हथेली पर रखकर उसके नीचे आ खड़े हो गए। आप क्यों नहीं आए ? उत्तर दें !

चन्द्रविजय : वह मेरी पुकार है। उस आज्ञा का स्रष्टा मैं हूँ। पुकारनेवाला कहीं

नहीं जाता, सबको दिखानेवाली आँख अपने को नहीं देखती।

दू० सेना० : धिक्कार है ऐसे स्रष्टा को जो संतान के ग्रास से अपनी काम-ज्वाला बुझाता है!

चन्द्रविजय : यह सब तुम्हारा भ्रम है।

प० सेना० : यह भ्रम है? (संकेत से शैया में सोयी हुई अपराजिता को दिखाता है।) यह इतनी स्थूल साक्षी! इसे भ्रम कहा जायगा? चलो सेनापति, ऐसे थोथे तर्क में हमें बहुमूल्य समय की आहुति देने से कोई लाभ न होगा।

दू० सेना० : धिक्कार है! थू!

प० सेना० : धिक्कार है! थू!

[दोनों धरती पर थूक बड़ी घृणा व्यक्त कर चले जाते हैं।]

चन्द्रविजय : (मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर दोनों हाथों से अपना माथा ठोकता है, फिर अपने खड्ग की ओर दृष्टि कर अपराजिता को देखता है।) अभागिनी नारी!

अपराजिता : (इस सम्बोधन से घबराकर शैया में उठ बैठती है।) तुमने यह क्या कहा?

चन्द्रविजय : कुछ नहीं।

अपराजिता : अवश्य कोई गहरा आशय है तुम्हारा। (शैया से उठकर चन्द्रविजय का हाथ पकड़ लेती है।)

[चन्द्रविजय अपना खड्ग उठा लेता है।]

अपराजिता : तुमने यह खड्ग क्यों उठा लिया? और तुम्हारी आँखों में मुझे हिंसा रंगती हुई दिखाई देने लगी।

चन्द्रविजय : देखा तुमने? ये सब हमारे संयोग के शत्रु हो उठे। ओह! कैसी घृणा से वे मेरे मुख पर थूककर मुझे तिरस्कृत कर चले गए! वे मेरे नौकर! जीवन के इस घोर अपमान को किसी प्रकार स्मृति के पटल पर से खुरचकर भी मिटा नहीं सकूँगा। कैसे उनका मुँह बन्द हो? क्या सचमुच में मैं कामी और कापुरुष हूँ? (कुछ देर तक विचार करता है।)…नहीं! ऐसा नहीं है। मैं कामी नहीं हूँ। मैं कापुरुष भी नहीं हूँ

ध्वनि है। मुझे भी उसमें बँधना होगा।

अपराजिता : ठहरो न। मुझे भी चलने दो अपने साथ। तुमने कहा था…

चन्द्रविजय : नहीं! (उसके पेट में खड्ग भोंक देता है।)

अपराजिता : (धरती पर गिरती हुई) ओ ऽ ऽ! पापी! हत्यारे!

चन्द्रविजय : तुम्हारी गाली भी मुझे फूलों की वर्षा है, पर उनकी भर्त्सना भयानक वज्रपात! अपराजिते, तुम्हें एक ही निशा की कुछ घड़ियों में अनन्त प्यार दिया, यही संसार को असह्य हो उठा और यही तुम्हारे वध का कारण बन गया! तुम्हारे जीवित रहने पर मुझे फिर-फिर ऐसा ही मोह करना पड़ता और उन्हें बार-बार मुझे अप्रतिभ करने के अवसर मिलते रहते। इसीलिए! सुमुखि, इसीलिए!…अवश्य ही तुम्हारा अपराधी हूँ। (उसके पेट से खड्ग बाहर निकालकर उसके हाथ में देता है।) इस खड्ग से मेरा मस्तक उड़ा दो, अब तुम्हारी बारी है। मैं हँसते हुए प्राण दे दूँगा। (अपराजिता के शिथिल हाथों से खड्ग नीचे गिर पड़ता है। चन्द्रविजय उसकी कंचुकी के बाहर निकले हुए उस ताड़-पत्र को देखता है।) हैं! यह कैसा ताड़-पत्र है? (उसी समय धीरे-धीरे फिर वे दोनों सेनापति वहाँ प्रवेश करते हैं।) इसमें कुछ लिखा है? पढ़ूँ तो। (पढ़ता है)—"योजना सफल हो गई! मैंने चन्द्रविजय को अपने जाल में फँसा लिया। एक-दो घण्टे में मैं इसे समाप्त कर ही डालूंगी। दुर्ग के गुप्त द्वार पर तीन बार विषाण बजाना। मैं उसे खोल दूंगी—तुम्हारी विषकन्या!" विषकन्या! हैं! विषकन्या? (अपराजिता छट-पटाकर प्राण त्याग देती है।) अपराजिता! चल बसी! ऐसी रूपवती! इतनी मोहमयी! अब भी तो इसके विष-भरे अधर अपनी ओर खींचते हैं। (धीरे-धीरे उसकी ओर मुंह बढ़ाता है और पहले सेनापति की खाँसी सुनकर चौंकता है और उसकी तरफ देखता है।) कौन, सेनापति? मैं विष का ग्रास हो गया था! यह विषकन्या है! कितनी छलना-भरी! यह इसका रहस्य! (ताड़-पत्र दिखाता है।) और वहीं तो शायद सिखाया हुआ कपोत है, जिसके गले में बँधकर यह संदेश शत्रु के पास पहुँच जाता। क्या तुमने ही मेरे प्राण बचाए? (फिर सन्निपात भेरी बजती है।) फिर बज उठी यह सन्निपात भेरी! बाँधनेवाला सबसे पहले बँधे—यही विधान की सार्थकता है और यही उसकी शक्ति! (तलवार संभाल, कवच उठा, पहनते हुए बाहर को दौड़ता है।)

दोनों सेना० : (उल्लास में भरकर) महाराज चन्द्रविजय की जय! (दोनों चन्द्रविजय का अनुसरण करते हैं।)

६

लिपस्टिक की मुसकान

विष्णु प्रभाकर

श्री विष्णु प्रभाकर का जन्म सन् १९१२ में मुजफ्फरनगर जिले के मीरापुर कस्बे में हुआ था। आप सन् १९३४ से लिख रहे हैं। प्रारम्भ में आपने लेख, गद्य-काव्य और कविताएँ लिखीं, पर शीघ्र ही आप केवल कहानियां लिखने लगे। सन् १९३९ से आपने नाटक और रेखाचित्र भी लिखने शुरू कर दिये। सन् १९४८ में आप रेडियो के संपर्क में आये और शीघ्र ही रेडियो-नाटक-लेखक के रूप में प्रसिद्ध हो गये। आपकी अनेक रचनाओं के प्रान्तीय और विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुए हैं। अनेक पुस्तकें विभिन्न सरकारों और संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। आजकल लेखन ही प्रमुख कर्म-यज्ञ है।

रचनाएँ

'निशिकान्त', 'तट के बंधन', 'स्वप्नमयी', [illegible] प्रभात', 'समाधि', 'होरी', 'डॉक्टर', 'चन्द्रहार', [illegible] 'युगे-युगे क्रांति' 'प्रकाश और परछाई', 'बारह एकांकी' [illegible] बजे रात', 'आदि और अन्त', 'रहमान का बेटा' [illegible] के थपेड़े', 'संघर्ष के बाद', 'धरती अब [illegible]' आदि।

पात्र

रीता : एक अति आधुनिक नारी, आयु लगभग चौबीस वर्ष
राकेश : रीता के पति, आयु छब्बीस वर्ष
आया : बेबी की आया, आयु बीस-बाईस वर्ष
नर्स : अस्पताल की नर्स, आयु पचीस वर्ष
बेबी : रीता और राकेश का पुत्र, आयु दो-तीन वर्ष
चन्दा : रीता की परिचिता, आयु चौबीस-पचीस वर्ष
सिपाही इत्यादि।

पहला दृश्य

रंगमंच पर एक अति आधुनिक नारी के निजी कमरे का दृश्य, जिसका एक द्वार बाथ-रूम में जाता है, दूसरा शयनकक्ष में, तीसरा बरामदे में, बाहर से उसी से आना-जाना होता है। एक सुन्दर शृंगार-मेज लगी है, शीशे के आस-पास प्रसाधन की सामग्री बिखरी है—नेल पालिश, लिपस्टिक, पाउडर, तेल, कंघा, रिबन, रूज, हेयरपिन, यू० डी० कॉलोन आदि। दूसरी ओर कपड़ों की ड्राअर है, वह भी खुली है, कुछ कपड़े पास एक तिपाई पर रखे हैं, नीचे शू और सेंडिल पड़ी हैं। समय संध्या का है। सितम्बर का अन्त है, पर गर्मी अभी है, इसलिए पंखा चल रहा है, वस्त्र हिलते हैं। कमरे की सजावट साहबी है। फर्श पर कालीन है, दरवाजों और खिड़कियों पर नीले पर्दे हैं। शृंगार मेज के ठीक सामने एक कदावर शीशा है। पर्दा उठने पर रंगमंच पर कोई व्यक्ति नहीं है पर दूसरे ही क्षण एक युवती बड़ी अदा से प्रवेश करती है। शरीर स्वस्थ-सुडौल, रंग गोरा। उसने गरारा और कुर्ता पहना है, दुपट्टा गले में पड़ा है, बाल कटे हैं जो नाक की सीध में दो ओर बँटकर दोनों कानों के पास जाकर घुंघराले बनाये गए हैं, भँवें धनुपाकार बनी हैं, नाक कुछ लम्बी लगती है, नेत्र लम्बे हैं और सलोनी स्याही की दो रेखाएं कानों की ओर बढ़ती-बढ़ती रास्ते में खो गई हैं। होंठ खुले हैं और लिपस्टिक के कारण उनका रंग गहरा रक्तिम है। उँगलियों में डायमंड की त्रिभुजाकार अँगूठियाँ हैं। नाखून बहुत लम्बे हैं और पालिश के कारण आरक्त हैं। कानों में मत्स्याकार कर्णफूल हैं। गले में श्वेत मोतियों का हार और कलाई पर रिस्टवाच है। वह पुकारती तथा गरारे को हाथों में सहेजे आती है।

रीता : (बनावट गूँजती बारीक आवाज) आया…आया…! (आकर शीशे के सामने खड़ी हो जाती है और अपने शृंगार की परख करती है। कंधे पर बालों को नजाकत से छूती है, पाउडर उठाकर हल्के से छुआती है, फिर रूज का प्रयोग करती है। गुनगुनाती रहती है, फिर पुकारती है) आया…आया…! (क्रोध उभर आता है।)

आया : (दूर से आता स्वर) आती हूँ, मेमसाहब! (पास आकर) जी, मेमसाहब!
[आया भी युवती है, रंग सलोना और नक्श तीखे हैं। लम्बी वेणी में एक फूल लगा है। होंठों पर हल्का लिपस्टिक है, साड़ी पहने है जिसका [illegible] छोर कमर पर झूलता है, पेट पर पेटी-सी बँधी है।]

रीता : कहाँ मर जाती है जाकर? कितनी बार कहा कि मुझे आज [illegible] है, इण्टरव्यू का वक्त आठ बजे है और अब पांच बज चुके हैं [illegible] साढ़े पाँच पर मेकअप पर भाषण होगा। और…

[इसी समय बेबी भागता हुआ आता है । वह सुन्दर, स्वस्थ और चतुर बालक है । हरे रंग की निकर, कमीज पहने है । वह सीधा आकर रीता से चिपट जाता है । रीता साँप ने काटा हो ऐसे काँप उठती है ।]

बेबी : ममी···ममी···!

रीता : (बढ़ता कोप) यू इडियट, गधा ! (एकदम बेबी को पीछे धकेलती है ।) सारी ड्रेस खराब कर दी ! (बेबी फर्श पर गिरते-गिरते कुर्सी से टकराता है और चीखता है । आया दौड़कर उठाती है ।) आया, यह क्या है ! बेबी इस वक्त यहाँ कैसे आया ? तुमको कितनी बार समझाया···

आया : (नम्र स्वर) मेमसाहब ! बेबी मेरे पास था । (साथ-साथ बेबी को उठाकर पुचकारती रहती है ।) मैं उसे बाहर ले जाने की तैयारी कर रही थी, न-न···बेबी···कोई बात नहीं···न-न···तुम शेर बच्चे हो···

[बेबी कन्धे से चिपटकर चुप होने लगता है ।]

रीता : (चीखकर) शटअप यू फूल, मैं कहती हूँ वह यहाँ क्यों आया ? तुमने उसे यहाँ क्यों आने दिया ? तुम्हें पता नहीं···

आया : (पूर्वतः) मेमसाहब, आपने मुझे पुकारा···

रीता : मैंने तुझे पुकारा था, पर बेबी को नहीं । तुझे मालूम है कि बेबी को मेरे पास किस वक्त लाना होता है और किस वक्त नहीं···

आया: मेमसाहब···

रीता : मेमसाहब, मेमसाहब की क्या रट लगाई है ! खबरदार जो अब कभी मुझे मेमसाहब कहा ।

आया : मेमसाहब···

रीता : (चीखकर) चली जाओ, ले जाओ बेबी को, इतनी देर से खड़ी-खड़ी क्या कर रही है । ले जा इसको, मुझे ड्रेस बदलनी पड़ेगी, इण्टरव्यू के लिए जाना है और कमबख्त बेबी ने सारा मूड बिगाड़ दिया । उसे इतना सिर चढ़ाया है कि हमेशा पल्ले से बँधा फिरता है, बिगाड़ दिया ।

[राकेश का प्रवेश । युवक है । सफेद पतलून और कोट पहने है, टाई का रंग गहरा लाल है । चश्मा बिना फ्रेम का और काला है । बाल बीच में से कढ़े हैं, दो ओर से दो कुण्डल माथे पर झूम आए हैं । हाथ में फैल्ट हैट लिए है । काफलेदर का काला शू पहने है । तेजी से प्रवेश करता आया से टकरा जाता है ।]

राकेश : ओह, यू···मेरा ड्रेस···आया, तुम देखकर नहीं चलतीं, इस उमर में···

रीता : अन्धी हो गई है, कुछ पता नहीं इसका···

[आया बिना बोले चली जाती है ।]

राकेश : बाई गॉड, इस उमर में सब अन्धे हो जाते हैं ।

रीता : शटअप, तुम भी बेवकूफ···

राकेश : बाई गॉड, डियर, यू आर स्प्लेन्डिड (नजाकत से)···आज कहाँ जाना है ?

ओह ! ओह ! याद आया, आज तो फिल्म डायरेक्टर से इण्टरव्यू है। मैं कहता हूँ तुम यकीनन हीरोइन के रोल के लिए चुनी जाओगी। इण्टरव्यू तो फारमल है, तुमको देखते ही···

रीता : शटअप, मैं कहती हूँ मैं इस आया को निकालकर छोड़ूँगी, यह नहीं जानती कि···

राकेश : आया को निकालोगी ! वाई गॉड, क्यों ? फिर वेवी को···

रीता : शटअप ! वेवी-वेवी ! इसके मारे नाक में दम है !

राकेश : क्या ? वेवी ने क्या कर दिया ?

रीता : क्या कर दिया, सारी ड्रेस खराव कर दी। आज मेकअप पर सचित्र भाषण था। आया इतना भी नहीं समझती कि वेवी को किस वक्त मेरे पास आना चाहिए। इस वक्त उसे छोड़ दिया और वह आकर मुझसे चिपट गया।

राकेश : वाई गॉड, तुम से चिपट गया, नामाकूल ढाई वर्ष का हो गया और उसे यह पता नहीं कि ममी से चिपटने का कौन-सा वक्त है। आजकल के वच्चे असल में विद्रोही होते हैं। जनतन्त्र के जमाने में पैदा हुए हैं न ! लेकिन वाई गॉड, तुम इस वक्त सुन्दरता का वन्डरफुल मॉडल लग रही हो···

रीता : शटअप, तुम कुछ नहीं समझते। गरारे की सव क्रीजें मसली गई, उसमें सिलवटें पड़ गईं, धव्वे लग गए। आया से लाख वार कहा कि वेवी मेरे पास सवेरे नाश्ते पर, दोपहर को खाने के वक्त और शाम को चाय के समय आए। इतना क्या कम है ! आया फिर किसलिए है ? ओह ! माई ड्रेस··· कितनी देर में मेकअप किया था, मिस भरुचा कहती थी कि डायरेक्टर की आँखें वड़ी तेज़ होती हैं।

राकेश : वाई गॉड, यह डायरेक्टर नाम का जन्तु पूरा गीध होता है।

रीता : (एकदम) शटअप, तुम लैंग्वेज भी नहीं जानते। डायरेक्टर ड्रेस देखते ही वता देते हैं कि इस ड्रेस को किस-किस ने कितनी वार छुआ है ?

राकेश : ड्रेस···वाई गॉड, वे तो तुम्हें देखकर ही वता सकते हैं लेकिन···वेवी को छूने का मतलव तो ममता है।

रीता : शटअप, मैं तुमसे वहस करना नहीं चाहती, तुम कभी कुछ नहीं पढ़ते। वस चीप सेंटिमेंट और इमोशन्स की वात करते हो। वेवी के छूने का मतलव ममता है, पर तुम जानते हो तुम्हारे ऋषि-मुनियों ने क्या लिखा है ?

राकेश : वाई गॉड, डार्लिंग, मैं विलकुल मूर्ख हूँ पर···

रीता : मूर्ख हो तभी तो वार-वार पर-पर करते हो। मेरे पास तुम से वात करने का वक्त नहीं है। मुझे अभी मिस ववेजा के पास जाना है, नहीं तो मैं तुम्हें वताती कि स्वामी दयानन्द सरस्वती तक ने लिखा है कि आठ दिन वाद ही वच्चे को माँ के पास से हटा लेना चाहिए, और···

राकेश : ठीक है, ठीक है, डार्लिंग, तुम्हारे प्यारे मुख से स्वामी दयानन्द का भाषण मैं इतनी वार सुन चुका हूँ, कि मुझे जवानी याद है···

रीता : शटअप, बीच में बोलने की तुम्हारी आदत कभी बन्द नहीं होगी। मैं कहती हूँ कि आजकल बच्चों की बिलकुल जरूरत नहीं है। विवाह की भी जरूरत नहीं है। विवाह करो, अंधाधुंध सन्तान पैदा करो, जीवन की साँसें पूरी करो, और गुलामी में मर जाओ, यह कोई जिन्दगी है !

राकेश : (जोर से ताली बजाकर) हेयर-हेयर ! मिसेज रीता जिन्दाबाद !

रीता : शटअप, यू क्लाउन ! राकेश, तुम इतने गम्भीर विचारों के बीच मजाक कैसे करने लगते हो !

राकेश : आई एम वेरी सॉरी, मैंने सोचा था कि आप शायद फिल्म डायरेक्टर के सामने दिये जाने वाले भाषण की रिहर्सल कर रही हैं, वैसे ये विचार स्वामी रामतीर्थ के हैं। बाई गॉड, रीता, तुम आर्य धर्म की सबसे बड़ी चैम्पियन हो।

[इसी समय फोन की घंटी बजती है। राकेश तेजी से आगे बढ़कर उसे उठाता है।]

राकेश : लीजिये, फ़ोन पर कोई आया···(धीरे से) पधारिये, साहब ! (जोर से) राकेश स्पीकिंग···जी···किसको, जरा जोर से बोलिये···जी हाँ···हाँ, वे घर पर ही तशरीफ रखती हैं। (रीता से) आपकी जरूरत है, डार्लिंग !

रीता : (फोन लेकर) हलो···ओ···शैली, आई एम वेरी सॉरी, बस आधा घंटा और। ड्रेस बदलनी है···नहीं, बस गरारा···क्या बताऊँ कमबख्त बेबी ने आकर सब चौपट कर दिया। हाँ-हाँ, मुझे बहुत दुःख है। (एकदम चोंगा पटककर) इस बेबी ने···ओह, इस बेबी के बच्चे ने आज मुझे नीचा दिखाया, मैं इसे···(तेजी से बाहर जाती हुई) मुझे अब दूसरी ड्रेस पहननी होगी, कैसी शानदार ड्रेस थी, ओह···ओ···

राकेश : (साँस खींचकर दोनों हाथ हवा में हिलाते हुए स्वगत) अब दूसरी ड्रेस पहननी होगी, कमबख्त बेबी ने सारी ड्रेस खराब कर दी। माई गॉड, तुम रीता को कहाँ ले जाओगे। बेबी ने ड्रेस खराब कर दी ! वाह, पाँच दिन बड़ी मुश्किल से दूध पिलाया होगा, आया ने पाला-पोसा है, नहीं तो···अच्छा··· (कहता-कहता बाहर जाता है।)

दूसरा दृश्य

वही कमरा। कुछ परिवर्तन के साथ, वही दृश्य। समय दोपहर से पूर्व। रीता तेजी से कमरे में आती है। रूप वही, ड्रेस बदली है, श्वेत सिल्क की साड़ी पहने है, गले में श्वेत मोतियों की माला है, बाँह खुली हैं, वक्ष पर चोली है, साड़ी का एक छोर कमर पर फैला है। पीछे-पीछे राकेश है। उसकी पैंट श्वेत, कोट काला और टाई लाल है, शेष अवस्था वही है।]

रीता : डियर, मैं सच कहती हूँ, मैंने कुमार क्लब में शामिल होने का फैसला कर

लिया है। तुम कुमारिका क्लब में जाना चाहो तो मैं सिफारिश कर दूंगी। यह शादी का विचार कितना दकियानूसी है। सब इन्सान साथी हैं। स्वतन्त्र साथी, अपनी इच्छा से मिले, अपनी इच्छा से अलग हुए, धर्म-वर्ण का भला इसमें क्या है। पश्चिम में कितनी परफैक्ट फैमिली लाइफ है। कोई किसी पर डिपेंड नहीं करता। बच्चों को स्टेट सँभालती है, एक हमारी स्टेट है···

राकेश : (हँसकर) डियर, हमारी स्टेट अभी खुद बच्चा है···

रीता : शटअप, तुम बिलकुल इडियट हो। देवी-देवताओं की तरह स्टेट भी कभी बच्चा नहीं होती। अपने नागरिकों को पालना उसी का काम है, मैंने बेबी को···

राकेश : बाई गॉड, बेबी को क्या···

रीता : बेबी को मैंने स्टेट को सौंप दिया है।

राकेश : क्या मतलब, मैं समझा नहीं ?

रीता : तुम कभी कुछ समझते भी हो, जो अब समझोगे। तुम्हें बच्चे पालने कहाँ पड़ते हैं। तुम मर्द लोग सब बोझ औरतों के सिर पर डाल देते हो, पर मैं कहती हूँ कि बुर्जुआ विचारों का जमाना लद गया।

राकेश : लेकिन डियर, तुम तो बेबी की बात कह रही थीं, तुमने उसके साथ क्या किया ?

रीता : शटअप, तुम फिर बीच में बोले ! तुम्हारी आदत कभी नहीं सुधरती। अगर सुधरती तो कहीं अमेरिका और यूरोप में कल्चरल अटैची बनकर घूमते। मैं सच कहती हूँ मैं इस मुल्क से तंग आ गई हूँ। यह बाबा आदम के जमाने का देश कभी नहीं बदलता। एकदम कुदरत के विरुद्ध है। यहाँ के लोग ड्रेस पहनेंगे तो सारा बदन ढक लेंगे, जैसे कोई बदसूरत चीज़ है, जिसे ढकना जरूरी है। मैं कहती हूँ शरीर तभी सुडौल-सुन्दर रह सकता है जब उसके और प्रकृति के बीच कोई परदा न हो, जब सूर्य और चन्द्र की किरणें उसका सीधा आलिंगन करें···

राकेश : मैं आदाब बजा लाता हूँ, मदाम, आप बिलकुल ठीक फरमाती हैं पर बेबी···

रीता : ओह, कैसे मूर्ख हो तुम, राकेश ! कैसे मौलिक ऑरिजनल विचार आ रहे थे, पर तुम बेबी को बीच में ले आए, कमबख्त अब भी मेरा पीछा नहीं छोड़ता। मुझे मिस्टर खामा के स्टेज ड्रामे में हीरोइन ही नहीं बनना, उसे डायरेक्ट भी करना है। कितना शानदार ड्रामा है लेकिन हिन्दी के नाटककार अभी तक पुराने विचारों से चिपटे हैं, वही सस्ती भावुकता, वही करुणा और आँसुओं की कहानी लिखते हैं, जीना तो वे जैसे जानते ही नहीं···

राकेश : बिलकुल नहीं जानते, बेगम साहिबा, मैं आपसे बिलकुल सहमत हूँ—मैं खुद

इसी बात पर थीसिस लिख रहा हूँ, लेकिन बेबी···

रीता : डैम यूअर थीसिस एण्ड बेबी, मुझे डिनर के लिए देर हो रही है। (पुकारकर) आया···(एकदम) ओह, आया अब कहाँ है ?

राकेश : बाई गॉड, मैं भी तो यही पूछता हूँ कि आया और बेबी कहाँ हैं ?

रीता : मुझसे पूछते हो ! तुमने उसका दिमाग बिगाड़ दिया था। तुमने उससे घर की बातें कीं, मेरी बुराई की। मैंने उसे निकाल दिया है।

राकेश : (चकित) क्या···

रीता : आँखें क्या फाड़ते हो ! मुझे उसे निकालने का पूरा अधिकार था।

राकेश : ओह, बेगम···

रीता : बेगम !

राकेश : आई एम सॉरी, मदाम···

रीता : नानसेन्स, मैं न बेगम हूँ न मदाम, मैं आज से मिस रीता हूँ, समझे ! मैं कुमार क्लब की सदस्या बन गई हूँ। कुमार क्लब में सब कुमारियाँ होती हैं, जैसे सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी विवाहिता होने पर भी मिस ही रहती हैं। अच्छा, मैं अब जा रही हूँ। बाई-बाई, डार्लिंग···(जाने को द्वार की ओर बढ़ती है।)

राकेश : (एकदम) लेकिन डियर···

रीता : ओह, डियर नहीं···

राकेश : (एकदम) जो कुछ भी तुम हो मैं जानना चाहता हूँ तुमने बेबी को कहाँ भेजा है ?

रीता : मैंने उसे वहीं भेजा है जहाँ उसे होना चाहिए था। मुझे उसे भेजने का अधिकार था।

राकेश : (पूर्ववत्) अधिकार की बात पीछे होगी, मैं उस जगह का नाम पूछता हूँ।

रीता : (सहसा हँसकर) नाराज हो गए, डियर। डियर, वह हम दोनों के मार्ग की बाधा बना हुआ है, मैंने उसे स्टेट को सौंप दिया है।

राकेश : (आगे बढ़कर) स्टेट को ! रीता, साफ-साफ बताओ।

रीता : मैं साफ बता रही हूँ, तुम बराबर बीच में टोक देते हो। मैंने उसे बटनगंज बेबी नर्सिंग होम में दाखिल करा दिया है।

राकेश : (चौंककर) बटनगंज बेबी नर्सिंग होम !

रीता : हाँ-हाँ, बटनगंज बेबी नर्सिंग होम ! कितनी बार बताना होगा ? मैं तुम्हारी नौकरानी नहीं हूँ। आई एम परफैक्टली इंडिपेंडेंट। मुझे देर हो रही है।

राकेश : (खोया-सा) बटनगंज बेबी नर्सिंग होम, पर···पर वह तो लावारिस बच्चों का अस्पताल है।

रीता : बच्चे सभी लावारिस होते हैं, उनकी वारिस स्टेट है। अब स्टेट उसे पालेगी। तुम इतना भी नहीं समझते...

[रीता तेजी से जाती है। राकेश धम्म से गिर पड़ता है।]

राकेश : माई गॉड, यह क्या किया रीता ने, बेबी को लावारिस अस्पताल में पहुँचा

दिया। वह लावारिस है...मेरे रहते वह लावारिस है...

[रीता फिर तेजी से आती है।]

रीता : मेरा पर्स ! ओह, जल्दी में सब काम खराब हो जाते हैं। डियर, जरा मिस शहरयार को फोन तो करना, मैं अभी चल रही हूँ। वह मुझे लिफ्ट देगी। तुम तो एक कार खरीदने लायक भी नहीं। न मालूम फिर शादी क्यों की ?

राकेश : (बिना सुने) मैं कहता हूँ रीता, तुमने बेबी को नर्सिंग होम में क्यों भेजा ?

रीता : मैं कहती हूँ, शटअप, तुम्हें मेरी बातों में दखल देने का कोई अधिकार नहीं है।

राकेश : रीता, वहाँ बेबी···

रीता : वहाँ बेबी क्या ? वहाँ यहाँ से अच्छा इन्तजाम है, वहाँ ट्रेंड नर्सें हैं, वे समय पर बाथ देती हैं, समय पर दूध देती हैं।

राकेश : मैं जानता हूँ, वहाँ बाथ का प्रबन्ध है पर नर्सों के बच्चों के लिए···दूध मिलता है, पर नर्सों के बच्चों को···

रीता : ओह, राकेश ! राकेश···तुम इतना भी नहीं जानते बुद्धू कि नर्सों के बच्चे नहीं होते···

राकेश : ओह मदाम···मदाम···

रीता : मिस रीता कहो, मिस रीता, तुमसे कितनी बार कहा···और हाँ डार्लिंग, आया तो अब चली गई और आज चाय पर आ रहे हैं मिस शैली और मिस्टर खामा। रिहर्सल में जाने से पहले हम यहाँ चाय पियेंगे और हाँ, तुम भी रहना, अच्छा डार्लिंग···

[राकेश सहसा छींकता है।]

राकेश : लेकिन मदाम, मुझे जुकाम हो रहा है, मैं···

रीता : (चौंककर) जुकाम, कोल्ड···ओह डियर, डियर, यह तो छूत की बीमारी है। तुमने ठीक वक्त पर बता दिया, चाय का प्रबन्ध होटल में करना पड़ेगा। आर्डर दिये देती हूँ। पर···चैक पर दस्तखत तो कर दो, डार्लिंग। (वह छींकता है।) न···न, रहने दो···फ्लू के कीड़े चिपट जायेंगे। डाक्टर कहते हैं कि एक इंच के सौवें हिस्से में करोड़ों कीड़े आते हैं। डार्लिंग, जब तक तुम्हारा फ्लू ठीक नहीं होता तब तक मैं होटल में रहूँगी···(दूर जाकर) क्यों डार्लिंग, तुम्हारे लिए एम्बूलैन्स आर्डर कर दूँ, छूत की बीमारियों के अस्पताल में चले जाना···हाँ, ठीक है···बाई-बाई, डार्लिंग। डिनर को देर हो गई···(जाती हुई) पर कोई डर नहीं, आधा घंटा लेट हो जाना तो फैशन है। (जाती है।)

राकेश : (गहरा निश्वास) छींक, जुकाम, होटल, एम्बूलैन्स, डिनर···डैम इट, नान्सेन्स···क्या मतलब है इन शब्दों का ? बेईमान दरिन्दों की भाषा, मेरी बीवी बिलकुल हैवान है, दरिन्दे से भी खूंखार। बेबी लावारिस नर्सिंग होम में और मैं छूत की बीमारियों के अस्पताल में···खूब। लेकिन कुछ भी हो

पहले मुझे नर्सिंग होम जाना चाहिए, पर···पर वहाँ तो मुझे कोई घुसने भी नहीं देगा, वहाँ तो कोई यह भी नहीं जानता कि कौन-सा बच्चा कौन रख गया है और माना कि मैं चला भी गया तो लोग पहचान लेंगे···ओह, कितनी बेइज्जती होगी ! वाई गॉड, कितने शर्म की बात है। माँ-बाप के रहते बेबी लावारिस कहलाये !

[नर्स का प्रवेश]

नर्स : सर, मदाम रीता कहाँ है ?

राकेश : (बिना देखे) जहन्नुम में ! (देखकर) कौन ? ओह ! वाई गॉड नर्स, तुम यहाँ आयीं ?

नर्स : हम एम्बूलैन्स लेकर आया है, यहाँ कोई छूत का बीमार है।

राकेश : छूत का बीमार, वह क्या बीमारी होती है ?

नर्स : ओह, तुम मजाक करना माँगटा, छूत की बीमारी होता, जैसे चेचक···

राकेश : चेचक हमारे पड़ोस में भी नहीं है।

नर्स : डिप्थीरिया !

राकेश : नो···नो···नो डिप्थीरिया।

नर्स : हैजा !

राकेश : ओह, हैजा ! नो नर्स, यहाँ कोई हैजे का बीमार नहीं है।

नर्स : (चिढ़कर) तो प्लेग होगी।

राकेश : नो-नो-नो···यूअर गैस इज एब्सोल्यूटली रौंग, माई डियर···

नर्स : शटअप, माई डियर किसे कहते हैं ? मजाक करना माँगटा···

राकेश : ओह, वाई गॉड, आई एम सॉरी, मेरा मतलब यह नहीं है। माफ करना, आप गलत आ गई हैं। यह मेरा घर है, और मेरा नाम है मिस्टर राकेश राजेन।

नर्स : बेशक, बेशक, यही बोला था। मदाम राकेश ने फोन किया था कि मिस्टर राकेश छूत की बीमारी से डाउन हैं, उन्हें शीघ्र अस्पताल पहुँचाया जाय। मैं एम्बूलैन्स और घर डिस्इनफैक्ट करने का सामान लेकर तुरन्त आयी हूँ।
[तभी अस्पताल के कर्मचारी पम्प और फिनाइल लेकर आते हैं।]

राकेश : तो फिर ठीक है, घर को डिस्इनफैक्ट कर दीजिए, और साथ में मुझे भी।

नर्स : तुम तो फिर मजाक···

राकेश : मजाक नहीं नर्स, मुझे जुकाम हुआ है। (छींकता है।)

नर्स : आपको जुकाम है ?

राकेश : जी हाँ, इससे बड़ी बीमारी इस घर में नहीं।

नर्स : ओह, तो यह बात है। जुकाम के लिए एम्बूलैन्स मँगाई है, हमको इस प्रकार तंग किया जाता है, वाई गॉड···

राकेश : वाई गॉड···

नर्स : दिस इज क्रिमिनल, यह जुर्म है। मैं रिपोर्ट करूंगी। मैं मदाम राजेन और

मादम राकेश···

राकेश : माफ करना नर्स, राकेश राजेन एक ही नाम है।

नर्स : एक या दो, उसे हर्जाना देना होगा, पचास एम्बूलैन्स के और धोखा देने के अलग। (कर्मचारियों से) चलो, मैं अभी रिपोर्ट करती हूं।

[सब जाते हैं।]

राकेश : (पुकारकर) अजी, घर तो डिस्इनफैक्ट करती जाओ। सुनिये तो···गई, बाई गॉड, मुफ्त में मच्छर मर जाते। (साँस लेकर) पर मदाम भी खूब है, मेरे लिए कितनी जल्दी एम्बूलैन्स मिल गई। कौन कहता है कि वह काम नहीं करती। बेबी को नर्सिंग होम में भेजा। पति को छूत की बीमारियों के अस्पताल में और खुद डिनर खाने गई···

[आया का प्रवेश]

आया : सर!

राकेश : अब कौन आया यमदूत! (देखकर एकदम हर्ष से) ओह, आया, तुम! तुम कैसे आयी? तुम्हें मदाम ने डिसमिस कर दिया, मुझे अफसोस है।

आया : मुझे किसी ने डिसमिस नहीं किया। मैं खुद गई हूँ, मैं ऐसी···

राकेश : बाई गॉड, ऐसी-वैसी की बात छोड़ो, बेबी को कैसे निकाला जाय?

आया : मैंने पुलिस में रिपोर्ट कर दी है।

राकेश : किस बात की?

आया : इस बात की कि आप लोगों ने जान-बूझकर अपने बेबी को लावारिसों के नर्सिंग होम में भेजा है।

राकेश : (घबराकर) बाई गॉड···

आया : बेशक, मैं देखूंगी मदाम अब बचकर कहाँ जाती है? मैं बदला लूंगी, बेबी को मैंने पाला है। मैं उसे इस तरह तड़पते नहीं देख सकती। मैं उसे बचाऊंगी और मदाम को···

राकेश : (हर्ष से चिल्लाकर बीच में) बाई गॉड, आया, तुमने शानदार काम किया, एकदम शानदार। मैं तुम्हें इनाम दूंगा, मुझे रास्ता मिल गया। मैं अभी पुलिस को फोन करता हूँ कि बेबी सवेरे से लापता है। जो उसका पता देगा उसे मैं सौ रुपया इनाम दूंगा। (फोन उठाकर) पर नहीं, फोन नहीं, मुझे खुद जाना चाहिए, मैं अभी जाता हूँ, अभी···नर्स, तुम्हें इनाम मिलेगा···

आया : (चकित) पर सुनिये तो···

राकेश : (जाता हुआ) यहाँ कोई सर है न पैर, मैं राकेश हूँ, मैं अभी बेबी को लेकर आता हूँ।

आया : (जाती हुई) पर सुनिये तो मिस्टर राकेश, सुनिये तो···बेबी थाने में है। ओह, मुझे चलना चाहिए, कहीं बात बिगड़ न जाये···(जाती है।)

तीसरा दृश्य

वही पुराना कमरा। सजावट में अन्तर है, ड्राअर और आलमारियाँ सब बन्द हैं। परदा उठने पर रीता कुछ चिन्तित भाव से इधर-उधर घूम रही है। ब्रिजिश कमीज पहने हुए है। मुख उसका लाल है। उसे रह-रहकर छींकें आ रही हैं। वह बार-बार रूमाल से नाक पोंछती है, फिर वेप सूँघती है, पर छींक फिर भी आ जाती है।

रीता : (स्वगत) ओह ! अब राइडिंग के लिए कैसे जा सकती हूँ ? कमबख्त जुकाम भी अभी होने को था···यह सब राकेश की ही बदौलत हुआ। वह यहाँ से अस्पताल गया ही नहीं, फ्लू के सब जर्म्स कमरे में बस गए। (छींकती है।) ओह, मार डाला इसने तो। (आलमारी खोलकर ह्विस्की की बोतल निकालती है।) ह्विस्की का पैग लेकर देखती हूँ। (पैग भरकर पीती है।) अहा हा ! (फिर छींक आ जाती है।) यह बन्द होने वाला नहीं है, अस्पताल जाना पड़ेगा। फोन करूँ और एम्बूलैन्स मँगाऊँ। पर···पर वहाँ चली गई तो पार्टी, ड्रामा···ड्रामे की तारीख भी पास आ गई, देखूँ अखबार में कौनसी है। (अखबार पलटती है।) अरे, यह क्या, ह्वाट्स दैट बेबी-शो...देश के बच्चों के लिए सुनहरी अवसर···अखिल भारतीय बेबी शो, सबसे स्वस्थ और सुन्दर बेबी को एक हजार नकद तथा एक हजार की वस्तुएँ इनाम। (फुसफुसाकर) एक हजार नकद और एक हजार की वस्तुएँ, बेबी शो···(छींकती है और एकदम पुकारती है।) आया···आया··· (एकदम) आया अब कहाँ है, बेबी भी नहीं है। ओह, बेबी होता तो, बेबी···(एकदम छींककर, तेजी से) मैं अभी नर्सिंग होम जाती हूँ। हमारा बेबी सेहत और सुन्दरता में बिलकुल परफ़ैक्ट है, एकदम मॉडल है पर···पर शायद मुझे वे लोग चोर समझें··· राकेश को आने दो, क्यों न आया को भी बुला लूँ। बेबी को वही ला सकती है···शो कब है ?···(पढ़ती हुई) १५ सितम्बर को टाउनहॉल में···१५ सितम्बर यानी कल हो चुकी···ओह, गॉड !

[श्रीमती चन्द्रा का प्रवेश]

चन्द्रा : हलो, रीता ! रीता, खुशखबरी, हमारा बेबी बेबी-शो में फर्स्ट आया।

रीता : थाई गॉड···(छींकती है।)

चन्द्रा : (पूर्ववत्) हमारा बेबी बेबी-हैल्थ-शो में अव्वल आया। एक हजार नकद और एक हजार का सामान मिलेगा। कितनी अच्छी खबर है ! ओह, हमारे बेबी की सेहत कितनी अच्छी है ! जज ने कहा···तुम जानती हो, जज़ अमेरिका का है, उसी ने कहा है कि ऐसा रूप, ऐसी सेहत, ऐसी इन्टैलीजेन्स अमेरिका और यूरोप के बच्चों में भी नहीं है, भारत के बच्चे विश्व भर में चतुर हैं।

रीता : (बनावटी हँसी) आह ! आई एम वेरी-वेरी सॉरी। नो, नो, ग्लैड···वेरी ग्लैड चन्द्रा, मेरी बधाई, बहुत-बहुत बधाई।

चन्द्रा : ओह, धन्यवाद ! रीता, हमारे बेबी के कारण भारत का नाम हुआ। इसके फादर ने जब से सुना है तब से नाच रहे हैं। आज शाम को पार्टी है, तुम भी आना, बेबी को भी लाना। और हाँ, तुमने अपना बेबी शो में क्यों नहीं भेजा ? तुम्हारा बेबी कितना स्वस्थ और कितना सुन्दर है, सेकिण्ड प्राइज़ तो उसे भी अवश्य मिलता।

रीता : (छींककर) सेकिण्ड क्यों, उसे फर्स्ट मिलता। आई स्योर, बाई गॉड, उसे हर हालत में पहला इनाम मिलता।

चन्द्रा : (तुनककर) फर्स्ट तो क्या···पर उसे मिलता जरूर, लेकिन वह गया क्यों नहीं ? कल से मैंने न उसे देखा, न आया को। पहाड़ पर भेज दिया क्या ?

रीता : (एकदम छींककर) वह खो गया।

चन्द्रा : (चौंककर) खो गया···कब ? कैसे ? हमें तो खबर तक नहीं।

रीता : ओह चन्द्रा ! मुझे जुकाम हो रहा है। (छींकती है।) बड़ा तेज जुकाम है। तुम जाओ, कहीं तुम्हें छूत न लग जाये।

चन्द्रा : नहीं, नहीं, ऐसे भी क्या छूत लगती है। वैसे यह बड़ी खराब बीमारी है। क्या ले रही हो ? रूमाल में यूक्लिप्टिस ऑयल लगाया है ?

रीता : नहीं, वेप है, ऑयल क्या करेगा ? पर मैं लेटना चाहती हूँ।

चन्द्रा : बेशक, तुम्हें आराम करना चाहिए। फ्लू में पूरा आराम करना ही उसका इलाज है। लेकिन तुमने बेबी का तो कुछ बताया ही नहीं, कैसे खो गया ?

रीता : (सहसा चौंककर) बेबी, बेबी ! तुम्हें बेबी से क्या काम है ? तुम्हें हमारे बेबी से क्या मतलब है ? तुम हँसो, नाचो, खुशी मनाओ, तुम्हारे बेबी को फर्स्ट प्राइज़ मिला है। जाओ, मुझे छोड़ दो···

चन्द्रा : रीता···रीता···

रीता : मैं कहती हूँ कि चली जाओ। जाओ, नहीं तो तुम्हें ऐसा जुकाम लगेगा कि तुम और तुम्हारा बेबी···

चन्द्रा : ओह, रीता···रीता···मैं जा रही हूँ, मैं अभी जा रही हूँ। बेबी के खो जाने से तुम्हारा···(दूर जाकर, स्वगत) यह तो बेबी को पास तक नहीं आने देती थी। उसके खो जाने से इतना परेशान कैसे हो गई ? (जाती है।)

रीता : (बराबर छींक रही है।) चन्द्रा के बेबी को फर्स्ट प्राइज मिला, इसके बेबी का फोटो अखबार में छपेगा। साथ में इसका और इसके पति का भी। आह···आह···सारे देश में इनका नाम होगा. इनके फोटो छपेंगे। (बार-बार छींकती है।) आह···आह···मैं अभी जाऊंगी। (उठती है, दो कदम चलती है।) पर मैं अकेली क्या करूँगी ? राकेश न जाने कहाँ जाकर बैठ गया, वह मेरा जरा भी खयाल नहीं करता।

[राकेश का प्रवेश। बोलता हुआ आता है।]

राकेश : हलो रीता, बाई गॉड, रिहर्सल में तुम्हारा पार्ट कमाल का रहा।

माँ का तुमने वह पार्ट खेला कि जनता देखेगी तो रो पड़ेगी, लेकिन (साँस लेकर) रीता, डियर, मैं नहीं चाहता कि तुम माँ का पार्ट खेलो। (रीता सहसा उठकर बाहर जाती है।) अरे, अरे, तुम जा कहाँ रही हो ? (छींकती है।) अरे, तुमने छींका, तुम्हें फ्लू है, अरे···सभी मुँह और आँखें लाल हैं, मैं समझा था कि पार्ट के कारण रो रही हो। तो तुम अस्पताल जा रही हो, लेकिन रीता···नहीं, नहीं, जाओ, तुम्हें जाना ही चाहिए, जाओ···

रीता : (एकदम चीखकर) मैं जाऊँ या न जाऊँ या कहीं भी जाऊँ, तुम्हें उससे क्या मतलब ? तुम्हारी शैतानी के कारण मुझे यह मुसीबत उठानी पड़ी है। तुम अस्पताल नहीं गये इसलिए फ्लू के सब जर्म्स इस कमरे में रह गये। तुम्हारे कारण मुझे जुकाम हुआ। तुम्हारे कारण आया को जाना पड़ा। तुम्हारे कारण बेबी को नर्सिंग होम भेजा।

राकेश : और मेरे ही कारण तुम यहाँ हो...

रीता : शटअप राकेश, मैं कहती हूँ, तुम बेबी को रखते तो क्यों वह मुझे तंग करता। माँ का काम बच्चे को जन्म देना है, पालना काम पिता का है। (छींकती है।)

राकेश : डियर, डियर, सच कहता हूँ, रीता डियर, कमाल के मौलिक विचार हैं तुम्हारे। क्या कहने हैं ! यानी माँ ब्रह्मा है, बाप विष्णु ! सुन्दर, अति सुन्दर कल्पना, अति अनुपम।

रीता : शटअप ! (छींकती है।)

राकेश : रीता, शकुन अच्छे नहीं हैं। बार-बार मत छींको, छींकने से···

रीता : राकेश, मैं कहती हूँ कि मेरे साथ चलो।

राकेश : तुम्हारे साथ। कहाँ, छूत के अस्पताल में ? नो मदाम···

रीता : राकेश, हमेशा मसखरे मत बना करो। कभी तो संजीदा बनो···

राकेश : जो आज्ञा। मैं इस समय एकदम गम्भीर हूँ।

रीता : मेरे साथ नर्सिंग होम चलो।

राकेश : नर्सिंग होम ! बाई गॉड, वहाँ क्यों ? मुझे दाखिल करना है···नो, नो···

रीता : नो-नो, राकेश, बेबी को लाना है। तुम तो किसी बात का खयाल नहीं रखते। कल यहाँ बेबी-शो था, अगर बेबी होता तो जरूर फर्स्ट प्राइज़ लेता।

राकेश : बात तो तुम्हारी ठीक है, प्राइज वह जरूर लेता लेकिन बेबी की बात छोड़ो। तुम्हारा फर्ज तो पूरा हुआ। पालना काम मेरा है, मैं देख लूँगा। तुम अस्पताल जाओ।

रीता : शटअप, मुझ से बहस करते हो। (छींककर) चींटी के पर निकले हैं। मैं कहती हूँ तुम्हारा वर्ताव डिक्टेटरशिप का है, डेमोक्रेसी का नहीं। मैं स्वतंत्र हूँ, मैं तुम्हारे आर्डर नहीं मानूंगी, मैं···

[दरवाजे की घंटी बजती है।]

राकेश : (बाहर जाता हुआ) बाई गॉड, एम्बूलैन्स आ गई। रीता, डार्लिंग, जल्दी

तैयार हो जाओ। (जाता है।)

रीता : (चीखकर) मैं अस्पताल नहीं जाऊँगी···नहीं जाऊँगी···

[रीता बाहर जाना चाहती है, तभी आया बेबी के साथ आती है और वे टकरा जाते हैं।]

रीता : (क्रोध से) यू इडियट, देखकर नहीं चलती।

आया : मदाम, आज तो आपकी खराब होने वाली ड्रेस नहीं है!

रीता : (चौंककर) कौन आया और बेबी···बेबी···बेबी आ गया। (विह्वल होती है।) माई बेबी!

राकेश : (आकर) बाई गॉड, रीता, क्या करती हो? बेबी को छूना मत। आया, बेबी को ले जाओ। बाहर ड्राइंग-रूम में बैठो। मदाम को फ्लू हो गया है, फ्लू! (मुँह बनाकर) बेबी को लग जायेगा। बच्चों को छूत की बीमारी बहुत जल्दी लगती है।

आया : मदाम को फ्लू है! मैं अभी जाती हूँ। बेबी तो बेचारा दो ही दिन में सूख गया। फ्लू लग गया तो···

रीता : (पागल-सी) राकेश···यू राकेश! आया, रुको···रुको। (चीखकर) आया, तुम्हें रुकना होगा, मैं कहती हूँ···

आया : (द्वार से) मदाम! माफ करें, मैं आपकी नौकरानी नहीं हूँ। न बेबी आपका है, आपका बेबी लावारिस अस्पताल में है। (जाती है।)

रीता : (चीखकर) आया, तुम्हारी इतनी हिम्मत!

राकेश : बाई गॉड, तुम्हारा फ्लू तेजी पर है। तुम्हारी लिपस्टिक में शोले भड़क रहे हैं। मुसकराती हो तो ऐसा लगता है जैसे अंगारे उगल रही हो। तुम अस्पताल नहीं जातीं तो विवश होकर हमें होटल जाना पड़ रहा है। (साँस लेकर) क्या किया जाय? बेबी की जिम्मेवारी मुझ पर है। मैं रिस्क नहीं ले सकता। गुडबाई···टा···टा···

[राकेश जाता है। रीता रोती हुई दौड़ती है।]

रीता : राकेश···राकेश···(फिर दोनों हाथों से मुंह ढाँपकर, कुर्सी पर गिरती है।) ओह···चले गये···बेबी को भी ले गये। मैं अकेली रह गई। मैं अकेली रह गई। (सुबकी लेकर) वे मेरे फ्लू से नहीं, मुझसे भी दूर चले गये। ओह, बेबी···बेबी···बेबी! (सुबकियाँ)

७

खंडहर

जगदीशचन्द्र माथुर

श्री जगदीशचन्द्र माथुर का जन्म सन् १९१७ में खुर्जा, उत्तर प्रदेश में हुआ। बचपन से ही आपकी अभिनय में रुचि रही है। विश्वविद्यालय के रंगमंच पर अभिनय करने वाले छात्रों में आप अग्रगण्य थे। आप उन एकांकी-लेखकों में से हैं जो एकांकी के प्रथम उत्थान-काल में ही साहित्य-क्षेत्र में चमक उठे। आपने एकांकी-नाटक बहुत अधिक नहीं लिखे, किन्तु जितने लिखे हैं—वे सब कला की दृष्टि से परिपक्व हैं।

सरकारी जीवन में आप इंडियन सिविल सर्विस के अधिकारी हैं और कई वर्ष बिहार राज्य के शिक्षा-सचिव के पद पर कार्य कर चुके हैं। आप अखिल भारतीय आकाशवाणी के डाइरेक्टर जनरल पद की शोभा भी बढ़ा चुके हैं।

हिन्दी के एकांकी-नाटक-लेखकों में आपका बहुत ऊँचा स्थान है।

रचनाएँ

'कोणार्क', 'भोर का तारा', 'ओ मेरे सपने', 'शारदीया', 'कुंवरसिंह', 'पहला राजा' आदि।

पात्र

नन्दलाल
मकबूल अहमद
यूसुफ
अमीना
नरगिस
नलिनी

पहला दृश्य

चैत की पूनो की चाँदनी, जो म्युनिसिपल पार्क के इस कोने पर मन भर कर बरस रही है। बायीं ओर एक बेंच तिरछी दिशा में रखी हुई है। सामने पार्क की सीमा की 'रेलिंग' है, जिसके बीच में एक 'विकिट गेट'—दरवाजा दीख रहा है। दरवाजे के ठीक पीछे नीचे उतरने के लिए सीढ़ियाँ हैं। सामने से बाहर जाने वाले व्यक्ति को दरवाजे से निकलकर नीचे उतरना पड़ता है। उसके भी पीछे दूर पर कुछ अस्पष्ट वृक्ष-समूह और झोंपड़ियों की आकृति नजर पड़ती है। बेंच के इधर वाले सिरे के पास एक बुझा हुआ म्युनिसिपल लैम्प है, जो चाँदनी के साम्राज्य में अकेला दुखियारा-सा खड़ा है,अंधेरे का खोया-सा प्रतीक। दाहिनी तरफ कुछ गमले हैं और कुछ झाड़ियाँ, जो इस स्थान के 'पार्क' नाम को सार्थक करते हैं।

चाँदनी की स्वप्निल आभा से आवृत्त ये सब साधारण पदार्थ आकर्षक और कौतूहलपूर्ण रूप धारण किए हुए हैं।

और इस अलौकिक दृश्य में दाहिनी ओर से बरस पड़ते हैं—एक बाबू। उम्र लगभग अड़तालीस वर्ष। चश्मा नाक की नोंक के सहारे मुश्किल से ठहर पा रहा है। सिर पर गोल काली टोपी, जिस पर मैल और तेल अग्रसर हो चुके हैं। धोती और पैवन्ददार कोट पहने हैं। बगल में फाइलें, चाल में अस्थिरता, चेहरे पर परेशानी। ये हैं बाबू नन्दलाल, जिन्हें अपने चारों ओर फैली चाँदनी से कुछ मतलब नहीं।

नन्दलाल : (चारों तरफ निगाह डालते हुए आप-ही-आप बड़बड़ाते हैं।) यहाँ भी नहीं। आखिर यह यूसुफ मर कहाँ गया...दफ्तर में इतनी देर तक मैंने अकेले काम किया और दरवाजा बन्द करने वक्त यह यूसुफ चपरासी नदारद। वहाँ भी देखा, उसकी कोठरी में भी झाँक आया...सोचा, यहाँ पार्क में होगा, मगर उस मरदूद का [illegible] पता ही नहीं। अजीब मुसीबत है!...अब ताली किसे दूँ?...(थककर बेंच पर बैठ जाता है। लेकिन दिमाग मानो मशीन की तरह चल रहा है और होंठों से आप-ही-आप शब्द निकल रहे हैं, जैसे [illegible] के कुण्ड में से [illegible] आप-ही-आप बुद-बुद उठा करते हैं।) अब मेरे घर से फाइलों का [illegible] कौन लाएगा?···साहब के [illegible] कौन ले जाएगा [illegible] करूँ? (सहसा, मानो किसी [illegible] से चौंककर [illegible] असलियत की याद आयी हो) [illegible] लेकिन मैं यहाँ क्यों बैठा [illegible] (हड़बड़ाकर उठ खड़ा होता है [illegible] बेंच पर ही [illegible]

जो जाना है—घर···

[पर इसी बीच में वहीं दाहिनी ओर से एक और अधेड़ उम्र के बाबू आ पहुँचते हैं। ये भी उसी ढाँचे में ढले जान पड़ते हैं। पुरानी कत्थई रंग की शेरवानी बदन पर है, सिर पर उसी रंग की किश्तीनुमा टोपी। पाजामा ऐसा, जो न ढीला कहा जा सकता है, न चुस्त। गाल कुछ पिचके हुए हैं। ये हैं मुंशी मकबूल अहमद।]

म० अहमद : घर जाने का नाम भी न लीजिए, बाबू नन्दलाल।

नन्दलाल : कौन ? मुंशी मकबूल अहमद ? आप इधर कैसे ?

म० अहमद : अरे साहब, आप ही के मकान पर तो गया था। दरवाजा खटखटाया तो जैसे भिड़ के छत्ते में हाथ दिया हो। आपकी बीबी निकल पड़ीं और बरस पड़ीं।

नन्दलाल : समझी होगी मैं आ गया हूँ।

म० अहमद : यही तो बात थी। लेकिन मुझ पर जबान के दो-चार कोड़े लग ही गए। इसीलिए मैंने सोचा कि आपको तलाश करके आगाह कर दूँ। (बेंच पर बैठते हुए) आज दफ्तर में बड़ी देर लगा दी ?

नन्दलाल : क्या बताऊँ, मुंशीजी ! महीने का आखिर होने की वजह से आजकल काम ही बहुत रहता है। कई रिटर्न तैयार करने पड़ रहे हैं; कई रिपोर्ट के ड्राफ्ट लिखने हैं। रोज देर हो जाती है। साहब इधर नाराज रहता है, बीबी की फटकार उधर पड़ती है।

म० अहमद : मुझसे क्या कहते हैं, बाबू नन्दलाल, मैं खुद ही भुगते बैठा हूँ। प्रेस की नौकरी आसान नहीं है। दिन-दिन भर प्रूफरीडरी में आँखें फोड़ता हूँ। मालिक की घुड़कियाँ सुनता हूँ। और घर लौटता हूँ शाम के वक्त तो वही बीबी-बच्चों की बीमारियाँ, वही नौकरानी नदारद और मकान-वाले के तकाजे।

नन्दलाल : क्या कहें साहब, आदत पड़ गई है हम लोगों को इस तरह की जिन्दगी की। इसी से तो कुछ मालूम नहीं देता। देखिए, आज ही मेरा साहब मुझ पर बहुत बिगड़ा। एक रिपोर्ट में कुछ गलत 'फिगर्स' दे दिए थे। आखिर मशीन तो हूँ नहीं। मगर साहब जो बिगड़ा है तो सारा दफ्तर ही सिर पर उठा लिया। सच कहता हूँ मुंशीजी, मेरे दिल को सख्त तकलीफ पहुँची। ऐसा लगा......ऐसा लगा कि......(रुक जाता है।)

म० अहमद : ऐसा लगा कि जहर खाकर मर जाऊँ। यही न ?

नन्दलाल : बिलकुल यही। बिलकुल यही जो हुआ कि जहर खाकर मर जाऊँ। मगर आपने क़यास खूब किया।

म० अहमद : असल बात यह है कि आज इसी किस्म के मौके पर मुझे भी ऐसा खयाल आया, ठीक यह खयाल।

नन्दलाल : क्यों, आपकी भी मालिक से झड़प हो गयी थी क्या ?

म० अहमद : मालिक क्या है, जल्लाद है जल्लाद ! आज ही मुआयने के वक्त एक नये कारीगर ने छुट्टी की दरख्वास्त दी । मेरी जबान से निकल गया—'जाने दीजिए ।' तो मुझ पर उबल पड़े । 'तुम्हें क्या मतलब ?' और फिर बीस बातें सुनायीं । मुझे जो पन्द्रह बरस से उनके यहाँ काम कर रहा हूँ । मुझसे और ये लफ़्ज । जी हुआ कि जहर खा लूं ।

नन्दलाल : ताज्जुब की बात है मुंशी मकबूल अहमद ! पन्द्रह बरस से आप उस मालिक की नौकरी बजा रहे हैं और अठारह बरस से मैं दफ्तर में लकीरें पीट रहा हूँ । इस अर्से में न जाने कितने मौके आये होंगे अपने-अपने मालिक से नाइत्तफ़ाकी के । पर मैं हमेशा 'जो हुजूर चाहें' यही कहता रहा और आप भी 'सरकार की जो मर्जी'—यही जवाब देते रहे । लेकिन आज ऐसा खयाल हमारे दिमाग में क्यों आया ?···क्यों आया ? इससे पहले क्यों नहीं आया था ?

म० अहमद : आप भूलते हैं, बाबू नन्दलाल ! इससे पहले भी—बहुत दिन पहले—ऐसे बाग़ी खयालात हमारे दिल में पैदा होते थे । उस वक्त जब हमें और आपको 'सर्विस' किए ज्यादा अर्सा नहीं हुआ था, जब बचपन हमसे बिछुड़ा न था, जब हम और आप अपने माँ-बाप के लाड़ले थे ।

नन्दलाल : आप ठीक कहते हैं, मुंशीजी ! तब हमारी जिन्दगी में हरापन था, बाँकापन था । तब हम बोल सकते थे, भड़क सकते थे ।

म० अहमद : और पाँच-दस बरस में ही वे बातें काफ़ूर हो गयीं । परकैंच परिन्दे की मानिन्द हमारे जज्बात फड़फड़ाकर रह गए ।

नन्दलाल : क्या जिन्दगी है हमारी ! मशीन की तरह एक-सी गति से काम, एक-सी गति से खाना-पीना, सोना, बच्चे पैदा करना और उनकी परवरिश में, तीमारदारी में मर खटना ।

म० अहमद : काम पर आते हैं तो किसी उमंग के साथ नहीं; दफ्तर में मालिक से कभी बिजनेस के अलावा कोई बात नहीं; घर पर बीवी से फ़िक्रों के अलावा और कुछ जिक्र नहीं । प्यार, मिठास, खूबसूरती—हम लोग इन सबसे हाथ धो बैठे हैं ।

नन्दलाल : हम लोग हवा और धूप की नियामतों से दूर अँधेरे में सरकने वाले कीड़े-मकोड़े हैं ।

म० अहमद : मगर कभी हमारी भी जिन्दगी थी । कभी हमारे भी अरमान थे ।

नन्दलाल : कभी···हाँ, कभी । मुंशी मकबूल अहमद, आज मुझे उस सुनहरे जमाने की याद सता रही है । बीस बरस पहले जब एफ़० ए० में पढ़ने कॉलेज में आया था तब मेरे पास तन्दुरुस्ती थी, ताजा दिमाग था, दिल में फुर्ती थी, चंचलपन था ।

म० अहमद : मैं भी प्रेस का काम सीखने से पहले मुसन्निफ़ बनने के इरादे रखता था । मेरे जज्बात समुद्र की लहरों की तरह आसमान को [illegible] दौड़ा

करते थे। गाँव में नदी के किनारे घंटों खड़ा-खड़ा लहरों के खेल और सूरज की आखिरी झलक देखा करता था। और जब जज्बात के बवंडर के आगे रुक नहीं पाता था तो शायरी करने बैठ जाता था—शायरी।

[बैकग्राउंड में हल्की वीणा का स्वर]

नन्दलाल : मुंशी मकबूल अहमद, एक बात पूछूं ?

म० अहमद : क्या ?

नन्दलाल : आपने कभी इश्क किया है?

म० अहमद : (अविश्वास-भरे स्वर में) बाबू नन्दलाल !

नन्दलाल : माफ कीजिएगा, पता नहीं क्यों आज ऐसे सवाल जबान पर मंडरा रहे हैं।

म० अहमद : शायद आज की रात में जादू है और हम दोनों ही उसके शिकार हैं। जबान की बन्दिशें खुल चुकी हैं। आप कहे जाइए बाबू नन्दलाल, रुकिए नहीं !

नन्दलाल : आपको सुनकर ताज्जुब होगा कि मैंने इश्क किया है।

म० अहमद : नहीं, बाबू नन्दलाल ! आज की रात ताज्जुब करने की नहीं है। इश्क मैंने भी किया है।

नन्दलाल : अपनी बीबी से ?

म० अहमद : नहीं।

नन्दलाल : तो ?

म० अहमद : आप सुन सकेंगे ?

नन्दलाल : इसका तो जवाब आप खुद ही दे चुके हैं।

म० अहमद : तो सुनिए···(गहरी आवाज में) मैंने इश्क किया है एक नवाबजादी से।

नन्दलाल : मेरी और आपकी राहें करीब-करीब एक-सी रही हैं। मैंने जिसे प्यार किया वह भी एक दौलतमंद की लड़की थी। उसके बाप अपने शहर के सबसे बड़े कंट्रैक्टर थे।

म० अहमद : कहाँ वे अमीरों की लड़कियाँ और कहाँ हम बाबू लोग ! कैसी सपनों की-सी बातें थीं वे ?

नन्दलाल : लेकिन आज वे सपने जैसे सावन के बादलों की तरह उमड़े आ रहे हैं···मुंशीजी, मैं भी अधेड़ उम्र का हो चला और आप भी, लेकिन आज न जाने क्यों यह न खुलनेवाला भेद होंठों से बरबस निकला पड़ता है।

म० अहमद : रह-रहकर नरगिस के लुभावने चेहरे की याद आ रही है।

नन्दलाल : नरगिस !......कितना खूबसूरत नाम है !

म० अहमद : जैसा नाम वैसी ही सूरत, वैसी ही सीरत। पहली बार ही जो देखा तो आँखें बँधी-की-बँधी रह गयीं। यकीन नहीं होता बाबू नन्दलाल, कि कभी मुझमें भी कोई जादू था, जो उसे मेरी तरफ खींच सका···

मुझमें ! हँ-हँ-हँ !!

नन्दलाल : रहा होगा मुंशीजी, जरूर आपमें कुछ जादू रहा होगा । वरना मेरी तरफ देखिए । एक नई खिलनेवाली कली की तरह सुन्दर लड़की क्या मुझ पर रीझ सकती थी ? जब मैं उससे मिला तो मैं अल्हड़ था और कुछ झेंपता भी था । और वह ? उम्र में छोटी होने पर भी कैसी गहराई थी उसमें । मुझसे कहा था उसने कि प्यार एक ही को किया जा सकता है ।

म० अहमद : इस वक्त, जब हम लोगों की जिन्दगी पतझड़ से सूने किए गए पेड़ की तरह रह गयी है, उस प्यार की दुनिया की याद भी अनजानी-सी मालूम देती है । यकीन कीजिए बाबू नन्दलाल, किनारों को छूने के लिए बेताब पहाड़ी नदी की तरह नरगिस मेरी तरफ बढ़ी और मैं बेबस किनारों की तरह उसके उठान से दूर न भाग सका । मेरे मामा का मकान नवाब साहब के मकान से लगा हुआ था । नवाब साहब ने हमारी जान-पहचान को देखा । न मुझसे कुछ कहा, न उससे । अगली मई-जून की छुट्टियों में जब मैं अपने मामा के यहाँ जाने की तैयारी कर रहा था तभी सुना कि नवाब साहब मय अपनी 'फैमिली' के मसूरी चले गए हैं ।

नन्दलाल : मसूरी ?

म० अहमद : हाँ, मसूरी । यह सन् '२९ की बात है । चंद रोज बाद सुना कि नरगिस की शादी मसूरी में ही तय हो गयी, किसी बड़े व्यापारी के लड़के से ।

नन्दलाल : बड़े मजे की बात है कि सन् '२९ की गर्मियों में मैं भी मसूरी में था और वहीं नलिनी से मेरी मुलाकात हुई थी । खैर, वह किस्सा बाद को सुनाऊँगा । आप बताइए कि उसके बाद क्या हुआ ?

म० अहमद : हुआ क्या ? न मैंने खुदकुशी की, न मैं उससे मिला । दुनिया के कारबार वैसे ही चलते रहे और मैं अपना पेट पालने की फिक्र में यहाँ आ गया, अपने मामा के गाँव से सैकड़ों मील दूर । और यहाँ रात के अंधेरे में जैसे रंगीन शाम खो जाती है ऐसे ही काम और मेहनत और फ़िक्रों की जिन्दगी में वह इश्क और उसकी याद गायब हो गए ।

दन्दलाल : हाँ साहब, हमें याद भी तो नहीं सताती । यह तो आज ही न जाने क्यों बरसों के कोहरे के पीछे छिपे मसूरी के उन चंद दिनों की तसवीर साफ झलक रही है ।

म० अहमद : मसूरी सैर करने गये हुए थे ?

नन्दलाल : हाँ । इस वक्त तो यकीन नहीं आता कि मैं सिर्फ़ सैर की खातिर किसी जगह जा सकता था । इस वक्त तो सैर करना बेकार-सी बात मालूम देती है । लेकिन तब बेकार और काम की बातों में यह फर्क नहीं था । मैं गया था अपने वजीफे से बचाए हुए रुपयों से छुट्टियां बिताने । एक दोस्त के पास लैंडौर बाजार में ठहरा था और अकसर

सवेरे लाल टिबे की तरफ निकल जाता था और बादलों को छूने वाले बादलों को देखा करता था, और…

म० अहमद : और ?

नन्दलाल : और मुंशीजी, मैं तसवीर भी बनाता था।

म० अहमद : आप ?

नन्दलाल : जी हाँ, आज मुझे भी ताज्जुब होता है कि कैसे मैं पेंटिंग कर लेता था। लेकिन तब तो उस शौक में दीवाना था। किसी भी कागज पर मन-माने रंगों से उन पल-पल बदलने वाले दृश्यों की झलक लाने की कोशिश किया करता था...और वह देखा करती थी।

म० अहमद : नलिनी ?'

नन्दलाल : जी हाँ, उसका मकान लाल टिबे के पास ही था। एक रोज चुपचाप मेरे पीछे आकर खड़ी हो गयी, दबे पाँव। न मालूम कितनी देर तक मेरे रंगों के खेल देखती रही और फिर बोली—'तुम तो बड़ी अच्छी तसवीर बनाते हो।'

म० अहमद : पहले ही रोज ?

नन्दलाल : पहले ही रोज। मैं चौंक उठा और फिर झेंप गया। लेकिन उसके बाद हम लोगों की दोस्ती हो गयी। दिल ने दिल को पहचाना। शोखी-भरी अदाएँ, शरारत-भरी नजर, उमंग-भरे सपने !—क्या जमाना था !!

म० अहमद : लेकिन उसके बाद ?

नन्दलाल : उसके बाद ?...हँ-हँ...मुंशीजी, उसके बाद ? आतिशबाजी खत्म हो जाने के बाद क्या रह जाता है ? जले हुए मसाले और आँखों के आगे अँधेरा।

म० अहमद : क्या उस लड़की ने मिलना बन्द कर दिया ? मामले का खातमा कैसे हुआ ?

नन्दलाल : वही पुरानी बात। कुछ ही दिनों बाद मुझे मसूरी से वापस जाना पड़ा। रुपये खत्म हो गए। घर से चिट्ठी आयी कि माँ बीमार हैं। भाइयों की परवरिश का भी सवाल था। पढ़ाई मेरी खत्म हो गयी और बाबूगीरी शुरू हो गयी। तब से बराबर जिन्दगी की सड़क पर चल रहा हूँ—धूल फाँकता हुआ। और उस धूल के गुबार में मसूरी के चार दिन भी धुंधले पड़ते चले गए।

म० अहमद : और नलिनी ?

नन्दलाल : क्या पता ! अपने पसीने और परेशानियों से उसे क्यों साना जाय !!—यही सोचकर मैंने उसकी चिट्ठियों का जवाब भी न दिया। शायद कुछ ही अर्से बाद उसकी शादी भी हो गयी। बड़े बाप की लड़की थी, पति भी कोई बड़ा ही आदमी रहा होगा।

[चुप्पी]

म० अहमद : (कुछ देर बाद) बाबू नन्दलाल, क्या हमारे-आपके ये अरमान यों ही दबे हुए, ठुकराये हुए पड़े रहेंगे ?

नन्दलाल : आसमान के कोने में दुबकी हुई बादल की टुकड़ी अपनी बीती हुई गहराई और ढले हुए पानी की याद में सूखती रहती है।

म० अहमद : लेकिन आज की रात में मस्ती है, बाबू नन्दलाल।

नन्दलाल : आज की रात चैत की पूनो है।
[नेपथ्य में किसी के गुनगुनाने और ढोलक की आवाज़]

म० अहमद : यह कैसी आवाज़ ?

नन्दलाल : कोई इधर ही आ रहा है।
[एक नौजवान का प्रवेश। पोशाक उन खानाबदोश बलूचियों की-सी पहने है जो अकसर शहरों में चाकू-छुरी बेचते नजर आते हैं। लेकिन शक्ल से बलूची नहीं जान पड़ता। गले से एक ढोलकी लटक रही है जिस पर कभी-कभी उसकी हथेलियाँ थिरक जाती हैं। कुछ मस्ती, कुछ उम्मीद, कुछ उठान से वह गुनगुना रहा है—"आज हमारे मन की रानी प्यार जगाने आयेगी।" दोनों बाबुओं को बिना देखे हुए वह विकिट गेट की ओर बढ़ता है।]

म० अहमद : (उस नौजवान को पुकारते हुए) ए-ए !
[नौजवान रुक जाता है और उन दोनों पर शान और बेरुखी की नज़र डालता है।]

नौजवान : क्या है ?

नन्दलाल : (पहचानते हुए मकबूल अहमद से) अरे, यह तो यूसुफ मालूम देता है।

म० अहमद : यूसुफ ? आपके दफ्तर का चपरासी ?

नौजवान : (तमककर कुछ नशीली आवाज में) मैं आज चपरासी नहीं हूँ।

नन्दलाल : (मकबूल अहमद से मंद स्वर में) पिये हुए है। (फिर ऊँचे स्वर में) वाह, भाई यूसुफ ! घंटों से तुम्हारा इन्तजार कर रहा हूँ और अब तुम कहते हो, चपरासी नहीं हूँ। यह लो दफ्तर की ताली।

यूसुफ : बाबू, हमको आज चपरासी मत बोलो। देखते नहीं यह लिबास ?

म० अहमद : खानाबदोश का लिबास ?

यूसुफ : जश्न का लिबास ! (ढोलक पर थाप लगाते हुए) आज मैं जश्न पर जाऊँगा। आज चाँदनी है, बाबू।

नन्दलाल : जश्न ? लेकिन उसके लिए ये कपड़े क्यों पहन रखे हैं, भाई ?

यूसुफ : उसके साथ जो नाचना है।

म० अहमद : किसके ?

यूसुफ : (गहरी कोमल आवाज में) अमीना के साथ।

नन्दलाल : (उत्सुकता से) यह अमीना कौन है ?

यूसुफ : (विकिट गेट के पीछे पेड़ों और झोंपड़ियों की तरफ इशा

देखते हो वह काफिला ?—वह ?

म० अहमद : खानावदोशों का काफिला ?

यूसुफ : हाँ, उन्हीं में एक लड़की है—अमीना। (विभोर) क्या पूछते हो बाबू, बोलती तसवीर है, बोलती तसवीर !···उसी ने तो मुझे ये कपड़े दिये हैं, वरना उन लोगों के जश्न में कैसे शामिल हो पाता ? आज वहाँ नाच-गाना है। (गुनगुनाते हुए) "आज हमारे मन की रानी···"

नन्दलाल : यूसूफ, यह गाना तो तुम्हारे मुंह से पहले कभी नहीं सुना।

यूसुफ : उसी ने तो सिखाया है। वही तो मेरे मन की रानी है, बाबू। और आज रात को—पर नहीं, तुम्हें नहीं बताता, तुम क्या समझो इन बातों को !···अच्छा तो चला !—"आज हमारे मन की···" (आगे बढ़ता है।)

म० अहमद : (न जाने कितना साहस समेटते हुए) यूसूफ, हम भी आ सकते हैं ?

नन्दलाल : (मानो मकबूल अहमद को उनके पागलपने पर फटकार रहा हो।) मुंशीजी !

यूसुफ : (ठहाका मारकर) हा हा हा !···नाचोगे या गाओगे ?

म० अहमद : देखेंगे।

यूसुफ : देखेंगे ? पर···(नन्दलाल की तरफ देखता हुआ) नन्दलाल बाबू को तो चाँदनी भी पसन्द नहीं।

म० अहमद : लेकिन आज पसन्द है। क्यों, बाबू नन्दलाल ?

नन्दलाल : (कुछ दबे स्वर में) हूं।

यूसुफ : बहुत ?

नन्दलाल : (आवाज कुछ निखर रही है।) बहुत !

यूसूफ : दिल में मस्ती है ?

म० अहमद : बहुत।

यूसुफ : तो चलो···मेरे पीछे-पीछे आओ। जहाँ मैं कहूँ वहां खड़े होकर देखते रहना। बहुत करीब मत आना। आओ···(ढोलक पर थाप लगाता हुआ) 'आज हमारे मन की रानी···'

[विकिट गेट से बाहर होकर नीचे की तरफ उतरता है। मकबूल और नन्दलाल भी उसके पीछे-पीछे चलते हैं। लेकिन नीचे उतरने से पहले नन्दलाल मकबूल की बाँह पकड़कर उसे रोकता हुआ पूछता है।]

नन्दलाल : मुंशी मकबूल अहमद, क्या सच हम लोग चलें ?

म० अहमद : बाबू नन्दलाल, कोई मेरे कानों में कह रहा है कि आज की रात मामूली रात नहीं है। आज हम जो चाहें, कर सकते हैं।

नन्दलाल : मुझे भी ऐसा लगता है मानो बाहर की किरणें अन्दर के अँधेरे को चीर देना चाहती हों।

म० अहमद : हम लोग जायेंगे, यह नाच-गाना देखने जरूर जायेंगे।

नन्दलाल : जंजीरें टूट रही हैं। आज की रात कैसी अनोखी है !

[दोनों मंच के पीछे उसी राह से उतर जाते हैं। कुछ देर तक मंच खाली रहता है। उनींदा-सा प्रकाश। कुछ समय बाद नेपथ्य से किसी के चलने से ग्राभूपणों की खनक सुनायी देती है। दो स्त्रियों का प्रवेश। एक तो भीना बुरका पहने है। दूसरी बलूची खानाबदोश की पोशाक में है। यह दूसरी उद्याम-यौवना ग्रौर एक पैनी छुरी की तरह खूबसूरत है; पैनी नाक, चंचल मुद्रा। चाँदनी के नशीले वातावरण की एक ग्रंग जान पड़ती है।]

ब० ग्रौरत : तुम यहीं ठहरो। मैं ग्रागे चलती हूँ। जब ग्रावाज दूँ तो जिधर मैं जा रही हूँ उसी राह से ग्राना।

बुरकेवाली : ज्यादा देर तो नहीं लगेगी? यहाँ जरा वीराना-सा है।

ब० ग्रौरत : डरती हो?

बुरकेवाली : नहीं।

ब० ग्रौरत : डरो मत। इस चाँदनी में वीरानापन कैसा? यह तो दिल को ग्राबाद करने वाली चाँदनी है।

बुरकेवाली : ग्रकेली नहीं रहना चाहती।

ब० ग्रौरत : तुम्हें ग्रकेली नहीं रहना होगा।

बुरकेवाली : ऐं? क्या कोई ग्रौर···

ब० ग्रौरत : (बात काटते हुए) यहीं ठहरो।

[ग्रौर फुर्ती से उसी 'विकिट गेट' से बाहर होकर नीचे उतर जाती है। बुरकेवाली कुछ इधर-उधर देखकर ग्रपना बुरका उठा लेती है। शलवार-दुपट्टा पहने है। उम्र करीब ग्रड़तीस बरस। ढलती जवानी मगर परिपक्व सौन्दर्य। इस वक्त उसके चेहरे पर ग्रद्भुत चुनौती, ग्रवहेलना, उन्माद के भाव झलक रहे हैं जो प्रायः इस उम्र की ग्रौरतों में नहीं होते। ग्रगर चाँदनी न होती तो शायद वह एक घरेलू ग्रौर कामकाजी ग्रौरत दिखाई पड़ती। मगर न जाने कैसा जादू है इस दृश्य में कि सभी कुछ ग्रसाधारण जान पड़ता है। ग्रौरत इधर-उधर इन्तजारी के साथ घूमती है, कुछ गुनगुनाती भी है।

कुछ देर बाद नेपथ्य में मोटर रुकने की ग्रावाज। कोई मोटर का दरवाजा खोलता है ग्रौर उसके बाद बन्द कर देता है। उसके बाद एक पुरुप-स्वर—"यहीं ठहरूँ?" स्त्री-स्वर—"न, तुम साहब को क्लब से लेकर बंगले पहुँचो। मैं पैदल वापस जाऊंगी।" पुरुप—"ग्रकेले?" स्त्री—"हाँ, तुम जाग्रो।" पुरुप—"जो हुकुम!" दरवाजा खुलने बन्द होने ग्रौर मोटर स्टार्ट होने की ग्रावाज। एक हार्न देकर [illegible] चली जाती है। थोड़ी देर बाद एक स्त्री का प्रवेश। यह पहली [illegible] से उम्र में कुछ कम है। साड़ी, जम्पर, जेवर सभी इस [illegible] है कि वह एक संभ्रान्त महिला है लेकिन ग्राधुनिक [illegible]

पर विगत सौन्दर्य के चिह्न हैं, मगर ऐसी शुष्कता भी है जिससे जान पड़ता है कि इसने जीवन में खोया बहुत है, पाया कम। चाँदनी के महीन रेशमी जाल में प्रवेश करते ही वह भी उस सम्मोहक दृश्य का अंग बन जाती है।

[बुरकेवाली ने मोटर का वार्तालाप सुनते ही बुरका डाल लिया है।]

नयी महिला : (दबे कदम आगे बढ़कर, सावधानी से धीमे स्वर में) अमीना ! (बुरके-वाली चौंक उठती है और उसे देखकर नवागत महिला भी) ओह ! तुम कौन ?

बुरकेवाली : अ···अमीना यहाँ नहीं है।

न० महिला : तुम भी अमीना को जानती हो।

बुरकेवाली : मैं उसके साथ ही आयी थी।

न० महिला : उसने मुझसे भी यहीं मिलने को कहा था।

बुरकेवाली : अमीना ने ?

न० महिला : हाँ।

बुरकेवाली : किसलिए ?

न० महिला : मैं उसका और उसके साथियों का नाच देखना चाहती हूँ।

बुरकेवाली : इसीलिए तो मैं भी आयी हूँ।

न० महिला : तुम कौन हो ? बुरका हटा लो। मेरे साथ और कोई नहीं है।

बुरकेवाली : (बुरका उठाते हुए) यह बात नहीं। मैं अपने को जाहिर नहीं करना चाहती।

न० महिला : (उसकी ओर टकटकी लगाकर देखती हुई) जाहिर !...लेकिन मुझे तो तुम्हारी शक्ल पहचानी-सी जान पड़ती है।

बुरके वाली : मालूम होता है हम लोग पहले भी कभी मिले हैं।

न० महिला : बहुत पहले।

बुरकेवाली : उस वक्त जब मैं नरगिस थी।

न० महिला : नरगिस ! तुम्हारा नाम नरगिस है ?

नरगिस : था। मसूरी में जब मेरी शादी हुई थी उस वक्त तक।

न० महिला : नरगिस ! मसूरी में !!—तुम सन् '२९ के मई-जून में मसूरी गयी थीं ?

नरगिस : गयी थी···(याद कर) ओह ! तु-तुम्हारा नाम···

न० महिला : नलिनी !

नरगिस : नलिनी ! (करीब जाकर, नलिनी के दोनों कन्धों पर हाथ रखकर उसे गौर से देखते हुए) नलिनी !!

नलिनी : (भावोद्रेक में) नरगिस !

नरगिस : कितने दिनों बाद !

नलिनी : पन्द्रह बरस से ज्यादा। तुम बदल गई हो ! बहुत।

नरगिस : तुम मुझसे भी ज्यादा। तभी तो इतनी देर लगी पहचानने में।

नलिनी : कैसे कहूँ, नरगिस ! आज तुमसे मिलकर ऐसा मालूम हो रहा है जैसे हफ्तों बादल रहने के बाद धूप छिटकी हो।

नरगिस : मसूरी में तुम्हारा साथ बिछुड़ने के बाद से मेरी भी तो ज़िन्दगी एक अँधेरी कोठरी की तरह रही है। आज न जाने क्यों मुझे भी उजाला-सा मालूम देता है।

नलिनी : तुम्हारी तो शादी...

नरगिस : एक रईस से हुई है।

नलिनी : ऐं !...तुम तो शायद कहा करती थीं कि उसके पास रुपया नहीं है।

नरगिस : हाँ, उसके पास रुपया नहीं था। मगर मेरी शादी उससे कहाँ हुई ?

नलिनी : ओह ! नरगिस, तुम भी मेरी तरह शायद खंडहर बनकर ही रह गयीं।

नरगिस : जो मैंने झेला है वह शायद तुम पर न बीता हो।

नलिनी : तो क्या तुम्हें गरीबी की तकलीफें उठानी पड़ी हैं !

नरगिस : कभी नहीं। जहाँ मेरी शादी हुई है वह इस शहर का घराना है।

नलिनी : तुम्हारे शौहर तुमसे नाराज तो नहीं रहते ?

नरगिस : नहीं, उनका तर्ज बराबर मिलनसारी का रहा है।

नलिनी : बच्चे ?

नरगिस : बच्चे हैं तीन। दो लड़कियां और एक लड़का। नलिनी, दुनिया की नज़रों में मैं तकदीरवाली और भाग्यवान हूँ। लेकिन क्या बताऊं तुम्हें, आज मुझे ये सारी बातें फीकी और बेकार लगती हैं।

नलिनी : यही तो मेरा तजुर्बा है, नरगिस। तुम्हें याद होगा मसूरी में मैंने उस भोले और भावुक नौजवान का जिक्र किया था।

नरगिस : याद है। और तुम्हारी अठखेलियां भी याद हैं।

[हंसी]

उम्र होने आयी। हमारे बाल-बच्चे हैं; हमारे ऊपर जिम्मेदारियाँ हैं। हमें नेकनामी का खयाल रखना चाहिए। इस पर भी···आज···(रुक जाती है।)

नरगिस : हाँ, नलिनी, आज कुछ हम लोगों को हो गया है।

नलिनी : लगता है न तुम्हें भी—मानो आज हमें कोई ऐसी चीज़ अपनी ओर खींच रही है जो इन सबसे बढ़कर है, जिससे हम अब तक बचते रहे, पर जो आज हमें लाचार किए दे रही है।

नरगिस : इसमें कुछ राज जरूर है, नलिनी। इधर दो-चार रोज़ से ही चाँदनी में मेरी तबीयत बिखरने-सी लगी थी। कल जब यह खानाबदोश लड़की मेरे मकान में घुस आयी, तो नौकरों से मैंने उसे निकलवाया नहीं, बल्कि उससे बातें करने की तबीयत उमड़ उठी। और जब उसने आज रात के नाच-गाने का जिक्र किया तब तो हया-शर्म छोड़कर उसके साथ आने को मैं बेताब हो गयी।

नलिनी : चाकू बेचने के बहाने वह मेरे पास आयी थी। एक अजब कशिश है उसमें।

नरगिस : नलिनी, हम लोग पागल तो नहीं हो गए हैं? घर, बच्चे, शौहर—सबको छोड़कर, इस तरह खानाबदोशों का नाच-गाना देखने के लिए यहाँ···

नलिनी : यह कैसा बचपन है? यह कौन-सी ताकत है?

नरगिस : नलिनी!

नलिनी : हाँ।

नरगिस : चलो, लौट चलें।

नलिनी : (अनिश्चित) लौट चलें?

नरगिस : हम बड़े घरों की औरतें हैं।

[मंच के पीछे नेपथ्य से पुरुषों और स्त्रियों के सम्मिलित स्वरों में उसी गीत की कुछ अस्पष्ट ध्वनि सुनायी पड़ती है जिसे हम यूसुफ के मुंह से सुन चुके हैं। सम्मिलित गीत की गति धीरे-धीरे तीव्र होती है, लेकिन इतनी नहीं कि बातचीत सुनाई न दे।]

नलिनी : (हठात् नरगिस की बाँह पकड़कर) नरगिस, सुना तुमने?

नरगिस : (फिर से जादू चढ़ रहा है।) वे लोग गा रहे हैं।

नलिनी : कैसी चंचल तर्ज है! (गुनगुनाती है।)

नरगिस : (बड़ी हसरत से) वे लोग नाचते भी होंगे।

[मंच के पीछे मुंह से बजायी हुई सीटी की आवाज़। उसके बाद अमीना का चेहरा और कंधे दीख पड़ते हैं।]

नलिनी : नरगिस!

अमीना : (दूर से ही) आओ, तुम दोनों आ जाओ।

नलिनी : वह बुला रही है, नरगिस ।

[गाने का स्वर तीव्र होता है ।]

अमीना : जल्दी आओ । (दृढ़ स्वर में) आओ, मेरे पीछे आओ । (उधर ही वापस जाती है ।)

नरगिस : हमें चलना होगा । (गाना तेज होता जाता है और ये दोनों अमीना की तरफ बढ़ती हैं ।) इस पुकार से नहीं भाग सकते ।

नलिनी : (चलते हुए) कैसी अनोखी रात है यह !

[और मंच पर अँधेरा बढ़ने लगता है, जिसमें ये दोनों उसी पीछे वाले हिस्से में उतरती हुई नजर पड़ती हैं । ज्यों-ज्यों अंधेरा गाढ़ा होता जाता है त्यों-त्यों ही उस कोरस के शब्द साफ सुनायी पड़ने लगते हैं । गहरी मर्दानी आवाज़ें और बारीक मधुर आवाज़ें मिलकर अजब समां पैदा कर रही हैं । ढोलकी पर तेजी से थापें पड़ रही हैं । इन ध्वनियों में मिश्रित लेकिन स्पष्ट किन्हीं थिरकते हुए नूपुरों की रुनझुन भी कर्णगोचर होती है । यद्यपि अंधेरे में वे स्त्री-पुरुष नजर नहीं पड़ते, लेकिन मालूम ऐसा होता है मानो कहीं पास में ही उन लोगों का संगीत और नृत्य हो रहा है ।]

सम्मिलित स्वर :

आज हमारे मन की रानी प्यार जगाने आयेगी,
धरती में से फूल खिलेंगे जिधर नजर पड़ जायेगी,
और हवा में मस्ती होगी ज्योंही वह मुसकायेगी ।

स्त्री स्वर :

अरमानों के महल बनेंगे, होंठों में से गीत झरेंगे,
नैनों से संदेस उड़ेंगे, ज्योंही वह मुसकायेगी ।

सम्मिलित स्वर :

आज हमारे दिल की रानी...

पुरुष स्वर :

चाँद ! बादलों में छिप जाओ, बुलबुल ! अपने गीत न गाओ,
फूल ! न गन्ध यहाँ बिखराओ, रानी तुम्हें लजायेगी ।

सम्मिलित स्वर :

आज हमारे दिल की रानी...
धरती में से फूल खिलेंगे...
और हवा में मस्ती होगी...

[गीत की अंतिम कड़ियाँ जब गायी जाती हैं तब पुनः अँधेरा कम होता जाता है । इसके साथ ही गीत की ध्वनि भी मंद पड़ती जाती है मानो गानेवाले दूर हट गए हों । चाँदनी की धुंधली आभा फिर से व्याप्त हो जाती है ।

और उस अर्धोन्मीलित चांदनी में पहले एक पुरुष और स्त्री एक-दूसरे का हाथ पकड़े हुए विकिट गेट के पीछे से ऊपर आते नजर पड़ते हैं और विकिट गेट से अन्दर आकर मंच के बीच की ओर बढ़ते हैं—मकबूल और नरगिस। उम्र उनके चेहरों से गायब हो चुकी है। आँखें किसी स्वर्गिक ज्योति से चमक रही हैं, होंठ हिल रहे हैं और न जाने कितनी मीठी बातें कही जा रही हैं; लेकिन हम लोगों के कानों तक वे नहीं पहुँच पातीं। हम तो सिर्फ देखते हैं किन्हीं अदृश्य अँगुलियों का खेल, जिन्होंने हमारे पहचाने हुए मुर्झाये पौधों को फिर से हरा-भरा कर दिया है।

प्यार की रगों में बँधे मकबूल और नरगिस आगे बढ़ते हैं और फिर दाहिनी ओर से बाहर चले जाते हैं। और उसी क्षण विकिट गेट के पीछे से एक और स्त्री-पुरुष का जोड़ा ऊपर आता है और उसी तरह आगे बढ़ता है। क्या हम-आप नन्दलाल और नलिनी को पहचान सकेंगे? भीगी बसन्ती हवा से हिलने-डुलने वाली, ओस से धुली पत्तियों की तरह नये जीवन का स्पर्श करते हुए ये दोनों आगे बढ़ते हैं। हाथ एक-दूसरे को टटोल रहे हैं। न जाने किन मधुर सपनों की बातों में दोनों उलझे हैं। वह भाषा हमारे-आपके कानों के परे की चीज़ है। ये दोनों भी मंच की दाहिनी तरफ से चले जाते हैं।

इसके बाद चाँदनी और साफ हो जाती है। गाने का स्वर और भी मंद हो जाता है। मंच पर कोई नहीं।]

दूसरा दृश्य

दूसरे दिन की शाम। जगह वही, समय भी करीब-करीब वही। मगर पूनो के बाद पहली शाम को चाँद उगने से झिझकता है और एक मनहूस अँधेरा फैला रहता है। वैसे ही मनहूस अँधेरे में यह दृश्य बदला हुआ और अपरिचित जान पड़ता है। जो लैम्प पहले रोज़ बुझा पड़ा था, आज अपनी बदसूरत रोशनी को अभिमान से जतला रहा है। उसके अँधे उजाले में बेंच पर बैठे हुए नज़र पड़ते हैं बाबू नन्दलाल। वे खोये हुए बरस फिर से चेहरे पर आ गये हैं और माथे पर चिन्ता की रेखाएँ दीख रही हैं। कोट के पैवन्द उस रोशनी में स्पष्ट रूप से झलक रहे हैं। छिपे हुए आनन्द और लुटी हुई मुसकान की याद में चुप बैठे हैं। दाहिना पैर आप-से-आप हिल रहा है।

दायीं ओर से एक और अर्ध-जीवित मूर्ति का प्रवेश। वही पाजामा और वही अचकन इस समय कितने मैले और भद्दे मालूम होते हैं। आँखें गड्ढों में धँसी पड़ी हैं और हाथ नीली नसों के जाल में फँसे हैं। चेहरे पर हवाइयाँ और पैरों में लड़खड़ाहट। ये हैं मुंशी मकबूल अहमद। आकर खड़े हो जाते हैं।]

नन्दलाल : कौन? मुंशी मकबूल अहमद?

म० अहमद : मैं ही हूँ, बाबू नन्दलाल।

नन्दलाल : आइए।

म० अहमद : मेरा क़यास ठीक निकला। खयाल था आप यहीं होंगे।

नन्दलाल : आपने सुन लिया न ?

म० अहमद : क्या ?

नन्दलाल : ओह !...तो आप नहीं जानते ?

म० अहमद : मैं कुछ नहीं जानता। मुझे कुछ नहीं सूझता। आपकी तलाश में आया हूँ, अपना दुखड़ा आपको सुनाने।

नन्दलाल : सुनाइये, मुंशी मकबूल अहमद। आप मुझे अपना दुखड़ा सुनाइए और मैं आपको अपना दुखड़ा सुनाऊँ। (गहरी साँस) इसके अलावा हम लोग कर ही क्या सकते हैं ?

म० अहमद : मुझे प्रेस की नौकरी से जवाब मिल गया है। पन्द्रह साल से जो प्रूफ-रीडरी थी, वह अब नहीं रही।

नन्दलाल : हूँ।

म० अहमद : जानते हैं क्यों ?

नन्दलाल : क्यों ?

म० अहमद : वह मेरे प्रेस के मालिक, खाँ साहब मुबारक अली खाँ की बीबी निकली।

नन्दलाल : नरगिस ?

म० अहमद : हाँ।

नन्दलाल : (जोर से ठहाका मारकर हँस देता है; कैसी सूखी और बीभत्स हँसी है यह !) खूब, बहुत खूब।

म० अहमद : आप हँसते हैं !

नन्दलाल : हाँ, मैं हँसता हूँ। हँसता हूँ उस गहरे मजाक पर जो खुदा ने मेरे और आपके साथ किया है। ह-ह-ह !

म० अहमद : आपके साथ ?

नन्दलाल : हाँ, मेरे भी साथ। नलिनी और कोई नहीं, मिसेज एच० नारायन है।

म० अहमद : मिसेज़ एच० नारायन ? आपके अफसर की बीबी ?

नन्दलाल : जी। आज सुबह उसे कोठी पर पहुँचाने गया तब पता चला। पहले कभी साहब की कोठी की तरफ कदम भी न बढ़ाये थे, उनकी मिसेज को देखना तो दरकिनार। और उसके बाद अपने घर गया। जानता था कि अपनी बीबी की फटकारें पड़ेंगी। बच्चों की चिल्लपुकार सुनी। दफ्तर आया। सिर में दर्द हो रहा था, आँखों में खुमारी थी। 'लंच' के बाद साहब ने अपने कमरे में बुलाया और बोले—'नन्दलाल, तुम बरखास्त होना चाहोगे या इस्तीफा दोगे ?' और मैं चला आया।

[कुछ देर दोनों चुप रहते हैं।]

म० अहमद : बाबू नन्दलाल, एक बात नहीं समझ पा रहा हूँ।

नन्दलाल : क्या ?

म० अहमद : यही कि कल रात के वाकयात ख्वाब थे या आज दिन भर के ?

नन्दलाल : काश आज का दिन ख्वाब होता !

म० अहमद : तब तो हमारी पिछले पन्द्रह बरसों की सारी जिन्दगी ही ख्वाब होती, सिवा कल रात के।

नन्दलाल : क्या कल की रात वापस नहीं आ सकती ?

म० अहमद : कल चाँदनी थी—पूनो की चांदनी।

नन्दलाल : आज अँधेरा है।

म० अहमद : यूसुफ ने पूछा था—'तुम्हें चाँदनी पसन्द है ?' और हमने जवाब दिया—'बहुत'।

नन्दलाल : मालूम है यूसुफ कहाँ है ?

म० अहमद : आप क्या उन लोगों के पड़ाव पर फिर गए थे ?

नन्दलाल : अभी वहीं से आया हूँ···वे लोग आज रात ही में दूसरी जगह चले जायेंगे। लेकिन यूसुफ उन लोगों के साथ नहीं है।

म० अहमद : नहीं है ?

नन्दलाल : और न वह लड़की अमीना। दोनों भाग गये।

म० अहमद : इश्क ?

नन्दलाल : वह तो कल ही उनकी आँखों और तर्ज से जाहिर था।

म० अहमद : कल मेरी तवज्जह उधर न थी। कल मेरी दुनिया दिल और यादगारों में बसती थी।

नन्दलाल : ठीक कहते हैं आप। कल हम लोग जमाने और उम्र की पाबन्दियों के परे थे।

म० अहमद : कल हम एक गहरी और लम्बी नींद से कुछ लमहों के लिए जागे थे।

नन्दलाल : क्या यह बेरहम नींद कल की तरह फिर हमें कुछ देर के लिए नहीं छोड़ सकती ?

[फिर चुप्पी, जिसमें गूंगी हसरतें उठ-उठकर रह जाती हैं।]

म० अहमद : (हठात् मौन तोड़ते हुए) बाबू नन्दलाल !

नन्दलाल : जी !

म० अहमद : एक बात हो सकती है, बाबू नन्दलाल !...यूसुफ और अमीना भाग निकले हैं। क्या उसी तरह हम लोग नहीं भाग सकते ?

नन्दलाल : हम लोग ?

म० अहमद : आप और नलिनी, मैं और नरगिस ?

नन्दलाल : आप क्या कह रहे हैं, मुंशी मकबूल अहमद ?

म० अहमद : (उत्साह के साथ) मैं ठीक कह रहा हूँ, बाबू नन्दलाल ! यह हो सकता है। यह होना चाहिए। जब यूसुफ और अमीना भाग सकते हैं तब हम क्यों न भागें ? कल रात जो चाँदी, जो प्यार की दौलत, जो खूबसूरती

का आलम हम पर बरसा है, क्या हम उसे यों ही खो जाने दें?… (और जोश के साथ खड़े होकर) नहीं-नहीं, यह नहीं हो सकता। उठिए, बाबू नन्दलाल! हम लोग जायेंगे और दिल की दुनिया को आबाद करेंगे। उठिए।

नन्दलाल : (अनिश्चित-से स्वर में) मुंशी मकबूल अहमद!

म० अहमद : आप सोच रहे हैं। (कुछ रुककर) हाँ, सोचिए कि क्या और कैसे करना होगा। जरूर सोचिए!

['विकिट गेट' के पीछे से दूर से कुछ घंटियों की आवाज।]

नन्दलाल : सुन रहे हैं आप यह घंटियों की आवाज? यह उन्हीं खानाबदोशों का काफिला उठ रहा है।

म० अहमद : अगर हम लोग भी इस काफिले के साथ भाग चलें। (बैठ जाता है।)

नन्दलाल : दूर, बहुत दूर। इस बेरहम और बदसूरत जमाने से दूर, जिसने हमें बरबाद कर दिया है।

[घंटियों की आवाज साफ सुनाई देती है।]

म० अहमद : आप और नलिनी, मैं और नरगिस! वही अठखेलियाँ, वही तराने!

नन्दलाल : उस दुनिया में जहाँ हमें दिन और रात काम में नहीं पिसना पड़ेगा, जहाँ हम हँसना चाहेंगे, हँस सकेंगे। रोना चाहेंगे, रो सकेंगे।

[घंटियों की ध्वनि दूर होती है।]

म० अहमद : (दबती आवाज में) काफिला जा रहा है।

नन्दलाल : मुंशी मकबूल अहमद!

म० अहमद : फिर भी हम उठ नहीं पा रहे हैं। (काँपते स्वर में) उठ नहीं पा रहे हैं।

नन्दलाल : (बेबसी से) कौन-सी वे जंजीरें हैं, जो हमें हिलने नहीं देतीं?

म० अहमद : वही जंजीरें, जो कल रात की चाँदनी में टुकड़े-टुकड़े हो गयी थीं।

नन्दलाल : फिक्र और ठोकरें और पस्त-हिम्मती की जंजीरें। आज वे फिर हमें जकड़ रही हैं।

म० अहमद : हमारी रोजी छिन गयी है। हमें अब और कहीं पिसना है।

नन्दलाल : हमारे बच्चे बीमार हैं, बीबियाँ चिड़चिड़ी हैं। हमारी तन्दुरुस्ती बेकार है।

म० अहमद : हम दफ्तरों की फाइलों और डेस्कों से बँधे हैं। उसी आब-हवा में हम जी सकते हैं।

नन्दलाल : चाँदनी की दौलत हमारे लिए नहीं है। प्यार और खूबसूरती के अरमान हमारे लिए सिर्फ सपने हैं।

म० अहमद : यूसुफ में हिम्मत थी; वह अमीना को ले जा सका।

नन्दलाल : यूसुफ आदमी है; धरती का बेटा है। लेकिन हम तो बाबू लोग हैं। (दारुण व्यंग्य-भरे स्वर में) हमें इज्जत का खयाल है।

म० अहमद : हमारे पास इज्जत है, लेकिन हिम्मत नहीं।

नन्दलाल : हम लोग खंडहर हैं।

म० अहमद : (भग्न स्वर में) खंडहर !

[और दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़े, एक-दूसरे की बगल में ख
हैं। हमें सिर्फ उनके चेहरों का एक तरफ का हिस्सा—'प्रोफील' दीर
रहा है और चूंकि म्युनिसिपैलिटी का टिमटिमाता हुआ लैम्प उ
लोगों के पीछे है, इसलिए वे चेहरे 'सिलुएट की तरह काले नजर पड़
हैं। उनकी कमरें झुकी हुई हैं और उनके अंग-अंग से बेबसी टप
रही है। चेहरों पर ऐसी पीड़ा है, जो पूरी तरह बोल नहीं सकती
ये हैं हमारे जीते-जागते ठठ्ठर, जिनके प्राणों की तपन न तो बाहर
दुनिया को ही झुलसाती है और न उनको ही जलाकर खाक करती है
ये हैं हमारे समाज के जीते-जी मरने वाले शहीद।

और उधर खानाबदोशों के काफिले से घंटियों की मन्द होत
हुई आवाज बराबर आ रही है। दिल की आज़ादी और खूबसूरती क
काफिला बढ़ रहा है—बढ़ रहा है और इधर मसोसे हुए दिलों के जनाज
भी नहीं निकल पा रहे हैं। फैलता हुआ, गाढ़ा होता हुआ अंधकार।]

८

मम्मी ठकुराइन

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल का जन्म सन् १९२५ में हुआ था। प्रारम्भ से ही नाटक की अपेक्षा नाट्य की परिपूर्ण कल्पना से प्रेरित रहे हैं। आपके सामने निश्चित तथा परम्परागत रंगमंच भले ही न रहा हो, पर नाटक की नाट्य-सम्बन्धी इस सम्पूर्ण दृष्टि और सम्भावना ने आपको सदा आन्दोलित किया है। आपके इस कथन में तथ्य है कि 'भारत में, विशेषकर हिन्दी-क्षेत्र में एकांकी का उदय पूर्णतः रंगमंच की माँग से हुआ है।' आपके अपने एकांकी वस्तुतः रंगमंच की इसी आकांक्षा से स्फुरित और अनुप्राणित हैं। एक ओर आपने आज के युग के सामाजिक जीवन की यथार्थ समस्याओं को व्यापक तथा सूक्ष्म स्तर पर ग्रहण किया है, तो दूसरी ओर अपने प्रत्येक एकांकी में रंगमंच को अधिकाधिक प्रत्यक्ष तथा उपलब्ध करने का प्रयत्न भी किया है।

प्रस्तुत एकांकी में उपर्युक्त दोनों सम्भावनाओं को देखा जा सकता है। इस एकांकी की कलात्मक उद्भावना में रंगमंचीय तत्त्व इस प्रकार सन्निहित हैं कि इसके पूरे सौन्दर्य-बोध को रंगमंच के संदर्भ में ही ग्रहण किया जा सकता है। इसका दृश्य-विधान मौलिक रूप से यथार्थ है।

रचनाएँ

ताजमहल के आँसू, पर्वत के पीछे, नाटक बहुरंगी, नाटक बहुरूपी, राजरानी, दर्पन, सूर्यमुख, कलंकी, मन-वृन्दावन, छोटी चम्पा-बड़ी चम्पा, सूखा सरोवर, सुन्दर रस, मादा कैक्टस, मिस्टर अभिमन्यु, रूपाजीवा आदि।

मंच पर आमने-सामने, अर्थात् बाएँ-दाएँ कोनों पर क्रमश: मम्मी और ठकुराइन के घरों के दरवाजे दीख पड़ रहे हैं। मम्मी के दरवाजे पर पर्दा झूल रहा है। ठकुराइन के खुले दरवाजे पर एक खाट बिछी है, एक खड़ी है।

दोनों घरों के बीच में गली है, जो दूर तक दिखाई पड़ती है। अन्त में एक म्युनिसिपल लैम्पपोस्ट, जिसमें लालटेन जलकर बुझ चुकी है। शेष गली में सदा नीली रोशनी—दूसरे दृश्य में और भी हल्की रोशनी, उस पर धुएँ के फैलने का संकेत।

रानी मम्मी की साहबजादी नीता, बारह साल की होनहार लड़की, सलवार पहनती है, बालों में सदा दो चोटियाँ रखती है; बड़ी तेज बोलने वाली है, भगवान् बचाये! बहादुर ठकुराइन का मँझला लड़का है, दस वर्ष का, निकर पर सदा कुर्ता अथवा बनियाइन ही पहनता है। अजी, बड़ा क्रोधी है, बड़ी-बड़ी आँखों से जैसे सदा घूरता रहता है। अजय, मम्मी का मँझला लड़का, अवस्था से यह भी प्राय: बहादुर का समवयस्क है, पर यह उससे कमजोर है। छोटा है पर इससे क्या, अजय के फैशन और लाड़-प्यार के आगे सब झूठे हैं। बड़ा ही तेज़, चंचल और प्यारा दीखता है। मम्मी तो माँ ही हैं अजय की। इनकी न पूछिए, डर लगता है इनके नाज़-नखरे से, सदा जैसे असन्तुष्ट-अप्रसन्न रहती हैं। अवस्था चालीस से ऊपर ही है, पर अब भी यह एम० ए० फाइनल जरूर करेंगी। पतली हो जाने के लिए दवा कराने की सोचती हैं।

मुंशीजी! आय···हाय, दायीं लालटेन बुझते-बुझते रह गयी है। अभी हाल ही ऑपरेशन कराके लौटे हैं, दायीं आँख पर हरी पट्टी। अवस्था पचास साल, हाथ में छड़ी—धोती पर बुढ़िया शेरवानी। ठकुराइन साहब! अजी, नमस्ते! देखिए, आप बहुत मुसकराती हैं। मैं टिकट बाबू से कह दूँगा, हाँ। अजी, कोई डर है उनका, ठकुराइन एक बालिश्त बड़ी हैं। प्यार से भी एक घूँसा अगर किसी को मार दें तो, राम कसम गंगाजल। पर हँसती कितना हैं, गोरी-चिट्टी और स्वस्थ। सीधे पल्ले का आँचल जैसे कभी माथे से उतरता ही नहीं। हाय राम···कड़े···छड़े···कगन···वाली, भरे हाथ की चूड़ियां, क्या गज़ब करती हो ठकुराइन!

प्रोफेसर साहब! अजी, इन्कलाब जिन्दाबाद। हाँ···हाँ···बोलिए···बोलिए··· मम्मी बाजार गयी हैं, आपके लिए सूट सिलाने। पैंट कसी रखिए, चश्मा न उतारिए ···हाँ, पढ़ाइए अब। सही कहते हैं आप, प्रोफेसर साहब···तेरी दुनिया में सब कुछ है,मगर प्यार नहीं। प्यार के मतलब इश्क़ तनहाई।

अहा हा! खन्ना बाबू! कितने हसीन आदमी थे यार तुम, लेकिन भाई इतने मोटे क्यों होते जा रहे हो? अमें, अपनी भाभी से पूछो न। बहुत तंग करती हैं। बैंक की नौकरी, इधर सिर पर घर की भरी टोकरी। पर कोई बात नहीं, खैर! हें हें हें ऽऽऽ!

ओ हो टिकट बाबू! जै राम जी की! ज़रा जल्दी में हूँ, फिर मिलूंगा···ड्यूटी

है ड्यूटी। सफेद पैंट और काला कोट। माशाल्लाह, कभी धुला डालिए, ठाकुर साहब! अजी टिकट बाबू कहो, भड़काओ नहीं मुझे, ताव आ जाता है, हाँ। अच्छा-अच्छा, चुप रहो भाई, इधर देखो, अब पर्दा उठ रहा है। मार्च की एक शाम, जो रात बन रही है।

क्षण भर के लिए मंच सूना है, पृष्ठभूमि में लड़कों का कोलाहल। फिर सामने गली में रोते हुए अजय का प्रवेश। बहादुर पीछे है, जो ताली पीट-पीटकर हँस रहा है।

नीता : (अपने दरवाजे से निकलती है, गुस्से से लाल) बत्तमीज कहीं के! (बहादुर के सामने जाकर तन जाती है, जैसे अभी पीट देगी।) किसने मारा अजय को? क्यों मारा तुमने?

[बहादुर हँसकर रह जाता है।]

नीता : बत्तमीज़ कहीं के! जरा भी अकल नहीं। अजय रो रहा है और तुम हँस रहे हो?—आने दो पापा को।

बहादुर : जब दौड़ नहीं पाते तो यह हम लोगों के संग खेलते क्यों हैं?

नीता : तू कहीं का लाट साहब है क्या?

बहादुर : (गुस्से में) हइय! मुझसे बहुत टिर्र-पिर्र मत कीजियो, हाँ!

नीता : इसकी पैंट और कमीज क्यों खराब कर दी?

बहादुर : गाँठ में जोर नहीं, खेलने आते हैं! भकाभक गिरते हैं, और ऊपर से पें···पें···पें।

[उसी क्षण अजय रोते-रोते सहसा बहादुर के ऊपर थूक देता है, बहादुर धड़ाक से उसके गाल पर एक चाँटा जमा देता है। नीता बहादुर को कई बार मारने को होती है, पर बहादुर उसके हाथों को पकड-पकड़ लेता है, उसी हंगामे में मम्मी निकलती है।]

मम्मी : बस···बस, खबरदार! (बीच में आकर बहादुर को अलग कर देती है।) क्यों बहादुर, तेरी यह मजाल!—ओ हो—माई गॉड!! मैं तो डेढ़ ही महीने में ऊब गई इस मुहल्ले से, तंग आ गयी इस गली और पड़ोस से।

नीता : मम्मी! अजय की कमीज और पैंट की हालत देखिए।

मम्मी : मैं पागल हो जाऊँगी इस पड़ोस से। यह सारे नये धुले कपड़े! इतनी धुलाई-सिलाई; ये सब क्या जानें!

अजय : मम्मी! देखिए, बहादुर ने मुझे इतनी जोर से मारा है कि···बत्तमीज़ कहीं का!

मम्मी : बत्तमीज तू है! मैंने तुझसे लाख बार मना किया है, तू इन लौंडों के संग कुछ न खेल, पर तू है कि···

नीता मम्मी! यह बहादुर गन्दी-गन्दी बातें बोलता है।

मम्मी : आने दे आज तुम्हारे पापा को! आज कोई फैसला होके रहेगा। (अपने दरवाजे पर आ) तमाशा बना दिया है! गली-पड़ोस का

दिया हुआ नहीं खाती मैं ! किसकी मजाल है, जो मेरे बच्चों को पीटे !

नीता : ये लौंडे हमारी दीवार पर गन्दी-गन्दी बातें लिखते हैं, मम्मी !

मम्मी : जो न हो जाय सब कम है इस कस्बे में। (रुककर) इतने दिनों तक जयपुर में रही, मजाल क्या बच्चे कभी रोये हों, या मुझे तेज बोलना पड़ा हो। लेकिन यहाँ मैं चीख-चीखकर पागल हो जाऊंगी।

नीता : कैसा घूर रहा है बैठा-बैठा यह बहादुर !

मम्मी : मैं खूब जानती हूँ यहाँ रहने का नतीजा। आने दो प्रोफेसर सतसंगी को। वह रहें अकेले यहाँ। यही बड़ी प्यारी थी इस टुटपुंजिये कालेज की नौकरी, जो जयपुर के इतने शानदार कालेज को छोड़कर इस गन्दे कस्बे में आये।

अजय : (बीच ही में मुंह बनाकर) मम्मी, मैं चुपचाप दौड़ रहा था। बहादुर ने पीछे से लंगी मारकर मुझे गिरा दिया।

नीता : और अभी इसने ऊपर से मारा भी।

मम्मी : (आवेश में) क्यों रे बहादुर ! इधर तो आ। क्यों मारा तूने अजय को ?

बहादुर : इसने थूका है जो मेरे ऊपर।

अजय, नीता : (एक स्वर में) नहीं-नहीं, झूठ है मम्मी, बिलकुल झूठ।

अजय : मम्मी ! यह बड़ा चार सौ बीस है।

मम्मी : चुप रह, अजय !···क्यों बहादुर ! तूने अजय को लंगी मारकर क्यों गिराया ?

बहादुर : (गुस्से में) बुलाऊँ सारे लड़कों को !

अजय : मम्मी ! यहाँ के सब लड़के झुट्ठे हैं।

नीता : सब ही एक थैली के चट्टे-बट्टे हैं। एक गिरोह है इनका, मम्मी !

बहादुर : बस, देवता तो तुम्हीं लोग हो।

मम्मी : (डाँट के स्वर में) चुप रह ! तमीज से बातें करना सीख !

[तभी अपने दरवाजे से ठकुराइन का प्रवेश, आँचल में गीले हाथ पोंछती हुई।]

ठकुराइन : क्या है रे, बहादुर ? चल, घर में चल।

मम्मी : (जैसे अपने-आप से) किस्मत फूट गयी यहाँ आकर। दुनिया में बहुत लड़के हैं, लेकिन यहाँ के सबसे निराले हैं। बाप रे बाप, इतनी बुरी-बुरी आदतें। उफ ! मैं तो पक गयी।

ठकुराइन : हमारी वजह से ?

मम्मी : पता नहीं कैसे लोग हैं यहाँ के ! कैसी तहजीब है उनकी, और उनके बच्चों की।

बहादुर : (सहसा) बस सिर्फ आप ही लोग लाट साहब के नाती हैं।

ठकुराइन : (गुस्से से झिटककर) चुप···चुप रहना है कि नहीं ! यहाँ

लिए खड़ा है ? मैं कहूँ कि क्या बात है, मैं तो चौके में थी। (हँस पड़ती है।) क्यों रे बहादुर ! तू क्यों खेलता है मम्मी के बच्चे के संग ?

बहादुर : कौन जाता है बुलाने इनके बच्चों को। अजय, विजय, नीता-गीता सब तो अपने-आप घुस आते हैं हममें !

मम्मी : (गुस्से में) तुम्हारा मतलब है कि मैं अपने दरवाजे पर बच्चों को न टहलने दूँ !

[गली में मुंशीजी आते दीख पड़ते हैं।]

ठकुराइन : अरे···रे···सुनो तो, बहू !

मुंशीजी : (आकर) हे जी ठकुराइन, पहले मेरी बात तो सुनो जी ! (ठकुराइन माथा ढककर दरवाजे पर खड़ी होती है।) अजय की मम्मी, तुम भी सुनो। जे बात यह है कि इस गली के सारे लड़के तो यहाँ खेल ही नहीं रहे थे। वहाँ बाग में खेल रहे थे, इमली के नीचे और आपके बच्चे खुद वहाँ गये।

मम्मी : (ताव में) जी, आपसे कौन पूछ रहा है ? औरतों के बीच में खामखाह बोलने वाले आप कौन होते हैं ? जब यहाँ के मरदों को इतनी तमीज नहीं तो ये बच्चे क्यों न ऐसे हों ?

मुंशीजी : अरे···जा-जा ! बड़ी तमीजदार आयी है ! नयी नाइन, बाँस का नाहना !

मम्मी : चलो, घर में चलो, देखूँगी मैं, हाँ !

[बच्चों सहित प्रस्थान। भीतर से दरवाजा बन्द होता है।]

मुंशीजी : बड़ी देखी साहबी खून वालों की !···सुनो, बहादुर की माँ ! इनसे जरा दबा न करो, बहू। जरा भी दबीं तो ये हावी हो जायेंगे, हाँ।

ठकुराइन : (हँसती है) बड़ा गुस्सा है मम्मी को ? लेकिन जितना यह गुस्सा, झुँझलाहट ऊपर से है उतना भीतर से नहीं है, मुंशीजी !

मुंशीजी : तो भीतर से तो गऊ हैं ?

ठकुराइन : (हँसकर) हाँ, बच्चों को लेकर जब यह बोलने लगती है तो सच मैं घबरा जाती हूँ। गली-मुहल्ले के, घर-घर के बच्चे हैं, आपस में खेलते हैं, गिरते-रोते हैं, चुप हो जाते हैं। पर उनके माँ-बाप कभी कोई बात कान पर नहीं लेते।

बहादुर : (ताव में) अपने बच्चों को घर में क्यों नहीं बन्द रखतीं ?

ठकुराइन : चुप रह रे ! तूफान करेगा क्या ?···जा, भाग यहाँ से···! चल अन्दर।

बहादुर : क्यों जाऊँ ? मैं नहीं जाता अपने दरवाजे से !

ठकुराइन : मैं कहती हूँ अन्दर जा न !

बहादुर : मैं नहीं जाता ! किसी के बाप का डर पड़ा है कि मैं यहाँ से भागूँ ! नहीं जाता···!

ठकुराइन : तेरा नाश्ता ठंडा हो रहा है रे !

[ठकुराइन को हँसी आ जाती है, तब बहादुर भीतर जाता है ।]

मुंशीजी : ठीक ही कहता है । आखिर अपने घर से भागकर कहाँ जाय ? शिव-शिव ! तुम तो घर में रहती हो बहू, मैं सारा दिन अपनी बैठक से देखता रहता हूँ...! हाय-हाय...अजय...विजय, गीता...नीता... बच्चे हैं कि तुर्कों की फौज है ।

ठकुराइन : जरा धीरे बोलो, मुंशीजी !...नहीं तो अजय की मम्मी...

मुंशीजी : ठकुराइन ! यह मम्मी क्या बला है ?

ठकुराइन : बच्चे माँ को मम्मी कहते हैं और प्रोफेसर साहब को पापा कहते हैं ।

मुंशीजी : (हँसी आ जाती है ।) पापा और मम्मी ! राजा कहें किस्सा, रानी खाँय मूँगफली ।

ठकुराइन : प्रोफेसर साहब आ रहे हैं, मुंशीजी !

[ठकुराइन दरवाजे में चली जाती है । मुंशीजी थैली में से बीड़ी निकालकर दागने लगते हैं । प्रोफेसर सतसंगी अपने घर के दरवाजे पर दस्तक देते हैं ।]

प्रोफेसर : बेबी...बेबी...अजय...ओ नीता !

[बन्द किवाड़ें खुलती हैं, नीता दिखाई पड़ती है ।]

प्रोफेसर : अरे ! इस उमस में तुम लोग इस तरह कमरा बन्द करके पड़े हो ?

नीता : लगता है आज आँधी आयेगी, पापा !

प्रोफेसर : मम्मी कहाँ है ?

नीता : उन्हें बहुत जोर का सिरदर्द हो रहा है ।

प्रोफेसर : अरे !

[नीता के संग भीतर प्रवेश]

मुंशीजी : बहू ! सुना है मम्मीजी की छोटी बहन आयी हैं ?

ठकुराइन : हाँ, आयी तो हैं ।

मुंशीजी : वह तो शायद बड़े एखलाक की हैं, पर्दे में रहती हैं, इनकी तरह डगर-डगर नहीं घूमतीं ।

ठकुराइन : बच्चा होने वाला है, कमजोर बहुत हैं । डाक्टरनी ने बहुत चलना-फिरना मना किया है ।

मुंशीजी : ओ हो ! जभी वह मिडवाइफ बहुत चक्कर लगाती है ।

ठकुराइन : कितनी उमस है आज ! परसों की तरह फिर तूफान आयेगा क्या ?

मुंशीजी : आँधी आयेगी, बहू !

ठकुराइन : पानी भी बरसेगा, ऐसा लगता है ।

[अपने दरवाजे से निकलकर मम्मी बड़ी तेजी से बाहर मुड़ती [illegible] भर बाद प्रोफेसर सतसंगी जैसे मम्मी का पीछा करते हुए [illegible] ठकुराइन अन्दर चली जाती हैं, मुं[illegible]री में मुड़ जाते हैं

प्रोफेसर : (पुकारते आते हैं) सुनती हो...अ[illegible] की माँ !

[भीतर से अजय और नीता का प्रवेश]

प्रोफेसर : (बिगड़कर) तुम्हारी मौसी जी के पास कौन है ? चलो अन्दर ! नीता, तुम जाओ···जाओ, मौसीजी के पास रहो। (रुककर) अजय, देखो तुम्हारी मम्मी कहाँ गयी ?

अजय : पापा, मुझे बहादुर ने मारा है।

नीता : और उल्टे बहादुर की माँ, मम्मी से लड़ने को आमादा थीं।

अजय : पापा, वह जो खूसट बुड्ढा मुंशी है न ! वह भी लड़ने लगा उन्हीं की ओर से।

प्रोफ़ेसर : (झल्लाते हुए) अच्छा...अच्छा ! जाओ, तुम मम्मी को देखो।

अजय : पापा, सारे लड़के हम लोगों को तंग करते हैं। बुरी-बुरी बातें करते हैं। गन्दी-गन्दी आदतें सिखाते हैं।

प्रोफेसर : मैं कहता हूँ, पहले मम्मी को जाकर देखो। नीता, तुम मौसी के पास क्यों नहीं जातीं ?

[नीता भीतर लौट जाती है।]

प्रोफेसर : अजय, जाओ, मम्मी को देखो !

[उसी क्षण मम्मी प्रविष्ट होती हैं।]

मम्मी : क्या करोगे मम्मी का ? मम्मी तो खुद पागल हो गई।

प्रोफ़ेसर : सुनो तो !

[मम्मी के सामने खड़े हो जाते हैं।]

प्रोफेसर : बहादुर ने आज फिर बच्चों को पीटा है ?···उसकी माँ तुमसे लड़ रही थी ?

मम्मी : मेरा सिर न चाटो ! उन्हीं से पूछो जाकर।

प्रोफ़ेसर : आखिर बात क्या हुई ? मैं भी तो जानूँ।

मम्मी : हट जाओ मेरे सामने से ! दर्द के मारे मेरा सिर यूँ ही फट रहा है।

प्रोफेसर : 'इक्जरशन' पड़ गया तुम पर लगता है !

[मम्मी गुस्से में तनी भीतर चली जाती हैं।]

अजय : पापा, मम्मी मौसीजी के लिए भभूत लेने गयी थीं। बहरैइची जमादार है न, पापा।

प्रोफेसर : हाँ···हाँ !

[तभी अपने दरवाजे से बहादुर निकलता है।]

प्रोफेसर : क्यों जी बहादुर ! तुमने आज फिर अजय को पीटा है ?

बहादुर : मै नहीं बोलता आप लोगों से। जाइए जो करना है कर लीजिए मेरा।

प्रोफेसर : तमीज से बातें करना सीखो !

मम्मी : (भीतर से निकलती हुई) उस पर क्यों लाल-पीले होते हो ? अपना सिर क्यों नहीं पीटते, जो यहाँ आ बसे। तुम्हें तो ठाट से कालेज की नौकरी करनी है न। मरना तो मुझको है इस सड़े मुहल्ले में ! गली

में आ वसे हैं, जैसे और कहीं कोई ठिकाना न था।

प्रोफेसर : पर डियर, मेरी वात तो सुनो!

मम्मी : तुम रहो यहाँ, मैं कल ही वच्चों को लेकर मेरठ चली जाऊँगी। जव तक वहाँ मेरे माँ-वाप हैं, समझूँगी कि तव तक···

प्रोफेसर : मैं अभी पूछता हूँ वहादुर की माँ से! इन्हें पता नहीं कि हमारी पोज़ीशन क्या है!

मम्मी : खूव जानते हैं हमारी पोज़ीशन। जिस दिन तुमने मुझे यहाँ ला वसा दिया, उसी वक्त हमारी पोज़ीशन जाहिर हो गई। सारी आदतें वच्चों की खराव हो गयीं। गन्दगी-पसन्द हो गये वच्चे। सदा रोनी सूरतें वनाकर घूमने लगे। पढ़ने-लिखने से जी चुराने लगे। (रुककर) जयपुर से आज यहाँ कोई हमसे मिलने आये, तो वह इन वच्चों को पहचान नहीं सकता कि ये वही वच्चे हैं। (रो पड़ती है।) मेरी किस्मत फूट गयी!

प्रोफेसर : (विगड़ जाते हैं।) क्या समझ रखा है इन लोगों ने हमें! क्यों वहादुर! चलो, इधर तो आओ···सुनो मेरी वात।

वहादुर : सुन तो रहा हूं।

[एकाएक भीतर से ठकुराइन निकलती है।]

ठकुराइन : क्यों रे वहादुर! तू फिर यहां आ गया?

वहादुर : फिर कहां जाऊं? कोई डर पड़ा है इन लोगों का क्या? क्यों जाऊँ मैं यहां से! यह मेरा दरवाजा है, किसी के वाप का साझा नहीं है इसमें!
[ठकुराइन वहादुर के सिर पर तमाचा मार देती है।]

ठकुराइन : फिर वोलेगा? मारते-मारते तेरी···

वहादुर : (क्रोध में) वोलूंगा···वोलूंगा···हजार वार वोलूंगा, हाँ।

ठकुराइन : लगता है इन लोगों के मारे घर ही छोड़ना पड़ेगा। जैसे दुनिया में इन्हीं को वाल-वच्चे हैं, यही शरीफ हैं; इन्हीं को सारी तमीज है जो वीवी की ओर से लड़ने आये हैं।

प्रोफेसर : सुनो जी, ठकुराइन! हमें तुम लोगों की तरह लड़ने की आदत नहीं। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि अपने वच्चों को समझा दो और खुद समझ लो कि हमें तुम लोगों से कोई सरोकार नहीं।

ठकुराइन : कौन रखता है सरोकार! दरवाजे के सामने तुम्हारा घर न पड़ता तो मैं उधर ताकती तक नहीं। जितनी ही इनकी इज्जत करो, उतनी ही···

[गली में से मुंशीजी निकलते हैं।]

मुंशीजी : मैंने तो पहले ही कहा था तुमसे, वहू!

प्रोफेसर : जी, तुम कौन हो वीच में वोलने वाले!

मुंशीजी : जी, मैं एक आदमी हूँ।

मम्मी : लेकिन आसार नहीं हैं आदमी के!

मुंशीजी : अजी, औरत के तो आसार हैं, कि वह भी नहीं।

प्रोफेसर : यही है तुम्हारी तमीज ?

मुंशीजी : क्या ?…सुनो, मास्टर साहब ! ज़रा कायदे से पेश आया करो मुझसे, वरना ताले लगवा दूँगा घर में, हाँ ! मैं टिकट बाबू नहीं !

प्रोफेसर : तेरी यह मजाल !

[गली में से खन्ना बाबू का प्रवेश ।]

खन्ना : (पेट पर हाथ फेरते हुए, यह इनकी आदत है, और साथ-ही-साथ हँसते भी रहते हैं।) क्या है, मुंशीजी ? जैरामजी की, प्रोफेसर साहब !

मम्मी : इन्हें देखकर तो मेरा सिर और फटने लगा ।

[मम्मी भीतर चली जाती है ।]

खन्ना : हम लोगों की सूरत ही ऐसी है, क्या बताएँ मुंशीजी ! (रुककर) क्या बात है, मास्टर साहब ?

प्रोफेसर : आपसे मतलब ?

खन्ना : क्यों नहीं, मास्टर साहब ! हम पड़ोसी जो हैं !…मुंशीजी, बहादुर, जरा अदब-लिहाज रखा करो मास्टर साहब के घर का ! बड़े भाग्य से तो यह हमारे मुहल्ले में आये ।

प्रोफेसर : बको मत ! मैं सबकी शरारतें समझता हूँ। मैं अभी जाता हूँ चेयरमैन साहब के पास । अजय, जरा मेरी छड़ी और टार्च तो लाना ! (अजय का प्रस्थान) क्या समझ रखा है इन लोगों ने !

खन्ना : हम तो मास्टर साहब आपकी बड़ी इज्जत करते हैं—इलिम कसम । पूछ लीजिए मुहल्ले भर में । यकीन न हो तो मेरी बीवी से पूछ लीजिए ।

प्रोफेसर : तुम लोगों की यह मजाल । सारी दुपहरी तुम लोग हमारे घर का मजाक बनाते हो !…कोई कहता है, मास्टर साहब ने प्रेम विवाह किया है । कोई कहता है, कि मास्टर ससुर के रुपये से पढ़े हैं । कोई कहता है, मैंने अपने माँ-बाप को छोड़ दिया है । कोई कहता है, रात को मुझे नींद नहीं आती और मैं शराब पीता हूं।

मुंशीजी : नहीं जी, मैं तो जानता हूँ आप शायरी करते हैं ।

खन्ना : बुरी बात है, मुंशीजी !

[उसी समय एक ओर से चौधरी क़यामत हुसेन आते हैं ।]

चौधरी : (आते-आते) राम…राम ! क्या जाने ये लोग किसी पढ़े-लिखे विदवान को ! क्या जाने कदरदानी ?

खन्ना : चौधरी, मूंगफली के क्या भाव हैं ?

चौधरी : मुहल्ले के लोग तो बस सदा दूसरों के लिए ऐसे ही रहते हैं । कहीं कुछ मिल जाय, ढूंढते ही रहते हैं ।

प्रोफेसर : (पुकारकर) अजय ! क्या करने लगा भीतर ?

अजय : (छड़ी-टार्च लिए दौड़ा आता है ।) लीजिए, पापाजी !

प्रोफेसर : मैं जानता हूँ ऐसे लोगों की दवा। (जाते-जाते) अजय, अन्दर चलो, मैं अभी आया।

[प्रस्थान। अजय भीतर चला जाता है।]

चौधरी : तभी तो कोई शरीफ इस मुहल्ले में टिक नहीं पाता।

मुंशीजी : अजी, बड़े शरीफ के शहज़ादे देखे। तुम क्या जानो, चौधरी क़यामत हुसेन! तुम तो दिन-रात तम्बाकू की दुकान पर बैठे रहते हो। ये लोग जब से यहाँ आये हैं, हमारी गली गन्दी हो गयी।

खन्ना : चुप···चुप···चुप! अरे, मम्मी की छोटी बहन आयी हैं, क्या कहेंगी?

चौधरी : कौन समझाये मुंशीजी को! अरे, मुहल्ले में एक पढ़ा-लिखा विद्वान है तो यहाँ रोशनी है, वरना अँधेरा है।

मुंशीजी : भइया, ले जाओ यह चिराग अपनी दुकान पर!···मार के गली गन्दी कर दी इन लोगों ने।

खन्ना : इतने-इतने मुर्गी के अण्डे। जहाँ देखो, वहीं अण्डों के छिलके।

मुंशीजी : अजी, इन लोगों की वजह से गली के कुछ लौंडे भी अण्डा खाने लगे।

खन्ना : और वह गोश्तवाला! जो यहाँ भरी खँचिया लिये आने लगा। हद हो गयी, कभी नहीं हुआ था ऐसा यहाँ।

ठकुराइन : (जो अब तक किवाड़ के पास खड़ी थीं, बढ़कर) और वह रोज़ ठीक मेरे दरवाजे के सामने खँचिया खोलकर बैठता है।

मुंशीजी : छीः छीः छीः! कभी नहीं हुआ ऐसा। मजाल क्या कभी चिकवा-कसाई यहाँ आया हो।

ठकुराइन : एक-एक बोटी गोश्त के लिए बच्चे लड़ते हैं आपस में, बाहर ला-लाकर खाते हैं।

खन्ना : और ये जो कुत्ते-बिल्लियाँ हैं, पूछो न इनकी गोश्त की हड्डियों को इधर-उधर बिखेरते रहते हैं नालायक।

ठकुराइन : और कौवे जो हैं, एक दिन भगतिन बुआ के आँगन में हड्डियाँ गिरा आये। दो दिनों तक उपवास किया उन्होंने।

मुंशीजी : सुना चौधरी क़यामत हुसेन!

चौधरी : अजी, छोटी-छोटी बातों का क्या झगड़ा। शरीफ आदमी के लिए कुछ सह लेना बुरी बात थोड़े ही है।

ठकुराइन : देखो क्या बम्ब लेकर आते हैं मास्टर साहब! चेयरमैन साहब के यहाँ फरियाद लेकर गये हैं।

मुंशीजी : अजी बहू, रखो फरियाद। जैसे मास्टर साहब उससे दूना चेयरमैन साहब। वह देखो न गली की म्युनिस्पिल लाइट। ससुरी जैसे [illegible] बुझी रहती है। सारा तेल बेच खाते हैं। सब शराबी-कबाबी [illegible] से राम-राम, भीतर से कसाई का काम। (रुककर) चेयरमैन [illegible] ही तो मास्टर साहब को यहाँ ला बसाया है।

ठकुराइन : चेयरमैन साहब का घर है, जिसे चाहें उसे बसाएँ।

मुंशीजी : अजी बहू, तू का जाने है! यह घर था अनोखेलाल पटवर्धनदास के भतीजे गोवर्धनदास के लड़के मिठाईलाल का। उस बेचारे को चुंगी के एक मुकदमे में फाँसकर चेयरमैन साहब ने इस मकान को अपनी रखैल औरत के नाम लिखा लिया।

खन्ना : म्युनिसिपैलिटी जिन्दाबाद। तभी तो मैं कहूं कि चेयरमैन साहब के इतने घर क्यों है? हर सड़क, हर गली में चेयरमैन साहब का घर। कहीं लौंडों के नाम, कहीं बहुओं के नाम।

मुंशीजी : और कहीं रखैलों के नाम!

बहादुर : (जो अब तक चारपाई पर चुपचाप बैठा था।) जरा धीरे-धीरे बोलो, बाबा!

खन्ना : अबे, दरवाजा तो बन्द है मास्टर साहब का!

बहादुर : (उठकर जैसे दिखाता हुआ) लेकिन सब खिड़कियों में छिपे बैठे हैं। नीता दरवाजे में खड़ी होगी।

ठकुराइन : सबके सब चेयरमैन साहब के यहाँ पहुंच जाते हैं।

मुंशीजी : अजी, कौन परवाह करता है! आकर खड़े न हो जायँ चेयरमैन साहब, सात पुश्त की हुलिया जानता हूँ, उधेड़कर रख दूंगा।

चौधरी : लेकिन फायदा क्या इन बातों से? जरा मुहब्बत से काम लो न!

[गली की ओर जाने लगते हैं।]

खन्ना : चले चौधरी क़यामत हुसेन?

चौधरी : हाँ भाई, पता नहीं क्यों, कमर में दर्द हो रहा है।

[प्रस्थान]

खन्ना : अरे! मास्टर साहब तो लौटे आ रहे हैं···वह आ गए।

मुंशीजी : चेयरमैन साहब भी संग हैं?

खन्ना : अजी, वह क्या आयेगा, कहीं पिये पड़ा होगा।

[प्रोफेसर सतभंगी का प्रवेश]

प्रोफेसर : घबराओ नहीं, कल होगा इसका फैसला।

खन्ना : चेयरमैन साहब मुकदमे के सिलसिले में कहीं बाहर गये होंगे, भाई।

[प्रोफेसर साहब घर में जाते हैं।]

प्रोफेसर : (तुरन्त भीतर से आवाज आती है) तुम लोग खिड़कियों पर क्यों बैठते हो? पलंग पर बैठो, कुर्सियों पर बैठो···यह क्या तमाशा है!

[अजय प्रोफेसर का हाथ पकड़े बाहर आता है।]

अजय : पापा, वह देखिए, जो खड़े हैं न! वे सब कह रहे थे कि हम लोग मास्टर साहब को पीटेंगे।

नीता : (सहसा बाहर निकलकर) बहादुर की माँ गाली बक रही थीं।

प्रोफेसर : क्यों ? तुम लोग गाली दे रहे थे ? क्यों बहादुर की माँ ! मैं एक-एक को हथकड़ी पहनवाके छोड़ूँगा, हाँ !

ठकुराइन : सुना !···देखा न, मुंशीजी ! सुना, खन्ना बाबू ! यह है पानी में आग।

मुंशीजी : गजब के छोकरे हैं, भइया !

खन्ना : कमाल है।

बहादुर : भुट्टे कहीं के !

[तेजी से मम्मी का प्रवेश]

मम्मी : किन देहातियों के मुंह लगे हो ? चलो, अन्दर चलो।

प्रोफेसर : चलो, आता हूँ।

मम्मी : चलो, सरला बुला रही है। तबीयत ठीक नहीं है उसकी।

[प्रोफेसर, अजय और मम्मी का प्रस्थान]

मुंशीजी : यह सरला कौन ?

खन्ना : मास्टर साहब की साली। बच्चा होने वाला है।

मुंशीजी : ओ हो !···अच्छा चलूँगा, बहू !

[गली में बढ़कर एक ओर मुड़ जाते हैं।]

खन्ना : टिकट बाबू अब तक नहीं आये, एक घंटा रात बीत गई होगी।

ठकुराइन : आज पता नहीं कहाँ देर कर दी, आ जाना चाहिए था अब तक।

खन्ना : आओ, बहादुर ! चलो, हमारे घर चलो।

ठकुराइन : हाँ, ले जाओ इसे।

[खन्ना के संग बहादुर जाता है। गली सूनी हो जाती है, ठकुराइन भीतर चली जाती है। कुछ क्षणों बाद गली से एक मूँगफली बेचनेवाला निकलता है। बाहर से टिकट बाबू आते हैं, और सीधे अपने घर में जाने लगते हैं।]

मूँगफली० : जैरामजी की, टिकट बाबू !

टिकट बाबू : जैराम···जैराम !

[टिकट बाबू का प्रस्थान।]

मूँगफली० : (आवाज़ देने लगता है) ताजी भुनी मूँगफली ! चिनियाँ बादाम, जाड़े का मेवा है। खरी भूँजी मूँगफली है। चार आने पौआ है। बालू की भुनी हैं। ताजी मूँगफली है।

[भीतर से दौड़ता हुआ अजय निकलता है।]

अजय : मूँगफलीवाले ! चलो, इधर आओ !···बड़े बत्तमीज हो, जल्दी क्यों नहीं आते ?

मूँगफली० : लीजिए हुजूर, आ गया, बिगड़िये नहीं। अभी बहुत कम उमर है आपकी। बहुत गुस्सा करने से जुकाम हो जायेगा।

अजय : बात मत करो !

मूँगफली० : (मूँगफली देता हुआ) जल्दी कीजिए, जल्दी···हाँ, पैसे दीजिए पैसे, तूफान आनेवाला है, आँधी और पानी···

[पैसा लेकर चल देता है, उसकी आवाज अभी गली में सुनाई पड़ रही है। अजय अपने घर में जाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लेता है। कुछ क्षणों बाद अपने दरवाजे से टिकट बाबू का प्रवेश।]

टिकट बाबू : (आवेश में) कौन है वह शरीफजादा! जरा बाहर आकर मुझे अपना मुंह तो दिखाए। यह दूध का धुला घर में क्यों बैठा है?

[बन्द दरवाजे की साँकल बजाते हैं।]

टिकट बाबू : तहज़ीब के पिल्ले! घर में से निकलता क्यों नहीं? निकल घर में से! मँगवा हथकड़ी-बेड़ी हमारे लिए!

[दरवाजा खुलता है। प्रोफेसर का प्रवेश।]

प्रोफेसर : (निकलकर) क्यों हद किये डाल रहे हैं आप? आखिर आपकी मंशा क्या है?

टिकट बाबू : मैं तुम्हारे हाथ से हथकड़ी पहनने आया हूँ।

प्रोफेसर : कुछ ध्यान रखकर बातें किया करो। अजय की मौसी आयी हुई है, उसकी तबीयत खराब है। क्या कहेगी वह? हमारी न सही, मेहमान की तो इज्जत करो।

टिकट बाबू : मेरी बात का जवाब दो पहले, बीच में मेहमान मत लाओ। (रुककर) दुनिया के शरीफजादे तुम्हारे ही बीबी-बच्चे हैं? तुम्हारे ही बीबी-बच्चे तुम्हें प्यारे हैं? मेरे नहीं क्या?

प्रोफेसर : भाई यह कौन कह रहा है?

टिकट बाबू : जरा टीमटाम से रह लेते हो, चार-छः रेकाबी-प्लेट्स हैं तुम्हारे पास, इसीलिए तुम बड़े शरीफ़जादे हो गए? (रुककर) मेरे दरवाजे के सामने खुले मैदान में तुम लोग मच्छरदानी लगाकर सोते हो—और हम परदे में रहते हैं, तभी हमगन्दे हैं, तुम शरीफ हो? हम नाख्वाँदा हैं? बत्तमीज़ हैं?

[भीतर से ठकुराइन का प्रवेश]

ठकुराइन : अच्छा-अच्छा···चलो। बहुत हो गया···मास्टर बाबू, जाओ अपने घर में।

प्रोफेसर : तुम जैसे लोगों से बात करना भी गुनाह है।

[प्रोफेसर अन्दर चले जाते हैं।]

टिकट बाबू : रहना हो तो मुहल्ले में कायदे से रहो, वरना रास्ते न बन्द कर दूँ तो ठाकुर छैलबिहारीसिंह नाम नहीं।

ठकुराइन : अच्छा, अब चुप रहो।

[गली में मुंशीजी आते हुए दिखाई देते हैं।]

ठकुराइन : चलो, अब नहीं कुछ बोलेंगे मास्टर साहब।

मुंशीजी : जैराम जी की, टिकट बाबू !

टिकट बाबू : राम-राम, मुंशीजी ! (रुककर) बड़े तहज़ीबदार बनके आये हैं !

मुंशीजी : तहजीबदार ही नहीं, ठाकुर साहब, अप-टू-डेट, शरीफ !

[गली में से खन्ना बाबू और बहादुर का प्रवेश]

खन्ना : बड़ा शोरगुल मचा, टिकट बाबू !···अरे, अन्दर चलकर बैठो, आँधी-पानी आने वाला है। चलो, भीतर बैठें न !

टिकट बाबू : अजी, अब मैं यहीं बाहर ही रहा करूँगा। सोना-खाना सब यहीं करूँगा।

[सब हँस पड़ते हैं।]

मुंशीजी : जी हाँ, तभी तो हम लोग तहजीबदार कहलायेंगे।

खन्ना : तहजीबदार ही नहीं—अपटूडेट, शरीफ !

मुंशीजी : बच्चों से कह दो बहू, तुम लोगों को भी वे पापा और मम्मी कहा करें। क्यों रे, बहादुर ?

[बहादुर भागकर भीतर चला जाता है।]

खन्ना : क्या कमाई करते हो, टिकट बाबू ! अरे, घर में दो-चार कप-प्याले, काँटे-छुरी-चम्मच तो रख दो अब !

टिकट बाबू : सारे मुहल्ले का सत्यानाश कर दिया।

मुंशीजी : मम्मी जो बी० ए० पास हैं।

खन्ना : अजी मुंशीजी, तुम्हें क्या पता ! एम० ए० का पहला साल भी पास किया है।

मुंशीजी : चाहे जो पास हों, मुहल्ले की कुछ लड़कियाँ इनकी देखा-देखी उल्टे पल्ले की साड़ियाँ जरूर पहनने लगीं।

खन्ना : और फिल्मी गाने जो गाने लगीं। मास्टर साहब का रेडियो तो सिलोन रेडियो है जी।

ठकुराइन : अच्छा, चलो अब अपने-अपने घर। आसमान की तरफ तो देखो।

खन्ना : आय हाय···आंधी-पानी ! क्या बज रहे हैं, टिकट बाबू ?

टिकट बाबू : पौने नौ के करीब हो रहे हैं।

[भीतर से प्रोफेसर साहब निकलते हैं।]

प्रोफेसर : आप लोगों से प्रार्थना है कि आप यहाँ शोर न करें, अजय की मौसी की तबीयत अच्छी नहीं है।

[प्रोफेसर साहब अपने घर में जाते हैं।]

खन्ना : मुंशीजी, चलो, चलें ! नहीं अभी मम्मी निकलेंगी !

मुंशीजी : अजी, बहुत देखी है···

[खन्ना के संग गली में प्रस्थान, टिकट बाबू के संग ठकुराइन का अपने घर में जाना। क्षणभर बाद गली में दही-रबड़ी वाले की आवाज़ उठती है। अजय तेजी से अपने दरवाजे से निकलता है।]

अजय : (आवाज़ देता है) दही-रवड़ी वाले ! चलो, इधर आओ !

[नीता भी निकलती है ।]

नीता : मम्मी ! मैं भी लूंगी रवड़ी !

अजय : पापाजी, मैं दही लूंगा ।

नीता : क्यों शोर करते हो ? तुमने तो सुवह दही-वड़ा खरीदा था ।

अजय : तुमने भी तो चाट खायी थी ।

प्रोफेसर : (तेज़ी से निकलकर) मत शोर करो ! शरम नहीं आती तुम लोगों को, तुम्हारी मौसी की तवीयत खराब है और तुम लोग···

नीता : पापा, यही अजय शोर करता है ।

अजय : मैं दही लूंगा, पापाजी !

मम्मी : (प्रवेश कर) हाय ! कितने भुक्कड़ हो गये मेरे वच्चे यहाँ आकर । जयपुर में थे, वाज़ार की चीज़ का नाम तक नहीं लेते थे । कभी जानते भी न थे कि ये खोंचेवाले, फेरीवाले क्या होते हैं ।

प्रोफेसर : यहाँ तो उसकी आवाज़ सुनते ही चीखने लगते हैं, जैसे कभी कुछ खाया-पिया ही नहीं ।

मम्मी : क्या कहूँ मैं ? शाम को तो मैंने इनके लिए गजक और मूँगफली खरीद दी थी ! क्यों अजय ?···नीता···!

[फिर दही-रवड़ीवाले की आवाज़]

अजय : देखिए मम्मी ! वहादुर मुझे मुँह वना-वनाकर चिढ़ा रहा है । मुझे पैसे दो, मम्मी ! मैं दही लूंगा, हाँ ! (पुकार उठता है ।) ओ दही-रवड़ी वाले !

प्रोफेसर : (गुस्से में अजय को एक चपत देकर) नालायक कहीं के ! तुम लोगों को तो वन्द कर दे कहीं, जहाँ हवा-पानी भी न मिले ।

[अजय रोता है ।]

मम्मी : अभी इस जेलखाने में वन्द करने से जी नहीं भरा क्या ? हाय, मेरी क़िस्मत फूट गयी । (अजय को चिपका लेती है ।) रोओ नहीं, बेटे ! तुम्हारी मौसी की तवीयत ठीक होते ही हम लोग यहाँ से मेरठ चले जायेंगे । करें अपना राज्य यह अकेले यहाँ !

प्रोफेसर : चली जाओ न मेरठ !

मम्मी : अच्छा, लड़ो नहीं मुझसे ।

[फिर गली में दही-रवड़ी वाले की आवाज]

प्रोफेसर : (गुस्से से वढ़कर) सुनो जी दही-रवड़ी वाले ! मत आया करो इधर । कोई अकल न तमीज ! रात के नौ वज रहे हैं, इस समय यह यहाँ पों-पों करने चले हैं । (डांटते हुए) चले जाओ यहाँ से अगर अपनी खैरियत चाहो ।

[दही-रवड़ीवाले की आवाज़ गली में दूर चली जाती है ।]

प्रोफेसर : खवरदार···अव कभी जो इधर आया !

अजय : मम्मी, दही-रवड़ी ! (मचलकर रोता है।) दही-रवड़ी !
[आँधी आ जाती है। एक ओर से मूँगफली वाला तेजी से भागता हुआ गली में जाने लगता है।]

मूंगफली० : (आवाज देता हुआ) आँधी···पानी···! आ गई आँधी ! आ गई आँधी ! (प्रस्थान)
[प्रोफ़ेसर साहव का परिवार भीतर भागता है। भीतर से दरवाजा वन्द होता है। आँधी के संग तेज वर्षा। ठकुराइन तेजी से आकर अपने दरवाजे की चारपाइयों को भीतर ले जाती है। कुछ क्षणों वाद अपने दरवाजे से मम्मी निकलती हैं। इधर-उधर देखती हैं और एका-एक दौड़कर ठकुराइन के दरवाजे पर आती हैं।]

मम्मी : ठकुराइन ! ओ जी ठकुराइन ! वहादुर की माँ !
[ठकुराइन का प्रवेश]

ठकुराइन : क्या है, वहू ?

मम्मी : जरा चलकर संभाल लो, अजय की मौसी की तवीयत वहुत खराव हो रही है।

ठकुराइन : हाँ···हाँ···चलो।
[भीतर से टिकट वावू की आवाज आती है।]

ठकुराइन : चलो, मैं आ रही हूँ, अभी आयी।
[मम्मी का प्रस्थान। ठकुराइन भीतर लौटती हैं, फिर वाहर निकलकर जैसे ही वढ़ने को होती है, टिकट वावू का प्रवेश।]

टिकट वावू : कहाँ जा रही हो इस तूफ़ान में ?

ठकुराइन : टोक दिया न ! वड़ी वुरी आदत है तुम्हारी।

टिकट वावू : वह तो है ही, लेकिन इस आफत में जा कहाँ रही हो ?

ठकुराइन : अजय की मौसी की तवीयत वहुत खराव हो गयी है। दर्द से वेहोश हो रही है। जरा देखने जा रही हूं।

टिकट वावू : इसी को गँवार औरत कहते हैं। तभी तो अजय के पापा और मम्मी तुम जैसी औरतों को घास तक नहीं डालते !

ठकुराइन : अजी, चुप रहो तुम ! तुम मर्दों को क्या मतलव इन वातों से। यह हम लोगों का मामला है।

टिकट वावू : है तो मामला तुम लोगों का। पर यह न कहना कि अजय की मम्मी ने तुम्हारे सिर का वाल नोंचा !

ठकुराइन : क्या वकते हो जी ! मम्मी एकदम से खराव ही हैं क्या। याद है, अपनी शकुन्तला वेटी जव वीमार हो गयी थी, तुम तो ड्यूटी पर वाहर गये थे, रात-रात भर मम्मी वैठी रहती थीं शकुन्तला के सिरहाने !

टिकट वावू : तो जाओ तुम भी वैठो न !

ठकुराइन : मम्मी खुद शकुन्तला को लेकर मुरादाबाद अस्पताल में गयी थी। तुम्हें क्या पता किसके भीतर क्या है ! तुम तो वाहर ही वाहर देखते हो न !

[चली जाती हैं, मम्मी के घर में प्रवेश, टिकट वावू चुप खड़े रह जाते हैं। क्षण भर वाद ठकुराइन अपने संग अजय-नीता को लिये आती है और अपने घर में जाने लगती है।]

टिकट वावू : अव यह क्या है ? क्या तूफान है यह ?

ठकुराइन : चुप रहो जी ! (पुकारती है) शकुन्तला, ओ शकुन्तला !

आवाज : (भीतर से) आयी, अम्मा !

ठकुराइन : ले, सम्हाल इन वच्चों को !

[वहादुर का प्रवेश]

ठकुराइन : वहादुर ! ले जा इन्हें अपने संग भीतर ! भूखे हैं, इन्हें खाना खिला, शकुन्तला !

वहादुर : चलो, अजय ! नीता, चलो ! एक संग खाना खायेंगे।

[वहादुर के संग अजय-नीता का प्रस्थान]

टिकट वावू : पागल तो नहीं हो गयीं तुम ?

ठकुराइन : पागल होगे तुम ! जाओ, अन्दर वच्चों को खाना खिलाओ ! मैं अभी आयी। पता है, अजय की मौसी को वच्चा होने वाला है ? (हँसती है, फिर जैसे गा पड़ती है।) 'जनमे हैं कुअँर कन्हैया, अवध में वाजे वधैया।'

[ठकुराइन दौड़ी हुई अजय के घर में भाग जाती है। टिकट वावू खड़े रह जाते हैं। कुछ क्षणों वाद भीतर से वहादुर दौड़ा आता है।]

वहादुर : वावूजी। वावूजी ! अजय और नीता को मैंने सारी दही-रवड़ी दे दी। चलिए, आप भी रोटी खा लीजिए।

टिकट वावू : वे लोग खाना खा रहे हैं ?

वहादुर : जी हाँ, खाना खा रहे हैं।

टिकट वावू : जाओ, तुम भी खा लो उनके संग।

[वहादुर अन्दर भाग जाता है। टिकट वावू फिर अकेले खड़े रह जाते हैं। कुछ देर के उपरान्त हँसती हुई प्रसन्न-मन ठकुराइन निकलती है।]

ठकुराइन : सुना जी, वच्चा पैदा हुआ है अजय की मौसी को !

टिकट वावू : अच्छा···

ठकुराइन : (पुकारती हुई अपने घर में चली जाती है।) शकुन्तला ! ला तो ढोलक कहाँ है···

[अन्दर से ढोलक लिए भागती है और मम्मी के घर में अदृश्य हो जाती है। कुछ क्षणों वाद ढोलक पर यह गीत उभरता है :]

जनमे हैं कुअँर कन्हैया, अवध में वाजे वधैया।

ऊँचे चढ़ि के बगरिन पुकारे
कोई हैं नार छिनैइया, अवध में बाजे बधैया।
दसरथ के चार बेटा हुए हैं
केकर होला बड़ैइया, अवध में बाजे बधैया।
राम से लछमन, भरत शत्रुघन
रामा के होला बड़ैइया, अवध में बाजे बधैया।
[इसी संगीत पर धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

दूसरा दृश्य

[फिर वहीं, उसी स्थिति में पर्दा उठता है। रात के नौ बजे का समय है। चारपाई पर सिर झुकाये ठकुराइन बैठी हुई है—चुप-चिन्तित, जैसे रो रही हो। गली में मुंशीजी आते हैं।]

मुंशीजी : ठकुराइन !···बहादुर की माँ !···ओ बहू ! क्या बात है, बोलती क्यों नहीं ? मम्मी के घर से फिर कुछ हुआ है क्या ?···बोलो, क्या बात है ? मुझे बताओ न !

[ठकुराइन बिना कुछ बोले चुपचाप अन्दर चली जाती है।]

मुंशीजी : अरे ! क्या बात हुई ? (गली की ओर आवाज़ देते हैं।) खन्ना बाबू ! ओ जी खन्ना बाबू !

[चौधरी क़यामत हुसैन निकलते हैं।]

चौधरी : किसे पुकार रहे हैं, मुंशीजी ?

मुंशीजी : कोई है ही नहीं यहाँ !

चौधरी : खन्ना बाबू सो गये होंगे कि···

मुंशीजी : ठकुराइन चुपचाप यहाँ बैठी थीं। जैसे लगा कि रो रही थीं। मैंने बुलाना चाहा, वह घर में चली गई, कुछ बताया नहीं, पता नहीं क्या बात है !

चौधरी : कुछ होगा, मुंशीजी ! घर-गृहस्थी है, पता नहीं क्या-क्या कहाँ-कहाँ होता रहता है।

[आगे बढ़ने लगते हैं।]

मुंशीजी : दुकान जा रहे हो, चौधरी ?

चौधरी : नहीं, ज़रा स्टेशन की ओर जा रहा हूँ। (प्रस्थान)

[कुछ क्षणों बाद सामने से टिकट बाबू और बहादुर का प्रवेश। बहादुर भीतर जाता है।]

मुंशीजी : राम-राम, टिकट बाबू !

टिकट बाबू : राम-राम, मुंशीजी।

मुंशीजी : ड्यूटी से लौट आये क्या ? क्या बात है, बहादुर ?
टिकट बाबू : छुट्टी लेकर आ रहा हूँ, मुंशीजी ! बहादुर मुझे बुलाने गया था।
मुंशीजी : बात क्या है ? शुभ तो है न ?
टिकट बाबू : शुभ तो नहीं है, मुंशीजी ! मम्मी की छोटी बहन आयी थी न, अजय की मौसी !
मुंशीजी : जी हां, जिन्हें अभी परसों रात को बच्चा पैदा हुआ है ?
टिकट बाबू : जी हाँ, आज सुबह उसका स्वर्गवास हो गया।
मुंशीजी : (दुख से) च···च···च···च राम राम···राम ! ओ हो, बड़ा बुरा हुआ।

[दरवाजे पर आ ठकुराइन निःशब्द रो रही हैं।]

टिकट बाबू : बहुत कमज़ोर था बच्चा। अपने पूरे दिन के पहले ही हो गया था। शायद आठ ही महीने में !
मुंशीजी : सब ईश्वर की माया है टिकट बाबू, और कुछ नहीं। जिसे चाहे जिलाये, जिसे चाहे मारे ! (रुककर) लेकिन यह बहादुर की माँ इस तरह क्यों रो रही हैं ?
टिकट बाबू : कुछ न पूछिए, मुंशीजी ! यहां तो गजब की बात पैदा कर दी लोगों ने !
मुंशीजी : (आश्चर्य से) अच्छा ! अरे !!
टिकट बाबू : मम्मी का कहना है कि ठकुराइन ने बच्चे पर जादू कर दिया, तभी वह चटपट मर गया। और मास्टर साहब—प्रोफेसर सतसंगी का कहना है कि ठकुराइन ने गन्दे हाथों से बच्चे को छुआ था, उसे सेप्टिक या 'टिटनेस' हो गया।
मुंशीजी : आहा···आ···! गजब हो गया यह तो !
टिकट बाबू : इस गँवार औरत को यही दण्ड चाहिए ! मान न मान मैं तेरा मेहमान ! ठीक कहा है लोमड़ी चली सगुन दिखावै, आपन सर कुत्तन से नोच-वावै। (रुककर) खड़ी रोती क्या हो ? जाओ, और प्रीति दिखा आओ न ! मम्मी···मम्मी···मम्मी बड़ी अच्छी हैं। ढोलक लेकर और मंगल-सोहर गा आओ न !
मुंशीजी : बहू का क्या दोष इसमें, टिकट बाबू !
टिकट बाबू : अब पता लगा कि नहीं वे लोग क्या हैं और तुम क्या हो ?
ठकुराइन : (रुंधे कण्ठ से) आज मैं जादू-टोना वाली हो गयी !
टिकट बाबू : अरे ! प्रीति का कुछ तो दण्ड भोगोगी न !
मुंशीजी : टिकट बाबू ! बड़े अजीब हैं ये लोग ! बड़ा बुरा हुआ।
टिकट बाबू : इस गँवार औरत की वजह से आज मेरी गर्दन कट गयी, मुंशीजी ! बारहां मना किया इसे, लेकिन उस आँधी-तूफान में भी यह न रुकी। सारी रात दौड़ती-भागती रही। और अब बैठकर रो रही है। (चिढ़कर) जैसे तेरे रोने का असर उन पर पड़ेगा ही। अरे, वे आदमी नहीं, नासूर हैं नासूर !

[अपने दरवाजे से प्रोफेसर का प्रवेश]

प्रोफेसर : क्या कहा ? जरा ज़बान सम्हालकर बोलो ! कोई तमीज़ है कि नहीं, हमारे ऊपर इतनी बड़ी आफत पड़ी, और तुम मुझे खरी-खोटी सुनाने खड़े हो !

टिकट बाबू : जी हाँ, मास्टर साहब, आप लोगों ने तो हम पर फूल बरसा दिए। हम सीधे हैं, तभी तुम्हारी नज़रों में हम गन्दे और बत्तमीज़ हैं। जादू-टोना डालते हैं हम। लेकिन एक बार फिर से सोच लो मास्टर साहब, अपनी ज़िन्दगी के बारे में, जो तुम जी रहे हो, वह तुम्हारी ज़िन्दगी नहीं है, नकल है, नाटक है, दिखावा है।

[प्रोफेसर साहब घर में लौट चुके हैं।]

मुंशीजी : छोड़ो, ठाकुर साहब ! सिर मत धुनो भाई ! जब तीर ही कमान से निकल गया तो···छोड़ो ! चुप रहो, ठकुराइन···भूल जाओ, भूल ! रोने से पसीजने वाले ये लोग नहीं !

[उसी क्षण मूँगफलीवाला गली में से आवाज़ देता आता है।]

मूँगफली० : ताजी भुनी मूँगफली ! चिनिया बदाम। खरी-भुनी मूँगफली ! मौसम का मेवा ! बालू की भुनी !

अजय : (तेजी से निकलकर) चलो इधर मूँगफलीवाले !

मूँगफली० : लीजिए···लीजिए, सरकार !

[अजय मूँगफली लेने लगता है, तभी धीरे से बहादुर का प्रवेश]

बहादुर : मुझे भी देना मूँगफलीवाले ! (रुककर) अबे बत्तमीज, जल्दी क्यों नहीं देता ?

टिकट बाबू : इधर तो आ, बहादुर ! क्यों कहा बत्तमीज तूने ?

[एक चाँटे की मार, ठकुराइन दौड़कर पकड़ लेती है।]

ठकुराइन : खबरदार जो अब मेरे बेटे को मारा !

टिकट बाबू : अजय की नकल करेगा तू ? खाल उधेड़कर रख दूँगा !

मुंशीजी : राम···राम ! छोड़िए भी, टिकट बाबू !

टिकट बाबू : कहां मिला तुझे यह पैसा ? किसने दिया ? सच···सच बता !

ठकुराइन : मैंने दिया···मैंने दिया।

बहादुर : यह इकन्नी मुझे रास्ते में पड़ी मिली !

[अजय और मूँगफलीवाले का चुपके से प्रस्थान]

टिकट बाबू : पड़ी मिली है ! यह झूठ !

[मारने लगते हैं। मां और मुंशीजी बचाते हैं।]

बहादुर : आपकी पैंट से चुराई है।

टिकट बाबू : यह झूठ और चोरी !

[मारने दौड़ते हैं, माँ बहादुर को घर में खींच ले जाती हैं।]

टिकट बाबू : मेरे बच्चे कितने भी गन्दे, बत्तमीज लड़ाकू हों, मुझे मंजूर है,

ये चोरी करें, झूठ बोलें, मैं इन्हें जिन्दा नहीं रहने दूँगा। मारके मर जाऊंगा इन्हीं के संग। (रुककर) मुंशीजी! मुझे पता है झूठ-चोरी के कीड़े कहाँ मिले हैं मेरे बच्चे को!

मुंशीजी : ईश्वर बचाए इन लोगों से!

टिकट बाबू : अब मैं यहाँ एक क्षण नहीं रह सकता, मुंशीजी! छोड़ दे रहा हूँ यह जगह!

मुंशीजी : क्या बच्चों की तरह बात करते हो, ठाकुर साहब! ऐसे कोई छोड़कर भागता है! हिम्मत से काम लो।

टिकट बाबू : मेरे पास इतनी हिम्मत नहीं! (रुककर) अच्छा नमस्ते, मुंशीजी!

[अन्दर प्रस्थान]

मुंशीजी : लेकिन अभी ऐसा न करना, ठाकुर साहब! मैं राय दूँगा तुम्हें। सुबह आऊँगा, हाँ!

[गली में प्रस्थान। कुछ क्षणों के बाद भीतर से ठकुराइन निकलती हैं।]

ठकुराइन : (मम्मी के बन्द दरवाजे पर दस्तक) अजय की मम्मी!···खोलो, बहू!

मम्मी : कौन? (दरवाजा खोलकर बाहर आती हैं।) ठकुराइन! क्या है?··· बोलो! बोलो न! क्या है?···बोलो, ठकुराइन!

ठकुराइन : हम लोग जा रहे हैं यहाँ से!

मम्मी : नहीं···नहीं···ऐसा नहीं, ठकुराइन जीजी!

ठकुराइन : हमारी भूल-चूक माफ करना, बहू।

[मम्मी चुप है, आँचल से आँखें पोंछती हैं।]

ठकुराइन : हम लोग रेलवे क्वार्टर में जा रहे हैं, बहू! आना, भेंट होगी। (रो पड़ती है।) जरूर आना।

[दोनों खड़ी निःशब्द रो रही हैं, भीतर से टिकट बाबू का प्रवेश]

टिकट बाबू : अभी पेट नहीं भरा तुम्हारा?···चलो इधर!

[ठकुराइन के संग खिंची हुई मम्मी भी चली आती हैं, तभी अपने भीतर से प्रोफेसर का प्रवेश।]

प्रोफेसर : वहाँ क्या कर रही हो? चलो इधर!

[दोनों औरतें चुप खड़ी एक-दूसरे को देख रही हैं। प्रोफेसर और टिकट बाबू अपने-अपने दरवाजे पर खड़े हैं। तेजी से पर्दा गिरता है।]

९

समस्या सुलझ गई

देवराज दिनेश

पात्र

नारायणदास : पुराने रईस, अवस्था साठ वर्ष
धनदेवी : नारायणदास की पत्नी, अवस्था बावन वर्ष
कामना : नारायणदास की पुत्री, अवस्था सोलह वर्ष
शंकर : नारायणदास का पुत्र, अवस्था पचीस वर्ष
रेखा : रायसाहब की लड़की, अवस्था बीस वर्ष
कर्मचन्द : नारायणदास के पड़ोसी, अवस्था चौवन वर्ष

पहला दृश्य

एक पुराने ढंग की बनी हुई हवेली का मामूली ढंग से सजा हुआ कमरा। कमरे में एक दरवाजा बाहर से आने का है और दूसरा रसोईघर की ओर चला जाता है। दीवार से सटा हुआ पलंग बिछा है। पलंग के साथ ही बड़ी-सी मेज लगी हुई है। एक कोने में एक पुराना-सा काउच पड़ा है। एक-दो कुर्सियाँ भी रखी हैं। दीवार पर भगवान राम और कृष्ण के चित्र लगे हैं। बीच में एक बड़ा-सा चित्र स्वर्गीय चन्दनदास का टंगा हुआ है। मेज पर आधा बुना हुआ स्वेटर रखा है। नारायणदास बाहर की ओर से खांसते हुए आते हैं। छड़ी को कोने में रख देते हैं।

नारायण : (खांसते हुए ऊँची आवाज में) धनदेवी, धनदेवी ! अरी, कहाँ हो ? (कुर्सी पर बैठ जाते हैं।)

धनदेवी : (नेपथ्य से) आयी, जी ! आकर रसोई में सब्जी देख रही थी। (बैठकर बूटों के तस्मे खोलती है।)

नारायण : और कामना क्या कर रही है ?

धनदेवी : पढ़ रही है अपने कमरे में। वह तो हठ पकड़े हुए थी कि मैं ही खाना बनाऊंगी। मेरे बहुत समझाने-बुझाने पर कहीं जाकर मानी। यही दस-पन्द्रह दिन कुछ पढ़ ले तो ठीक है। परीक्षा सिर पर आ चुकी है। (मेज से स्वेटर उठाकर बुनने लगती है।)

नारायण : हाँ, वह तो है ही। (सांस भरकर) भाग्य भी कभी-कभी इंसान से ऐसा रूठता है कि बस कुछ न पूछो। (फीकी हंसी) कभी वह भी जमाना था कि घर में एक-दो नौकर हर समय ही रहते थे। वाह रे भाग्य के फेर !

धनदेवी : (मेज पर से स्वेटर उठाकर बुनने लगती है।) उन पुरानी बातों को याद करने से क्या लाभ। किस चीज की कमी है आपको। भगवान की दया से घर का गुजर अच्छा हो रहा है। लो, कामना भी आ गई।

[तभी भीतर की ओर से कामना आती है।]

कामना : चाय बनाकर लाऊं, पिताजी ?

नारायण : नहीं, कोई जरूरत नहीं। रायसाहिब के यहाँ से पीकर ही आ रहा हूं। बड़े भले आदमी हैं, पुरानी दोस्ती है, जब भी मिलें, आदर-सत्कार करते हैं। नहीं तो अब हमारी और उनकी क्या समता ?

कामना : समता की इसमें कौन-सी बात है, पिताजी ! आप तो व्यर्थ ही ठण्डी सांसें छोड़ते रहते हैं। आप भी जब चाहें चाय पर उन्हें निमन्त्रित कर सकते हैं।

नारायण : (हँसते हैं) तू तो पगली है। वह भला हमारे घर का अन्न-जल कैसे छू सकते हैं !

कामना : क्यों, क्या हम अछूत हैं ?

नारायण : (हँसते हैं) हाँ, अछूत ही समझो। पगली लड़की ! अरे बेटा ! उनकी शंकर पर नजर है। अब तू ही सोच, वह हमारे घर का कैसे खा-पी सकते हैं। (हँसकर) वह अपनी लड़की रेखा को तेरी भाभी बनाना चाहते हैं, अब समझी !

कामना : हूँ, तो क्या रेखा भैया को पसन्द है ?

नारायण : उसे पसन्द हो या न हो, हमें जो पसन्द है। क्यों धनदेवी ? रायसाहिब हरगोविन्द से नातेदारी कोई छोटी बात थोड़े ही है।

कामना : तो अब बात समझ में आयी कि वह क्यों आपका इतना आदर-सत्कार करते हैं। हर दूसरे-तीसरे दिन यों ही चाय पिलानेवाले आदमी नहीं हैं वह।

नारायण : (गुस्से में) कामना !

कामना : भूल हुई, पिताजी ! क्षमा चाहती हूँ। (जाती है।)

[नारायणदास कमरे में घूमने लगते हैं।]

नारायण : हुँ, ये आजकल के लड़कियाँ-लड़के न जाने अपने आपको क्या समझते हैं। हर एक बात का मज़ाक उड़ाते हैं। (क्षणिक अवकाश) क्या शंकर अभी तक दफ्तर से नहीं आया ?

धनदेवी : आया था। आपके आने से कुछ ही देर पहले चाय पीकर कहीं चला गया है।

नारायण : कहीं क्या गया है, अपने दोस्त मोहन के यहाँ गया होगा। (तेज होकर) हर शाम यह उसके यहाँ जाता है और मुझे यह बात रत्ती भर भी अच्छी नहीं लगती।

धनदेवी : इसमें अच्छी न लगने की कौन-सी बात है। आप भी तो अपने दोस्तों के यहाँ जाते हैं।

नारायण : ओहो ! न जाने तेरी अक्ल को क्या हो गया है, धनदेवी ! सब लोगों में शंकर और मोहन की चर्चा है।

धनदेवी : चर्चा का प्रश्न ही नहीं उठता। मोहन में क्या बुराई है ? इतना भला है जिसकी कोई सीमा नहीं। आप भी तो उसके प्रशंसकों में एक रहे हैं। याद है आप ही ने एक दिन कामना की सगाई की बात उससे सोची थी। पर यह देखकर कि वह गरीब है आपके दिमाग से यह बात हट गई। मैं पूछती हूँ कौन अमीर लेगा आपकी लड़की को ? आपके पास है क्या दान-दहेज में देने को ? सुन्दर लड़का है, नौकरी करता है। और न जाने आपको क्या चाहिए।

नारायण : (झल्लाकर) जरा-सी बात थी, इतना भाषण दे डाला। (खांसी आती है।)

भाई ! अब मेरी हालत खराब है पर सदा तो ऐसी नहीं थी। मुझे अपने सम्मान को भी देखना है या नहीं। लोग तो यह नहीं जानते कि मैं भीतर से खाली हूं। अभी दो-तीन साल बाद कामना की शादी के बारे में सोचूंगा। तब तक भगवान हमारी भी सुन लेंगे। (कहते-कहते पलंग पर बैठ जाते हैं।)

धनदेवी : हुं ! तो जब लड़की बूढ़ी हो जायेगी, तब सोचेंगे ?

नारायण : तेरा तो दिमाग चल गया है, धनदेवी ! बीस-बाईस साल की लड़की बूढ़ी हो जाती है। जमाना ही ऐसा आ गया है। सबके घरों में बीस-बीस साल से बड़ी लड़कियाँ बैठी हैं। अरी, सच बात तो यह है कि अच्छे लड़के मिलते ही कहाँ हैं बिना उचित दहेज दिए।

धनदेवी : यह सब कुछ पहले सोचा होता कि मेरे घर बच्चे हैं, मुझे उनको भी कुछ बनाना है। बाप-दादा की सारी सम्पत्ति सट्टे में नष्ट कर दी। अब लगे हैं बड़प्पन की हांकने। न नौ मन तेल होगा, न राधा नाचेगी। आप अपनी पहुँच से बहुत ऊंचे सपने देख रहे हैं। मैं कहती हूं मोहन के लिए बात पक्की कर लें। साल डेढ़-साल बाद शादी कर देंगे।

नारायण : (हंसते हैं) तू तो भोली है। सेठ चन्दनदास की पोती एक भिखारी के गले बांध दूं, यह कैसे हो सकता है ! सारा डेढ़ सौ रुपये महीने उसे मिलता है। तिस पर उम्र भर के लिए जवान विधवा बहन उसके गले बंधी हुई है।

धनदेवी : भाग्य खोटे उस बेचारी के। कितनी सुन्दर और सुशील लड़की है ! भगवान ने न जाने उसके साथ कौन-सा बैर कमाया है। अभी उम्र ही क्या है। बीस बरस भी पूरे नहीं हुए।

नारायण : यही तो मैं कहता हूँ। जिन्दगी भर मोहन को उसे पालना पड़ेगा।

धनदेवी : अजी, नहीं। वह पढ़ रही है। एक-दो साल में वह पढ़-लिखकर अध्यापिका बन जायेगी कहीं न कहीं। अपने लिए तो उसे रुपये मिल ही जायेंगे, कुछ देर शंकर जाकर पढ़ा आता है।

नारायण : (व्यंग्य से) हुं, तो यह बात है, यूं कहो। शंकर वहां पढ़ाने के बहाने जाता है।

धनदेवी : (तेज होकर) भला बहाने की इसमें क्या बात है। आप तो कई बार जानते-बूझते भी अनजान बन जाते हैं। शंकर और मोहन तो बचपन के दोस्त हैं। उनकी दोस्ती तो मशहूर है शहर भर में।

नारायण : (गुस्से में) अरी, मेरा मुंह न खुलवा। शंकर जाता है वहां कमला के लिए। मैंने सुना है, शंकर और कमला एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और [illegible] यह जानते हैं। सब जगह इस बात की चर्चा है।

धनदेवी : लोगों को तो इधर-उधर की बातें करने में मजा आता है।

नारायण : कोई बात बिना किसी कारण के नहीं उठती। [illegible]

क्यों नहीं पढ़ाता उसे ?

धनदेवी : आप अच्छा-भला जानते हैं कि वह मैट्रिक से आगे नहीं पढ़ा हुआ, पिता की मौत के साथ ही उसे नौकरी करनी पड़ी थी।

नारायण : तो कमला कौन-सी बी० ए० में पढ़ रही होगी !

धनदेवी : जी हाँ। बी० ए० का ही इम्तहान दे रही है। बी० ए० के बाद बी० टी० करके कहीं अच्छे वेतन पर पढ़ाने लग जायेगी।

नारायण : तो अभी क्यों नहीं साथ-साथ पढ़ाती ?

धनदेवी : अभी मोहन नहीं पढ़ाने देता। वह कहता है, पहले पढ़ लो।

नारायण : तू तो ऐसे कह रही है जैसे मोहन सब कुछ तेरी ही सलाह से करता है।

धनदेवी : अब आप से कोई कैसे पार पाए ! (ऊंची आवाज में) कामना, ओ कामना !

कामना : (नेपथ्य से) आयी, माँ !

धनदेवी : जरा चौके में जाकर सब्जी देखना, बेटी। कहीं जल ही न जाय। आग कुछ तेज है।

कामना : अच्छा, माँ।

[तभी शंकर आता है।]

शंकर : माँ, रोटी बनने में कितनी देर है ?

धनदेवी : अधिक से अधिक बीस-पचीस मिनट।

नारायण : कहाँ गया था, शंकर ?

शंकर : मोहन के घर गया था, पिताजी ! पाँच-छह दिन से मोहन की तबीयत कुछ ठीक नहीं चल रही। डाक्टर से दवा लाकर कमला को देनी थी।

धनदेवी : तूने हमें क्यों नहीं बताया ? मैं जाकर देख ही आती उसे। अच्छा, अब कल जाऊंगी।

शंकर : वहाँ क्या करोगी जाकर, माँ। तुम वहाँ जाओगी, कमला तुम्हारे स्वागत में एकाध रुपए का सामान लायेगी, जो मैं समझता हूँ, उनकी हिम्मत के बाहर की बात है। आजकल उनका काफी पैसा खर्च हो रहा है।

धनदेवी : तो तू आज कमला को बिना पढ़ाए ही लौट आया दीखता है।

शंकर : वह बीमार भाई के पास बैठे कि पढ़े।

नारायण : तू कुछ देर बीमार के पास बैठकर उसकी टहल-सेवा करता। इतनी जल्दी लौट आने की क्या जरूरत थी ?

शंकर : बीमार को आराम की जरूरत होती है, बातों की नहीं। फिर मुझे अभी बैठकर एक लेख लिखना है। सुबह ही प्रेस जाएगा। साथ ही कुछ देर कामना को पढ़ाना है। अच्छा माँ ! मैं अपने कमरे में जा रहा हूँ, रोटी बने तो आवाज़ दे लेना या वहीं भेज देना मेरे कमरे में। (जाने लगता है।)

नारायण : ठहरो ! मुझे तुमसे कुछ आवश्यक बातें करनी हैं। तुम जाकर अपना काम करो, धनदेवी और कामना को पढ़ने दो।

धनदेवी : इस समय इसे लिखने दो। फिर कभी कल-परसों में इससे बातें कर लेना।

नारायण : (कड़ककर) तुम जाओ न! घंटे-आध घंटे बाद लेख लिख लेगा तो क्या हो जायेगा?

शंकर : हाँ, माँ। तुम जाओ। लेख तो मैं सुबह कुछ पहले जगकर भी लिख सकता हूँ। (धनदेवी जाती है।)

नारायण : रायसाहब हरगोविन्द को जानते हो न! (कहते हुए कमरे में घूमने लगते हैं।)

शंकर : जी, अच्छी तरह से।

नारायण : और उनकी लड़की रेखा को भी देखा है?

शंकर : कह नहीं सकता, शायद देखा हो।

नारायण : ठीक है, न भी देखा हो तो कोई अन्तर नहीं पड़ता। रायसाहब की शहर भर में बहुत मान-प्रतिष्ठा है। बहुत बड़े आदमी हैं। साथ ही धनी-मानी भी और मेरे पुराने मित्र हैं।

शंकर : यह तो जानता हूँ। आपके मुख से बहुत बार उनकी प्रशंसा भी सुन चुका हूँ और यह भी पता है कि पिछले पाँच वर्षों में उन्होंने ब्लैक में हज़ारों रुपया कमाया है।

नारायण : हो सकता है। अवसर मिलने पर ब्लैक कौन नहीं करता। घर आता हुआ रुपया किसे बुरा लगता है। जिसके पास रुपया है उसका मान-सम्मान है, बाकी सब भूठ है। धन के बलबूते पर आदमी क्या कुछ नहीं कर सकता?

शंकर : आप कहना क्या चाहते हैं?

नारायण : बहुत संक्षेप में मैं यह कहना चाहता हूँ कि उनकी लड़की रेखा से मैं तेरी शादी की बात पक्की कर आया हूं। उनकी हार्दिक इच्छा थी। मेरे मित्र हैं। मैं नाहीं नहीं कर सका।

शंकर : पर मेरी इच्छा नहीं है।

नारायण : संतान की इच्छा माँ-बाप की इच्छा के आगे कोई मूल्य नहीं रखती। मैं हाँ कर आया हूँ, अब ना नहीं कर सकता।

शंकर : समझ में नहीं आता, आप क्यों अपने घर की व्यवस्था नष्ट करना चाहते हैं? अपनी छोटी-सी सुखद गृहस्थी में जान-बूझकर सुलगती हुई चिनगारी लाने को क्यों उतावले हो उठे हैं? पर मैं नहीं चाहता कि मेरा यह छोटा-सा परिवार किसी भी तरह नष्ट हो। विषैली हवा आकर इसे दूषित करे।

नारायण : तुम्हारा मतलब है कि रेखा विषैली हवा है!

शंकर : इस निर्णय पर पहुँचने से पहले आप यह भी सोचें कि [illegible] बड़े परिवार की लड़की यहाँ [illegible] सकेगी। [illegible]

पूरे करने को क्या है ?

नारायण : (गुस्से से) शंकर, तू मेरे मुंह लग रहा है।

शंकर : सब मिलाकर मैं दो अढ़ाई सौ कमाता हूं। जैसे-तैसे परिवार का खर्च पूरा पड़ता है। आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि रेखा के पालतू कुत्तों पर हफ्ते में इससे अधिक रुपये खर्च होते होंगे। वह बिना कार के कहीं जा नहीं सकती। उसके आने पर मेरी माँ घर की एक दासी बनकर रह जायेगी। मेरी बहन का उज्ज्वल भविष्य अन्धकारमय हो जायेगा। और आप...(व्यंग्य से) आपके लिए क्या कहूँ—हाँ, अपने लिए कह सकता हूँ। मैं उसकी दृष्टि में एक मोल लिए हुए दास से अधिक कुछ नहीं हूँगा।

नारायण : मेरी भी सुनेगा या अपनी ही हाँकता जाएगा। मैंने रायसाहब से सब बातें खोलकर कर ली हैं। उन्हें अपनी स्थिति से भली-भाँति परिचित करा दिया है। पर उन्हें इन बातों की रत्ती भर भी चिन्ता नहीं है। बस तेरी हाँ की देरी है। एक हजार रुपये महीना पर वह तुझे अपनी फर्म में रख लेंगे और दान-दहेज भी हजारों का आएगा सो अलग। उसी में से कुछ देकर कामना का विवाह कर लेंगे।

शंकर : (व्यंग्य से) समझा ! तो सीधी तरह से यूँ कहें कि आप रुपये से मेरा विवाह करना चाहते हैं। रायसाहब के रुपये पर आपकी दृष्टि है। उस रुपये से आप अपने परिवार का भविष्य बनाने की सोच रहे हैं। (रुककर) एक बात पूछूं ?

नारायण : खुशी से।

शंकर : अपनी लड़की के विवाह के लिए रायसाहब ने अपने स्तर का कोई आदमी क्यों नहीं चुना ? वह अपने स्तर से नीचे क्यों आना चाहते हैं ? और वह भी मेरे साथ जबकि वह जानते हैं कि मैंने उनके विरुद्ध कई लेख लिखे हैं।

नारायण : फिर वही बात ! (नरम होकर) बेटा, वह तुम्हारी योग्यता के कायल हैं। साथ ही मेरी पुरानी दोस्ती का उन्हें ध्यान है। 'क्षमा बड़ेन को चाहिए छोटेन को उत्पात' इस उक्ति के वह समर्थक हैं।

शंकर : (हँसता है।) बहुत खूब ! वैसे आपकी और उनकी मित्रता का जहाँ तक प्रश्न है, मैं कुछ अधिक नहीं जानता। पर मेरी योग्यता पर कायल होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वह जिन्दगी के हर मोड़ पर व्यापारी हैं। बिना लाभ देख एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते।

नारायण : क्या बे सिर-पैर की बातें कर रहा है ?

शंकर : मुझसे रेखा की शादी का विचार वास्तव में ही अचम्भे की बात है। मैं ही नहीं, जो भी सुनेगा हैरान होगा। रही रेखा के दहेज से कामना की शादी की बात। पहले तो रेखा अपने दहेज में से देने ही क्यों देगी ?

यदि नाहीं नहीं करेगी तो हम उसकी दृष्टि से गिर जायेंगे । वैसे कामना की आपको चिन्ता नहीं करनी चाहिए । वह मेरी चिन्ता का विषय है । अभी दो-तीन साल तक आप उसकी शादी करना चाहते हैं तब तक वह बी० ए० कर लेगी । कोई न कोई मध्यम श्रेणी का लड़का मिल ही जायेगा । अपने जेब-खर्च से पच्चीस रुपया महीना भी उसके नाम बैंक में जोड़ता जा रहा हूँ । इससे उसका सामान बन जाएगा ।

नारायण : यह सब दूर की बातें हैं । मैं रायसाहब से नाता जोड़ना चाहता हूँ । मैं अपनी खोयी हुई मान-प्रतिष्ठा बनाना चाहता हूँ । समझे !

शंकर : और मेरी मान-प्रतिष्ठा मिट्टी में मिला देना चाहते हैं ?

नारायण : खैर, जो कुछ भी हो । मैंने तुमसे पूछकर भूल की । मुझे तुमसे पूछना ही नहीं चाहिए था । मां-बाप जो करते हैं बच्चों के भले के लिए ही करते हैं । (कमरे में टंगे अपने पिता के चित्र को देखकर) हमारे पिता ने भी हमसे नहीं पूछा था । उनकी आज्ञा सिर-माथे पर रखकर हम शादी कर लाये थे । जाओ, जाकर आराम करो ।

शंकर : तब और अब में बहुत अन्तर है, पिताजी ! तब पत्नी का रूप एक बच्चा जनने वाली मशीन का था, घर की दासी से अधिक कुछ नहीं था । आज का युग पत्नी को सुख-दुःख का साझीदार बनाकर चल रहा है ।

नारायण : तुम्हारे कहने का यह अर्थ हुआ कि तुम्हारी माँ इस घर में एक दासी के रूप में आयी थी !

शंकर : जी ।

नारायण : (चीखकर) शंकर !

शंकर : (धीरे से) आपने मुझे बोलने पर बाध्य किया है, पिताजी ! मेरी विद्रोही आत्मा वर्षों से इस दुर्व्यवहार को देखती चली आ रही थी । दादी आपको माँ के खिलाफ झूठ-मूठ भरकर माँ को आपसे पिटवाती । और आप अंधमातृभक्त जिस नारी को आज गर्व से अर्धांगिनी कह रहे हैं, कभी बिना सोचे-विचारे पशु समझकर बुरी तरह पीटते थे । मैं ही जानता हूँ कि मेरी आत्मा तब कितनी दुखी हो उठती थी ।

नारायण : होश में तो हो, शंकर !

शंकर : हाँ, मुझे आज यह कहते हुए तनिक भी लज्जा नहीं है, मैं मन्दिर में जाकर भगवान से दादी की मृत्यु की कामना किया करता था । माँ के साथ एकान्त में बैठकर रोया करता था । दो नौकरों के होते हुए भी माँ दिन भर काम करती । खाने के वक्त उसे बासी और बची-खुची रोटी मिलती, वह भी भरपेट नहीं । क्या आपका कर्तव्य नहीं था कि आप अपनी अर्धांगिनी से पूछें कि तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं ? (व्यंग्य से) पर उस समय तक पत्नी को एक दासी से अधिक समझता ही कौन था !

नारायण : (गुस्से से) शंकर ! मैं जितना चुप हूँ, तू उतना ही अधिक बोले जा रहा है ।

तू इस भ्रम में न रहना कि मैं तुझ पर आश्रित हूँ। बुड्ढा हूं तो क्या है, अब भी तेरे जैसे जवानों से अधिक कमा सकता हूँ। मुझे अपनी बात का प्रतिवाद सुनने की आदत नहीं है। बोलो, तुम रेखा से शादी करना चाहते हो कि नहीं?

शंकर : इसका तात्पर्य यह हुआ कि मुझे अपने हृदय के भाव प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं है। मैं एक पशु हूँ जिसकी अपनी कोई विचारधारा नहीं है।

नारायण : यह तो मैंने नहीं कहा।

शंकर : कहा तो नहीं, लेकिन समझ तो यही रहे हैं।

धनदेवी : (आते हुए) अभी आप शंकर को कुछ दिन सोचने दीजिये, रायसाहब से कहिये कि हम पन्द्रह-बीस दिन बाद उत्तर देंगे।

नारायण : नहीं, मुझे उन्हें कल ही बताना होगा। नव्वे प्रतिशत तो मैं बात पक्की कर आया हूँ, आप लोगों से पूछना भर ही था। पर मुझे शंकर से इस तरह के उत्तर की आशा नहीं थी।

धनदेवी : ओहो! पर उसने अभी नाहीं तो नहीं की। आपके सामने अपने सुझाव ही रखे हैं। आप उनसे कहिये कि हम कुछ दिनों में अपना सही मत बतायेंगे।

नारायण : मैं जो कहता हूँ, उनके पास समय नहीं है। वह रेखा की शादी जल्दी ही करना चाहते हैं।

धनदेवी : शादी करते-करते भी एक वर्ष लग ही जायेगा।

नारायण : नहीं, उनका विचार आगामी चार-पाँच महीनों के भीतर ही भीतर है।

धनदेवी : तो क्या आप अपने घर कोई तैयारी नहीं करेंगे? समझ में नहीं आता कि जिस लड़की को बीस साल तक लाड़-चाव से घर में रखा, उसे एक साल तक और क्यों नहीं रख सकते?

नारायण : तुम तो पागल हो गई हो। हर बात पर बहस करती हो। उनके पास पैसा है, लड़की जवान है। जब चाहें तब शादी कर दें।

शंकर : तो क्या आज से दो साल पहले उनकी लड़की जवान नहीं थी, या उनके पास पैसा नहीं था? तब उन्होंने उसकी शादी क्यों नहीं की? अवश्य उनकी शीघ्रता की भावना में कोई रहस्य है।

नारायण : (गुस्से में) शंकर! तुम मेरा मुँह खुलवाना ही चाहते हो तो लो सुनो। मैं स्वयं ही चाहता हूँ कि तुम्हारी शादी शीघ्र ही हो जाये।

शंकर : क्यों, कोई कारण?

नारायण : कारण यही कि तुम पतन के मार्ग पर जा रहे हो।

शंकर : पिताजी!

नारायण : क्यों, स्पष्ट कह दिया तो लग गई न तन-बदन में आग!

शंकर : (गम्भीर होकर) स्पष्ट कहाँ कहा है आपने! बताइये न कि पतन का

मार्ग कौन-सा है जिस पर मैं जा रहा हूँ ?

नारायण : तुम मोहन के घर पढ़ाने के बहाने जाकर उसकी बहन कमला के प्रेम में फँस जा रहे हो ।

शंकर : प्रेम पतन का मार्ग नहीं है ।

नारायण : (अपनी ही धुन में) तुम उससे विवाह करना चाहते हो ।

शंकर : (व्यंग्य से) तो क्या विवाह पतन का मार्ग है ! यह मुझे आज ही ज्ञात हुआ ।

नारायण : जानते हो वह बाल-विधवा है । शायद यह बात तुम्हें मोहन ने न बताई हो ।

शंकर : जानता हूँ । पर यह उसका दोष नहीं है । यह ईश्वरीय अभिशाप है । मनुष्य की शक्ति के परे की बात है ।

नारायण : ओह ! तो तुम जान-बूझकर मक्खी निगलना चाहते हो । पर मैं ऐसा नहीं होने दूँगा । मेरा एक समाज है, जहाँ मेरा सम्मान है । मुझे भविष्य में अपनी लड़की की शादी भी करनी है । लोग कहेंगे—क्या लाला नारायण-दास के लड़के को कोई कुँआरी लड़की नहीं मिलती थी ? तब मैं क्या उत्तर दूँगा ?

शंकर : लोग यह भी तो कहेंगे कि आपने अपनी पहुँच से बहुत ऊपर जाकर राय-साहब की लड़की से शादी की । क्या उस लड़की में कोई दोष था जो रायसाहब ने निर्धन शंकर से अपनी लड़की ब्याह दी ? तब आप क्या उत्तर देंगे ? वैसे कमला से मेरी शादी होने पर किसी को कोई आश्चर्य नहीं होगा ; क्योंकि आपने अनेक बार जनसमूह के सम्मुख अछूतोद्धार और विधवा विवाह के समर्थन में भाषण दिये हैं । क्या वे भाषण केवल जनता की तालियाँ ही सुनने के लिए दिये जाते थे ? उनमें कोई सच्चाई नहीं थी ?

नारायण : (भिन्ना उठते हैं ।) शंकर, निर्लज्जता की भी एक सीमा होती है । तुम मेरा अपमान कर रहे हो । मैं हाँ या ना मे उत्तर चाहता हूँ । बोलो, तुम रेखा से शादी करते हो या नहीं ?

शंकर : यह मेरे जीवन का प्रश्न है, पिताजी ! मेरे ही क्या, पूरे परिवार के जीवन का प्रश्न है । बिना सोचे-समझे मैं इसका कोई उत्तर नहीं दे सकता ।

धनदेवी : ठीक ही तो कहता है । आप इसे कुछ सोचने का समय दें ।

नारायण : तुम मत बोलो हमारे बीच में । तुम सभी इस षड्यन्त्र में शामिल हो ।

धनदेवी : कौन-सा षड्यन्त्र ?

नारायण : बनो मत मेरे सामने ! कमला और शंकर का विवाह-रूपी षड्यन्त्र । तुम लोग समझते हो कि मैं कुछ नहीं जानता । मैं मूर्ख हूँ ! धनदेवी ! मैंने दुनिया देखी है । साठ साल की उमर कम नहीं होती ।

[इतने में नेपथ्य से कार का हॉर्न सुनाई देता है ।]

एक-दो दिन का समय और देता हूँ, शंकर ! अच्छा, मैं चल रहा हूँ।

धनदेवी : कहाँ ?

नारायण : रायसाहब के यहाँ।

धनदेवी : पर वहाँ से ही तो आप अभी आए थे।

नारायण : केवल अपने खाने के लिए नाहीं करने आया था। उनकी इच्छा थी कि आज रात का खाना भी मैं उनके साथ खाऊँ। उनकी कार मुझे लेने के लिए आ गई है। धनदेवी, तुम जरा बाहर तक मेरे साथ आओ।

[दोनों जाते हैं। शंकर काफी देर तक अकेला बैठा कुछ सोचता रहता है। नेपथ्य में कार के जाने का स्वर। इतने में कामना आती है।]

कामना : भैया, खाना लाऊँ ?

शंकर : अभी नहीं। माँ नहीं लौटी नीचे से ?

कामना : आ गई हैं, तुम्हारे लिए खाना परोस रही हैं।

शंकर : नाहीं कर दो। (ऊँचे स्वर में) माँ ! पहले मेरी बात सुनो।

धनदेवी : (आते हुए) क्यों, क्या बात है, बेटा ?

शंकर : जाते हुए कोई विशेष आदेश तो नहीं दे गये मेरे लिए ?

धनदेवी : (उदास और भरे हुए गले में) मैं क्या बताऊं, मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा कि इस घर का क्या होगा। वह काफी जिद्दी हैं, अपनी हठ के पक्के। तुझे समझाने के लिए मुझे कह गए हैं, पर मैं तुझे क्या समझाऊँ, तू खुद समझदार है। कह रहे थे, मेरे रहते हुए इस घर में मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी नहीं हो सकता, नहीं तो मैं अपने प्राण दे दूँगा।

शंकर : तुम जाओ, मुझे कुछ सोचने दो। (धनदेवी जाती है।) ओह ! कितना अन्तर्द्वन्द्व है हृदय में ! ऐसा लगता है जैसे शान्त सरिता में अचानक ही प्रबल बाढ़ आयी, किनारों को पार कर फसलों को नष्ट किया और लौट गई। कामना, तुझे पता है अभी यहाँ जो कुछ हुआ।

कामना : हाँ, भैया। इस कमरे की सब बातें रसोई में सुनी जा सकती हैं। मैंने और माँ ने सब कुछ सुना। बात बढ़ती देखकर मैंने ही माँ को यहाँ भेजा। माँ की तो हिम्मत नहीं बंध रही थी। पर सोचती हूँ इसका परिणाम क्या होगा ?

शंकर : परिणाम होगा, परिवार पर शासन करने वाली एक स्वामिनी आ जायेगी। उसके पास काफी पैसा होगा। हम लोग होंगे उसके दास-दासियां। कमला का जीवन नष्ट हो जायेगा। उसको सदैव के लिए मुझ से घृणा हो जायेगी। मोहन पागल हो जाएगा। सोचेगा—मैंने उसकी दोस्ती को रुपये के आगे बेच दिया। (भावावेश) वह सदा ही कमला के लिए दुःखी रहता है। कमला को सुखी देखने की उसे अत्यधिक आकांक्षा है। उसने कई बार संकेतों द्वारा मेरा हृदय टटोला भी था। अचानक ही

कभी-कभी कह उठता, 'यदि मेरी कोई छोटी बहन कुंआरी होती, शंकर ! तो उसके बंधन में बांधकर तुझे सदैव के लिए अपना बना लेता। अपनी दोस्ती को और जकड़ देता। मेरे लिए इसका अर्थ यह होता कि कमला का वैधव्य ही उसकी इच्छा में बाधक है।

कामना : और नहीं तो क्या ?

शंकर : आज शाम जब मैं उसके यहाँ गया तो वह बहुत उदास था। तुम्हें शायद नहीं मालूम कि वह टी० बी० का रोगी है।

कामना : भैया, यह आप क्या कह रहे हैं ?

शंकर : मैं ठीक कह रहा हूँ। मैंने घर इसलिए नहीं कहा, पिताजी बहुत वहमी हैं। हो सकता है मेरे वहाँ जाने पर ही कोई पाबन्दी लगा देते। पर न कामना ! आज शाम मैंने ही स्वयं उससे कमला को अपने लिए मांगा। वह उल्लास से खिल उठा। उस समय उसके आनन्द की कोई सीमा थी। उसने कहा—'शंकर! तुमने मेरी छाती से बहुत बड़ा बोझ उठा लिया, अब मैं चैन को सांस ले सकूंगा।' इसके साथ ही कमला का हाथ मेरे हाथ में दे दिया। इधर मैंने सोचा कि कल ही मोहन को टी० बी० के अस्पताल में दाखिल करा दूंगा। कमला की चिंता तो उससे हट ही गई। मैं उसी उल्लास में भरा हुआ आप लोगों को सूचित करने के लिए लौटा था। मुझे क्या ज्ञात कि यहाँ आते ही मुझ पर वज्रपात होगा। पर नहीं, मैं मोहन को धोखा नहीं दूंगा। सब कुछ मिलना आसान है दुनिया में, लेकिन सच्चा दोस्त मिलना बहुत ही कठिन है। मैं वज्र से वज्र बनकर टकराऊंगा। (इतने में मकान के नीचे कार आकर रुकती है।)

कामना : शायद पिताजी लौट आये दीखते हैं ? (इतने में दरवाजे पर दस्तक पड़ती है।) मां ने किवाड़ बन्द कर दिये हैं, खोल आऊं जाकर। (ऊंचे स्वर में) आयी जी ! (जाती है।)

धनदेवी : (आती है) बेटा ! अब उनसे मत उलझना। जो कुछ भी वह कहें, चुपचाप सुन लेना। आती है रात आराम से बीत जाने दो, पता नहीं, यह आने वाली रात कितनी भयानक है।

[इतने में रेखा और कामना आती हैं।]

रेखा : शंकर आपका ही नाम है ?

शंकर : जी हाँ, बैठिये।

रेखा : मुझको आपसे एकान्त में कुछ बातें करनी हैं।

शंकर : मां, आप दोनों कुछ देर के लिए यहाँ से दूसरे कमरे में चली जाएं। (दोनों जाती हैं।) कहिए, मेरे योग्य क्या सेवा है ? यदि अनुचित न समझें तो मैं आपका नाम पूछ सकता हूं ?

रेखा : अवश्य पूछिये। मेरा नाम रेखा है। मैं रायसाहब हरगोविन्द की लड़की हूं। शायद इतने से ही आप समझ गये होंगे कि मैं क्यों आयी हूं

शंकर : जी, मैं ज्योतिषी नहीं हूँ। कृपया आप ही बता दीजिए कि आप क्यों आयी हैं ?

रेखा : जी, मेरे और आपके पिता हम दोनों की शादी की खिचड़ी मन-ही-मन में पका रहे हैं। मेरे पिता के पास धन है और आपके पिता के पास सुन्दर और सुयोग्य पुत्र। इसी बात पर शायद उनमें समझौता हुआ है।

शंकर : हुँ! तो क्या आपको यह समझौता पसन्द नहीं ?

रेखा : जी···नहीं। बात यह है कि···

शंकर : बात जानने की मुझे कोई जरूरत नहीं। आप अपने पिताजी से इनकार क्यों नहीं कर देतीं ?

रेखा : जी, मैंने तो इनकार कर दिया है। वह अपनी जिद पर अड़े हुए हैं।

शंकर : आप विद्रोह कीजिये। आप उन्हें अपनी बात मानने पर बाध्य कीजिये। आप उनसे कहिए कि मैं एक भूखे कंगाल से विवाह नहीं करना चाहती।

रेखा : जी, उनके पास काफी धन है। वह जिसे चाहें धन देकर धनिक बना सकते हैं। और कौन ऐसा है जो धन न लेना चाहे, एक धनपति से रिश्ते-दारी करके खुश न हो।

शंकर : फिर आपका इनकार व्यर्थ है! आपके सुख में कोई बाधा नहीं। जहाँ आप जाएंगी धन आपके साथ जायेगा ही। (मजाक के मूड में) अच्छा है, आपके कारण कोई गरीब भी अमीर हो जाएगा।

रेखा : यदि मैं कहूँ कि मैं आपसे शादी नहीं करना चाहती।

शंकर : ठीक है। पर अपने पिताजी से यह बात कहिए। मुझसे कहने से कोई लाभ नहीं। कहिए, मैं शंकर से विवाह नहीं करना चाहती। वह गरीब है, भुक्खड़ है। और भी जो जी में आए बेशक कह डालिये। मेरी तरफ से आपको खुली छुट्टी है।

रेखा : क्या आप अपने पिता को नाहीं नहीं कर सकते ?

शंकर : जी ! यदि मैं कहूँ कि मेरे पिता नहीं मानते, तब ? देखिए देवीजी, इस समस्या का एक ही हल है कि आप अपने पिता से दृढ़ होकर कह दें कि मैं किसी भी मूल्य पर शंकर से शादी नहीं करूँगी। जहाँ शादी करना चाहती हैं वहाँ कर लें। विद्रोह करें। हमारी तरफ से नाहीं हो जायेगी तो आपका क्या बनेगा ? रायसाहब किसी और अपनी पसन्द के युवक को ढूंढ लेंगे।

रेखा : देखिए मि० शंकर ! आप मुझे बातों में टालना चाहते हैं। स्पष्ट यह है कि आपकी मेरे पिता के धन पर दृष्टि है।

शंकर : जी नहीं! मेरी नहीं। मेरे पिता की कहिए। वह भी आपके पिता से प्रोत्साहन पाकर। मैं सोने की रोटियाँ खाने से तो रहा देवीजी, गेहूँ की ही खाता हूँ। वह अब भी प्राप्त हो जाती हैं। ऐसा कीजिये, आप मेरे

पिताजी से यह बात कर लीजिए। हो सकता है आपकी बात का उन पर कुछ गहरा असर पड़े और आपका और मेरा दोनों का उद्धार हो जाए। वे इस समय गये भी आपके ही घर हैं।

रेखा : पता है मुझे। वह हमारे यहां खाने पर निमंत्रित थे। उन्हें घर देखकर ही मैं यहां आने का साहस कर सकी।

शंकर : तो फिर आप मेरे पिताजी से बात करेंगी ?

रेखा : जी नहीं, साहस नहीं है। फिर वह बात आपके पिताजी से मेरे पिताजी के पास पहुंचेगी और मुझ पर कड़ा पहरा लग जाएगा।

शंकर : (हंसकर) बात तो मेरे द्वारा भी आपके पिता के पास पहुंच सकती है।

रेखा : आपकी बात पर शायद उन्हें विश्वास ही न आए। फिर मुझे आशा है कि आप ऐसा नहीं करेंगे। युवा हृदय युवा हृदय से सहानुभूति [illegible] ही। इसी साहस के आधार पर मैं यहां तक आयी हूं। क्योंकि मैं जानती हूं कि मेरे और आपके विवाह से हम दोनों का जीवन नष्ट होगा।

शंकर : हूं, तो क्या आप जीवन भर विवाह करना ही नहीं चाहतीं या जहां करना चाहती हैं, वहां आपके पिताजी को कोई आपत्ति [illegible]

रेखा : जी, हां। (शर्माती हुई) वह हमारी जाति के नहीं [illegible]। दूसरे, मेरे दुर्भाग्य से वह पिताजी के एक पुराने शत्रु के पुत्र [illegible] जिनसे आजीवन पिताजी ने मुकदमा लड़ा है।

शंकर : पर अब तो जात-पांत के बन्धन बहुत [illegible] हो चुके हैं।

रेखा : हमारे और आपके विचार में।

शंकर : तब रेखादेवी ! इसका तो एक ही उपाय है कि विद्रोह कीजिये। विद्रोह ! इसके बिना कोई चारा नहीं। मुझको नहीं पर ऐसे कितने ही युवक हैं जिन्हें रायसाहब अपने [illegible] हैं।

रेखा : (सोचती हुई) हूं। [illegible] यह बातें किसी [illegible] न चलें।

शंकर : निश्चिंत रहिये। [illegible] नहीं होगा कि आप [illegible] थीं।

रेखा : कामना मुझे और [illegible] है।

शंकर : मैं उसे [illegible]

रेखा : अच्छा तो नमस्ते

शंकर : नमस्ते।

[illegible]

शंकर : (नाम [illegible]) [illegible]
[illegible]
कोई चारा नहीं
[illegible]

शंकर : (ऊँचे स्वर में पुकारकर है) कामना, ओ कामना !

कामना : (नेपथ्य से) आयी, भैया ! (आकर) क्यों, क्या बात है ?

शंकर : तूने रेखा के विषय में तो माँ को कुछ नहीं बताया ?

कामना : नहीं। पर···

शंकर : पर क्या ?

कामना : मोहन के घर हुई आज की सारी बात माँ को बता दी।

शंकर : कामना, यह तूने उचित नहीं किया।

कामना : अनुचित भी नहीं किया, भैया ! पिताजी मेरे विवाह और दहेज का बहाना लेकर तुम पर अत्याचार करना चाहते हैं। मेरे नाम पर यह सब कुछ नहीं हो सकता।

शंकर : माँ इस समय कहाँ है ?

कामना . अभी आती है। नीचे साँकल लगाने गई है। लो, वह आ गई।

धनदेवी : (आती हुई) शंकर ! जा, जाकर बहू को अभी घर ले आ।

शंकर : माँ !

धनदेवी : अरे, हाँ-हाँ। मेरा मुँह क्या देखता है ! मैं जो कहती हूँ वह कर।

शंकर : पर माँ, पिताजी देखेंगे तो।

धनदेवी : यह सब कुछ पहले सोचा होता। अब क्या किसी की बाँह पकड़कर उसे मझदार में छोड़ देगा। जा, जाकर कमला को लेकर घर आ।

शंकर : पर माँ ! एकदम उसके आते ही घर में उपद्रव उठ खड़ा होगा। पहले उसके लिए हमें वातावरण तैयार करना चाहिए, फिर वह यहाँ तब तक नहीं आ सकती, जब तक मैं मोहन को अस्पताल में दाखिल न करा दूँ। इसलिए उसके यहाँ आने में एक-दो दिन लग जाएँगे।

कामना : फिर पिताजी के गुस्से का कुछ पता नहीं कि वह किस करवट जा बैठे। उनका तो यह दृढ़ विचार है कि हम सब एकमत हैं, और आज उनका क्रोध है भी चरम सीमा पर।

धनदेवी : वह तो है ही। (सोचती हुई) अच्छा शंकर, खाना खाने के बाद तू यहां से जा। दो-चार दिन मोहन के घर ही जाकर रह। तब तक मैं तुम लोगों के लिए वातावरण तैयार करूंगी। और देख, एक काम अभी जाकर करना।

शंकर : वह क्या ?

धनदेवी : इधर आ मेरे पास। (शंकर पास आता है, धनदेवी कान में कुछ कहती है।) मैंने जो कहा है वह काम जल्दी ही जाकर कर, समय नहीं है। तू उनके आने से पहले ही यहां से चला जा। वह आ गए तो झिकझिक बढ़ जायेगी। जा, कामना ! भैया को खाना खिला।

शंकर : माँ, खाना खाने की मेरी इच्छा नहीं है। भूख मारी गई है।

धनदेवी : अच्छा, तो जाकर अपना काम कर। जल्दी कर, समय नष्ट मत कर।

शंकर : अच्छा, माँ। (जाता है।)
[धनदेवी और कामना भी जाती हैं। कुछ देर बाद नेपथ्य में कार के आने की ध्वनि। तभी नारायणदास आते हैं।]

नारायण : धनदेवी, धनदेवी!

धनदेवी : (आते हुए) जी, मैं आ ही रही थी।

नारायण : शंकर कहाँ है?

धनदेवी : जी, वह तो आपके जाने के कुछ ही देर बाद बिना कुछ कहे-सुने चला गया था।

नारायण : तुमने रोका क्यों नहीं?

धनदेवी : मैंने तो बहुत रोका पर मेरी बात वह मानता ही कब है। मैं तो जैसे इस घर में कुछ हूँ ही नहीं। जब से वह गया है तभी से मेरा हृदय घबरा रहा है। लड़का है। जवानी का जोश है, कहीं कुछ कर बैठा तो···हे भगवान, अब क्या होगा?

नारायण : होगा कुछ नहीं। मुझे डराना चाहता है। पर मैं इन बातों की रत्ती भर भी परवाह नहीं करता।

धनदेवी : जरा ठंडे दिल से सोचो। मैं आप लोगों के बीच में नहीं पड़ती। पर इसका मतलब यह नहीं कि आप लोगों की जिद के मारे सारा परिवार नष्ट हो जाए। मैं कहता हूँ यदि वह वहां शादी नहीं करना चाहता तो न सही। आप ही अपनी जिद छोड़ दीजिये।

नारायण : नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। मेरा कहना उसे मानना ही होगा। मैंने तो अपने पिता की बात का कभी विरोध नहीं किया था।

धनदेवी : वह भी आपका विरोध कहाँ करता है। आज ज़माना बहुत बदल गया है। शादी का प्रश्न अब हमारे समय से बिलकुल दूसरी तरह का है। उसे अपना जीवनसाथी खुद ही चुन लेने दीजिए। उसके आगे जीवन भर का विचार है। हम और आप तो कुछ ही वर्षों के मेहमान हैं। अमीर रहे, गरीब रहे; उसकी इच्छा। हमें क्या, जैसा करेगा वैसा भरेगा।

नारायण : (चिढ़कर) हुँ। कुछ ही वर्षों के मेहमान हैं तो क्या, जहर खा लें? मैं जब तक जीऊँगा, मान और सम्मान से जीऊँगा। मेरे परिवार को मेरा शासन स्वीकार करना ही होगा। यहाँ जो कुछ होगा, मेरी इच्छा से होगा। समझी! मैंने अच्छे-अच्छों को सीधा कर दिया। यह लड़का तो कुछ भी नहीं।

धनदेवी : पर मेरा तो दिल बैठा जा रहा है। कामना तो तभी से बैठी अपने कमरे में रो रही है। हाय राम! यह कैसी विकट समस्या आ खड़ी हुई है!

नारायण : पगली है। भला इसमें रोने की क्या बात है। वह हमें धमकाने के लिए नाटक रच रहा है। किसी दोस्त के यहां जाकर आराम से सो रहा होगा। दिन चढ़ लेने दो, न कान पकड़कर यहां लाया तो मुझे कहना। तुमने

भी यह स्वाँग बड़े किये हैं अपने जमाने में। पर पिताजी की गुस्से से भरी सूरत देखते ही दम निकल जाता था। इसमें घबराने की कोई बात नहीं। चल, मैं चलकर समझाता हूँ कामना को।

[दोनों जाते हैं। रंगमंच पर अंधकार हो जाता है।]

दूसरा दृश्य

स्थान : वही।

[दूसरे दिन सुबह का समय है। नारायणदास पलंग पर बैठे 'प्रभु जी मेरे अवगुण चित न धरो' गा रहे हैं। कामना पहले हुक्का भरकर रख जाती है। फिर चाय का सामान लाकर मेज पर रखती है और चाय बनानी शुरू कर देती है।]

नारायण : क्या बात है, बेटी! आज अखबारवाला अभी तक अखबार नहीं फेंक गया ?

कामना : आने ही वाला होगा। आज हम समय से कुछ पहले ही चाय पी रहे हैं।

नारायण : (हुक्का पीते हैं।) आज कुछ नींद नहीं आयी ठीक तरह से।

कामना : वह तो मैं जानती ही हूँ। आप आज रात को भी कभी-कभी भजन गा उठते थे।

नारायण : एक तो तेरी माँ ने परेशान किये रखा। रात भर सुबकती रही। देख, पूजा-पाठ से निवृत्त हुई कि नहीं ?

[नेपथ्य से अखबारवाले की आवाज़ आती है, 'अखबार उठा लेना, बाबू जी !" दरवाजे पर दस्तक देकर चला जाता है।]

कामना : अखबार उठा लाऊं।

नारायण : हाँ, और धनदेवी से कहना, आकर चाय पी ले। व्यर्थ दुखी होने में क्या रखा है। अभी दो घंटे बाद शंकर को ढूंढकर लाऊंगा। पहले अखबार दे जा। (कामना अखबार लाकर देती है।) चाय कुछ ठंडी है। गरम बनाकर मुझे एक प्याला दे।

कामना : अच्छा जी !

[नारायणदास हुक्का पीते हुए अखबार पढ़ते हैं।]

नारायण : (अखबार पढ़ते हुए एकदम चौंक उठते हैं।) यह क्या ? कहीं मेरी आँखें मुझे धोखा तो नहीं दे रहीं। 'प्रसिद्ध समाजसेवी नारायणदासजी के सुपुत्र पत्रकार शंकर कुमार का विवाह कमलादेवी से सम्पन्न हुआ। श्री नारायणदास ने अपने इकलौते पुत्र शंकर का विवाह बाल-विधवा कमलादेवी से करके अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। हमारे पत्र की ओर से वर-वधू दोनों पक्षवालों को बधाई।' (ऊँचे स्वर में) धनदेवी, धनदेवी ! कामना ! जल्दी इधर आओ !

[पलंग से उतरकर कमरे में घूमते हैं।]

धनदेवी : (आते हुए) क्यों, क्या बात है जी ?

नारायण : बात है मेरा सिर ! यह देख, क्या अन्धेर कर दिया तेरे सपूत ने ! नालायक

ने मेरे मुंह पर कालिख पोत दी। मेरी सब आशाएं मिट्टी में मिला दीं।

धनदेवी : कुछ बताओगे भी कि आखिर हुआ क्या है। हाय मेरे राम! मेरा तो दिल बैठा जा रहा है।

नारायण : ले, अपनी आँखों से पढ़ ले। उस शंकर के बच्चे ने कमला से शादी कर ली है। साथ ही अखबार में खबर भी छपवा दी है।

धनदेवी : देखूं ?

[अखबार धनदेवी को देकर माथा पकड़कर कुर्सी पर बैठ जाते हैं।]

नारायण : कमबख्त ने मेरे मुंह पर बड़े ज़ोर का तमाचा मारा है। अब तू ही बता, मैं रायसाहब को क्या उत्तर दूंगा ?

धनदेवी : मैं तो पहले ही कहती थी कि कुछ हो के रहेगा। हाय राम, न जाने मेरी किस्मत में क्या लिखा है।

नारायण : लिखे हैं तेरी किस्मत में ईंट-पत्थर। लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे।

कामना : अब क्या होगा ?

नारायण : होना क्या है! हमारे लिए वह मर गया और उसके लिए हम मर गये, समझे! अब इस घर में वह मेरे जीते-जी कदम नहीं रख सकता।

धनदेवी : गुस्से से नहीं, अब तनिक शान्ति के साथ इस बात को सोचो। वैसे मैं कहती हूं लड़की कमला भी तो बड़ी भली है···

नारायण : खाक कहती हो तुम!

[बाहर से आवाज़ आती है—'नारायणदास जी!']

नारायण : कर्मचन्द जी आए दीखते हैं। (ऊंचे स्वर में) आ जाओ भाई कर्मचन्द जी!

कर्मचन्द : (आते हुए) भाई, बधाई हो आप सबको। मैंने अखबार में जैसे ही पढ़ा अचम्भे में रह गया। तुम भी कमाल हो! लड़के की शादी कर ली और पास-पड़ोस को खबर तक न दी।

धनदेवी : भैया, कुछ ऐसी ही बात आ बनी थी। तुम जानते ही हो, शंकर के नाना इस बात को पसन्द न करते थे, [illegible] डालते। हमने सोचा कि पहले शादी कर लें, फिर [illegible] कामना, चाय [illegible] के लिए।

कर्मचन्द : खैर भाभी, जो कुछ भी है, [illegible] बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं [illegible] था नारायणदास [illegible] हो तो ऐसा [illegible] क्या कहने! [illegible]

धनदेवी : अपनी [illegible] इसलिए [illegible]

कर्मचन्द : मोहन भी हीरा आदमी है।

धनदेवी : तुम तो जानते ही हो, वे बहन और भाई दो ही जने हैं अपने परिवार में। लो भैया, चाय पियो।

कर्मचन्द : (हँसकर) न भाभी, कोरी चाय से काम नहीं चलेगा। मिठाई खिलाओ मिठाई।

धनदेवी : घबराओ मत, भैया। मिठाई भी खिलाएँगे। बस अब चार-पाँच दिन में ही दावत देंगे सबको।

कर्मचन्द : यह बात कही। भैया कुछ उदास-से दीख रहे हैं।

धनदेवी : कल के कामकाज से कुछ थक गये हैं। इनकी तो इच्छा थी कि ढोल-ढमक्के से ही सब काम हों। पर मैंने ही नाहीं कर दी। (कनखियों से नारायणदास के मुख की ओर देखती है।) मुझे अपने भाइयों का बड़ा डर था। वैसे वे लोग नाराज तो अब भी होंगे, पर देखा जायेगा। भला किसी की नाराजगी के लिए अपने सिद्धान्त थोड़े ही बदल देंगे।

कर्मचन्द : अजी, नहीं जी, यह भला कैसे हो सकता है और वह भी हमारे भैया जैसा आदमी।

धनदेवी : फिर उधर मोहन की बीमारी का बड़ा ध्यान था। उस पर भी हम कुछ बोझ नहीं डालना चाहते थे।

कर्मचन्द : मैं भैया के स्वभाव को अच्छी तरह जानता हूँ, भाभी। लोभ-लालच तो इनको छू तक नहीं सका। देवता हैं, देवता! बस समाज-सेवा ही इनका जीवन भर आदर्श रहा। जल्दी ही इन्हें हम लोग अभिनन्दन-पत्र भेंट करने की सोच रहे हैं। जीवन की माँ भी आने ही वाली है बधाई देने के लिए। लाओ भैया, जरा हुक्का इधर करो। मैं भी दो कश लगा लूँ।

धनदेवी : (बात को आगे बढ़ाती है।) अब तुम अपने जीवन की शादी कब कर रहे हो, भैया?

कर्मचन्द : एक-दो साल तक कर ही देंगे, तुम्हारी कृपा ही चाहिए बस।

धनदेवी : हमारे योग्य जो भी सेवा हो बताना।

कर्मचन्द : अच्छा, अब चलूँ। नहा-धोकर दफ्तर की तैयारी करनी है। जरा ठीक बैठो भाई नारायणदास जी, आज तो आने-जानेवालों का ताँता लगा रहेगा। समय मिला तो शाम को फिर आऊंगा। (जाता है।)

नारायण : (घूमते हुए लम्बी साँस खींचकर) ओ हो! मेरी तो समझ में नहीं आ रहा कि मैं किसी को क्या उत्तर दूँ। मेरे हृदय में बड़ा अन्तर्द्वन्द्व मचा हुआ है। कुछ देर तुम मेरे साथ ही बैठी रहना, धनदेवी! लोग आएं, प्रश्न करें। जैसा भी उचित समझो, उत्तर देती जाना। पागल कर दिया मुझे तो इस लड़के ने। कामना! जा बेटा, जरा जाकर नीचे वाली बैठक साफ कर। हम भी कुछ देर में वहीं आते हैं। (कामना जाती है।) दिल तो मेरा इतना दुःखी है जिसकी सीमा नहीं, पर क्या करूँ।

धनदेवी : (बात काटकर) कोई अशुभ वचन मत निकालो मुख से। मैं कहती हूं कैसा रहे यदि जीवन से कामना की शादी की बात हो जाय तो ?

नारायण : कर देखना तुम जीवन की माँ से बात। वैसे मैं भी कर्मचन्द से बात कर देखूंगा। पुराना दोस्त है। अच्छा ही है और आशा भी है बात मान जायेगा। चलो, नीचे चलकर बैठें। (चलते हुए) अजीब समस्या है, अभी तो रायसाहब से बड़ी तू-तू मैं-मैं होगी। बेचारे क्या सोचते होंगे इस खबर को पढ़कर। रात मैं उन्हें पक्का यकीन दिलाकर आया था। वाहरी कलयुगी सन्तान ! माता-पिता की बात न मानना ही तेरा धर्म है।

[दोनों जाते हैं। रंगमंच पर अंधकार छा जाता है।]

तीसरा दृश्य

स्थान : वही।

[समय शाम का। नारायणदास बाहर से आकर अपने कमरे में बैठते हैं। तभी कामना के साथ घूंघट काढ़े हुए कमला आकर उनके पाँव छूती है।]

नारायण : (आशीर्वाद देते हुए) सुहागवती हो, बेटी ! क्यों कामना, शंकर कहां है ?

कामना : भैया तो नहीं आए। माँ भाभी को ही लेने गई थीं। बस अभी कुछ देर पहले ही लौटकर आयी है।

नारायण : कहां है धनदेवी ?

कामना : नीचे औरतों से बातें कर रही हैं।

नारायण : हुँ ! उसे जरा ऊपर भेजना।

कामना : अच्छा जी। चलो भाभी, नीचे चलें। (दोनों जाती हैं।)

[नारायणदास कमरे में इधर-उधर बेचैन घूम रहे हैं। कुछ देर बाद धनदेवी आती है।]

नारायण : किसकी आज्ञा से तू कमला को घर लेकर आयी है ?

धनदेवी : कभी-कभी तो आप बच्चों-जैसी बातें करने लगते हैं। एक तरफ तो आप कहते हैं कि गली-मुहल्ले वालों को उचित उत्तर दूं और दूसरी तरफ नाराज होने लग जाते हैं। पास-पड़ोस की औरतों ने तीन दिन से तंग कर रखा था कि हमें बहू दिखा। अब क्या मैं कहती कि हमारी मर्जी से विवाह नहीं हुआ ? हम बहू को नहीं ला सकते। कल-परसों में जब सब लोग तुम्हें मानपत्र भेंट करेंगे, तब क्या कह दोगे कि इस विवाह में मेरी सहमति नहीं थी। जो कुछ भी हो गया है, अब उस पर संतोष करो। शंकर को क्षमा कर दो। वह बेचारा आपके क्रोध से डर रहा था।

नारायण : मैं उसे कभी क्षमा नहीं कर सकता। उसी के कारण आज मुझे राय साहब की उल्टी-सीधी बातें सुननी पड़ीं। उन्होंने जो मुंह में आया कहा।

धनदेवी : तुम्हें भी तो वहां जाए बिना चैन नहीं पड़ता।

नारायण : (अकड़कर) और कोई अवसर होता तो मार झापड़ सब रायसाहिबी निकाल देता ससुर की। पर कसूर अपना था, चोर की तरह सिर झुका कर सब कुछ सुनता रहा।

कर्मचन्द : (बाहर से आवाज देता है।) नारायणदास जी ! हैं क्या घर में ?

नारायण : (ऊंचे स्वर में) आ जाओ, कर्मचन्द !

[कर्मचन्द आते हैं। बगल में शीशे में मढ़ा हुआ मानपत्र है।]

कर्मचन्द : (आते हुए) तुम्हें एक नया समाचार सुनाने आया हूँ। लो, पढ़ लो यह मान-पत्र छपवाया है।

[धनदेवी लेकर देखती है।]

नारायण : क्या बात सुनाने आया है ?

कर्मचन्द : तुम्हारे दोस्त वह हरगोविन्द हैं न। उनकी लड़की रेखा ने उनकी इच्छा के विरुद्ध किसी चन्द्रप्रकाश नामक युवक से सिविल मैरिज कर ली है।

नारायण : क्या कहा ?

धनदेवी : पर यह कैसे हो सकता है ?

कर्मचन्द : जैसे और बातें होती हैं दुनिया में। सुना है लड़की-लड़के में प्रेम था। रायसाहब भला यह कैसे सहन कर सकते थे। वैसे भी लड़का उनकी जात का नहीं था। वह लड़की की शादी कहीं और करने की सोच रहे थे। तब तक यह कांड हो गया।

नारायण : कमाल की बात है।

कर्मचन्द : भाभी ! नीचे बड़ा भीड़-भड़क्का जोड़ रखा है आज। क्या बात है ?

धनदेवी : अभी-अभी शंकर की बहू को लेकर आयी हूँ। तभी से नीचे बैठक में औरतों की महफिल लगी हुई है।

कर्मचन्द : अच्छा तो अब दावत कब दे रहे हैं आप लोग ?

नारायण : (अंगुलियों पर गिनते हैं।) आज मंगल है, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिचर की शाम को रही। क्यों, धनदेवी ?

नारायण : जी हाँ, बस कल-परसों में जरा निमंत्रण-पत्र छपवा लें।

कर्मचन्द : शंकर नहीं दीखा इन दिनों।

नारायण : बहुत काम है आजकल उसके दफ्तर में। विशेषांक निकल रहा है शायद उसके पत्र का। आज शाम को आयेगा तो कह दूंगा—तेरा चाचा कर्मचन्द बहुत याद करता है तुझे। अच्छा, मैं चलूं। मुझे रायसाहब से जरा कुछ बातें करनी हैं।

धनदेवी : फिर वही बात। तुम्हें भी वहां जाये बिना चैन नहीं पड़ता। मै कहती हूं फिर किसी समय चले जाना।

नारायण : किसी समय नहीं, इसी समय जाऊँगा। मैं किसी का उधार अधिक देर रखने वाला नहीं हूँ। आज बच्चू जी को ब्याज समेत चुकाकर आऊँगा। अच्छा भाई कर्मचन्द, क्षमा करना। मुझे जरा जरूरी काम से जाना पड़

रहा है। कोने से मेरी छड़ी देना, धनदेवी !

धनदेवी : उधर ज़रा मोहन के घर भी होते आइयेगा।

नारायण : अच्छा-अच्छा। तू चिन्ता मत कर। (चलने लगते हैं।)

कर्मचन्द : अरे भाई ! पर इतना भी जल्दी क्या है ?

नारायण : अरे, वह रायसाहब है न हरगोविन्द। कल मुझ पर बिगड़ पड़े। बोले—हीरे जैसे लौंडे को कांच के टुकड़े के साथ बांध दिया तुमने, नारायणदास ! क्या तुम्हारी अक्ल मारी गई थी ? इसी बात पर जो मुंह में आया, बकता गया। मैंने सोचा—चलो, पुराना दोस्त है। इन्हें क्या कहना है ? अब चलकर देखता हूं बच्चू जी की क्या दशा है। कल बड़ी डींगें मार रहे थे—'मेरी संतान मेरे इशारे से कांपती है।' (बड़बड़ाते हुए) पर उपदेश कुशल बहुतेरे। अब चलकर उसकी अक्ल दुरुस्त करता हूं। समझ क्या रखा है उसने अपने आपको ! अरी धनदेवी, मेरा मुंह क्या देख रही हो ! पार्टी शनिचर को होगी, पर आज भी कर्मचन्द को कुछ जलपान करवाओ।

धनदेवी : अच्छा जी।

कर्मचन्द : अब नहीं, फिर किसी समय, भैया।

नारायण : (चलते-चलते) नहीं जी। सुनो धनदेवी, बिना खाए-पिये इसे मत जाने देना। मैं उस रायसाहब की हेकड़ी निकालकर अभी आता हूं। (कहते-कहते जाते हैं।)

[परदा गिरता है।]

१०

भक्तों की दीनता

जयनाथ नलिन

श्री जयनाथ 'नलिन' का जन्म सन् १६१२ में मुरादाबाद में हुआ था। सन् १६३५ से आपका पत्रकार-जीवन आरम्भ हुआ। लाहौर और दिल्ली के कई दैनिक-पत्रों में सम्पादन कार्य किया। दो-तीन वर्ष बम्बई में फिल्म-कम्पनियों में संवाद-गीत-लेखक रहे, फिर कई वर्ष प्राध्यापक रहे। अंग्रेजी, फ्रेंच, गुजराती, बंगला, मराठी और पंजाबी का अच्छा ज्ञान है। हिन्दी के हास्य-व्यंग्य-क्षेत्र में आपका विशिष्ट स्थान है।

रचनाएँ

'धरती के बोल', 'हाथी के दाँत', 'टीलों की चमक,' 'बिखरते साये', 'जवानी का नशा', आदि।

पात्र

सहजू : ब्रजवासी कृष्णभक्त साधु। हट्टी-कट्टी देह। पेट तनिक निकला हुआ। कमर में गेरुआ धोती और कंधों पर रेशमी पीताम्बर। मूंछ-दाढ़ी साफ, सिर पर लम्बे केश। आयु चालीस वर्ष के आस-पास।

दासू : चित्रकूटवासी राम-भक्त साधु। पतली, पर सशक्त बलिष्ठ देह। सिर-मूंछ-दाढ़ी सब साफ। कमर में लाल रंग की धोती और कंधों पर रामनामी। पैरों में खड़ाऊं। आयु सहजू के समान ही।

भोलू : ब्रजवासी भक्त। सहजू का परिचित।

एक-दो अन्य व्यक्ति जो मंदिर में दर्शनार्थ उपस्थित हैं।

वृन्दावन में, यमुना-तट पर, एक प्राचीन छोटे-से मंदिर का चबूतरा। चबूतरे पर पाल, ऊपर बड़ा-सा शामियाना। मंदिर-द्वार पर रेशमी पर्दा, द्वार से हटकर दो चौकियाँ, एक व्यासपीठ, दूसरी भगवान की मूर्ति के लिए। एक-दो भक्त-जन उपस्थित। शामियाने की चोब से लगे, मंदिर की ओर दाहिना कंधा किए, सहजू ऊँघते हुए। खड़ाऊँओं की खट-खट होती है। सहजू जरा पलकें खोल सामने देखते हैं। दासूजी दिखाई देते हैं। पीताम्बर संभाल, केश फटकार, उनको ऐंठ बेणी-सी बनाते हुए उठते हैं। हाथ जोड़, कटि लचका, मस्तक नवा, पलकें झुका, खड़े हो जाते हैं। दासूजी रामनामी सँभाल, धर्म-गंभीर मुद्रा बना, फूंक-फूंक पग रखते, मुसकाते, सकुचाते, 'र-आं-म'—'र-आं-म' उच्चारते आगे बढ़ते हैं।

सहजू : (स्वागत करते हुए) हॅं-हॅं-हॅं-हॅं···पधारिए, महाराज ! दर्शन दीजिए, दयाधाम !

दासू : (कुहनियों से उंगलियों तक दोनों हाथ जोड़, कमर से पैंतालीस डिग्री का कोण बना, पलकें मूंदकर) अहोभाग्य ! परम सौभाग्य ! दर्शन पाय (दंडवत की चेष्टा) आतमा अघाय उठी। (दंडवत के लिए झुकता है। सहजू क्षिप्रता से चरणों में लेट जाता है।) अरे-रे-रे ! यह क्या ? नारायण !

सहजू : (चरण पकड़े हुए) पुन्न पूरन भये। आयो शरण तिहारी···मैं तो आयो···

दासू : (छुड़ाते हुए)नारायण-नारायण ! हाय, यह क्या कर डाला दीनानाथ ! क्यों मुझे नरक में धकेलो हो ? (उठाता है।) उठो-उठो, किरपा-निधान

सहजू : (पैर कसते हुए) ना-ना···राधे-राधे ! आज तो जीवन का परम फल पा लूं। युग-युग की मन की जलन मिटा लूं।

दासू : (एक पैर छुड़ाकर पीछे हटता है। सहजू थोड़ी दूर तक घिसट जाता है।) हाय राम—सीताराम ! अब तो बहुत हुई भगतराज ! (गिरने से संभलता है।) उठो, क्यों मुझे पाप में धकेलो हो ?

सहजू : (पड़े-पड़े) यह स्वर्ग-सुख कब-कब मिले है ? यह वैकुण्ठवास ! राधे-राधे···श्री राधे-राधे !

दासू : (कंधों में दोनों हाथ डाल झटका देता है।) उठो नारायण ! उ-ठो··· म-हा-राज !

[आधा मिनट संघर्ष होता है। दोनों की सांस फूल जाती है। दासू झटका दे, सहजू को खड़ा कर देता है।]

सहजू : (करबद्ध) आज मनोकामना पूरन भई। कितने दिन से नयन अभागे हरि-दर्शन के प्यासे। पधारें, महाराज···विराजें, भगवन !

दासू : (करबद्ध) भक्तराज खड़े रहें और मैं परम करम-हीन मनमलीन नराधम विराजूं ! नारायन-नारायन ! यह महा अनरथ ! हरे-हरे !

सहजू : मैं भगतराज ! राधे-राधे ! मैं तो महा अज्ञानी, मूरख खल-कामी, परम पापी···राधे-राधे ! श्री राधे-राधे !

दासू : हे महायोगीराज, परम ज्ञानी होकर भी यह दैन्य ! परम वीतराग, और यह विनयशीलता, यही दीनता तो भगतों का भूषण है—यही तो आपकी महानता ! कहाँ आप, कहाँ मैं ! (दीनता और गौरव से) परम नीच निकाम नारकीय नर···और आप तो, हे-हे परम योगीजी ! हे-हे परमहंसजी ! भगत-वंस-अवतंसजी !

सहजू : (दीनता से) परमहंस कहकै लज्जित न कीजिए, हे-हे महानर-पुंगव ! मैं तो पाप-ताप-संताप ईर्ष्या-द्वेष-दलदल में धँसा जन ! आप तो मानव-शीश-किरीट-रतन ! मैं परमहंस, राधे-राधे ! मैं तो हूँ, काला तन, काला मन, परम नीच कन्नास-कौआ !

दासू : (गद्गद) अहा ! धन्य-धन्य श्रीकागभुसुंडजी, श्रीराम-कथा सुनानेवाले, जन-जन का मन हर्षानेवाले, सब पाप-ताप-संताप-शाप नसानेवाले ! पर मैं तो हाय रहा, महा रजनीचर, माया-तिमिर-विहारी, तुच्छ उल्लू का उल्लू !

सहजू : (रोमांचित हो) अहोभाग्य···परम सौभाग्य ! जो आपके दर्शन पाये ! जनम-जनम के पुन्य परगट भये। हे-हे श्री लक्ष्मीवाहनजी, अतिमन-भावनजी, सुजनसुहावनजी, श्री महाउलूकजी, लक्ष्मीनारायणजी के चरणों के पास निवास ! कहां आप, श्री लक्ष्मी के लाड़ले लड़ैते लाल, और कहाँ मैं···मैं तो रहा परम चमगादड़ ही।

दासू : (झेंपते हुए) हँ-हँ-हँ-हँ···आप तो भगवन् ! हँ-हँ···मैं···हँ-हँ···मंदिर जी की परकरमा···(प्रस्थान)।

सहजू : (दासू की पीठ की ओर आत्मगौरव और उसकी पराजय का संकेत करते हुए) श्री राधे-राधे ! जै हो ! (दासू को लात मारने का अभिनय) जै हो श्री राधे-राधे !

[मंदिर के पीछे से भोलू का प्रवेश]

भोलू : आज तो कमाल की दीनता प्रकट की। मात खा गया बेटा ! भाग परकरमा करने को झेंपता हुआ।

सहजू : (मंदिर की ओर हाथ जोड़) अपने भक्तों की लाजरखैया, बांके बिहारी की दया ! जै हो श्री राधे ! जै हो बाँकेबिहारी !

भोलू : (आलिंगन कर) व्रजभूमि की लाज रख ली। चमगादड़ से अधिक नीचातिनीच तुच्छातितुच्छ और क्या ? उल्लू तो लक्ष्मीजी का वाहन,

बनिए-व्यापारियों, चोरबाजारियों का इष्टदेव, चमगादड़ बेचारा अंधेरे में उल्टा लटका रहे। अज्ञान का भाव भी प्रकट हो गया। क्या कमाल का रूपक बांधा! जै जमना मैया की!

सहजू : हमें ही बेटा दीनता दिखाने चले। यहाँ के बड़े-बड़े अखाड़ियों को पछाड़ चुके हैं! दीनता की क्या करारी चपत दी, याद करेगा बेटा उमर-भर! आया शान गांठने, उल्लू कहीं का!

भोलू : मान गया यह सबुकड़ा कि व्रजवासियों से हाथ मिलाना आसान नहीं! अब प्रार्थना कर रहा होगा—(करुण अभिनय) 'दीनानाथ, दीनबंधु, दयानिधे, ऐसे उपमा-अलंकार सुझा, जो इस बहुरूपिए व्रजवासी को पछाड़ दूं!'

सहजू : अजी, भगवान भला ऐसे रंगे सियारों की बातों में आनेवाले हैं! (दासू आता दीखता है, सँभलकर)...हं-हं-हं-हं...राधे-राधे! (दासू पास आता है।)...हं-हं-हं-हं...विराजें देवाधिदेव! (भोलू का एक ओर बैठना।)

दासू : सुशोभित हों अशरण-शरण।

[एक का अन्य को बैठाना]

सहजू : किस परम-पावन आश्रम ने यह चोला पधारा, परम प्रभो?

दासू : यह कलुषित तन, शूकर-कूकर-सा जीवन श्रीतुच्छ चित्रकूट ने श्री महावृन्दावन-हेतु...

सहजू : परम पावन अतिमन-भावन, सदा सुहावन, पाप-पुंज-नसावन इस चोले को किस नाम से विनती करूं कि सात जनम के पाप-ताप-शाप निर्मूल होवें?

दासू : और इस अमल धवल पूनम के चांद की जोत लजावन तेज पुंजधारी आत्मा को किन शब्दों से सुमरन करूं कि मेरे आवागमन के फंद टूटें?

सहजू : हं-हं-हं-हं...पहले आप। श्री राधे-राधे!

दासू : हं-हं-हं-हं...आप श्रीगनेस करें, महानारायण!

सहजू : योगीराज, पहले आप।

दासू : हं-हं-हं-हं...तो, मैं आपके दासों का दास, महादास, दास-दासानुदास मतिमंद मानुस, नाम तुच्छ रामदास।

सहजू : हं-हं-हं-हं...क्या दिव्य नाम है! और मैं आपके धोबियों का धोबी, मोचियों का मोची, चाकरों का चाकर, महाचाकर, चाकरानु-चाकर, महानीच, नीचातिनीच, नाम परम नीच सहजू।

भोलू : (पुलकित हो) अहा! धन्य-धन्य, भगतराज! क्या दीनता है! आत्मा मगन होय रही।

दासू : (भोलू से सगौरव) ऐसी बातें कह मुझे कांटों में न घसीटो, महामुने!

(सहजू से) आप महाज्ञानी, श्री श्री परम वृन्दावनधाम-निवासी, सुरती-इसमिरती-बेद पुरान का नित नियम से पाठ, महाग्रंथ महाभागवत का परम परायन, श्री कालिंदी-असनान, राधावर नटवर घनश्याम का सदा ध्यान। आप तो महा-महा···और मैं तो सदा तुच्छ-तुच्छ···

सहजू : ग्रंथ-भार लादने से कौन ज्ञानी बना, हे-हे भक्ति-ज्ञान-वैराग-सिद्ध न्यौराज राजेश्वर ? हे-हे धर्म-कर्म-विवेक के स्वामी, मैं इतना बोझ लादकर भी तो रहा निरा टट्टू-का-टट्टू ही।

दासू : आप टट्टू-के-टट्टू, तो चित्रकूट निवास करके भी मैं रहा पूरा गधे-का गधा ही।

भोलू : धन्य-धन्य ! अहा गर्दभराज, वैशाखनंदन ! महात्मा दासूजी की दीनता, धन्य-धन्य !

एक व्यक्ति : (नेपथ्य में) भगवान की मूर्ति के दर्शन ! अहा ! क्या रूप···जै-जै-राधेनाथ···रास रचैया···गोपी-रिझैया !

सहजू : (उठकर जाते हुए) मैं भी जरा एक झाँकी ले आऊं ! (प्रस्थान। नेपथ्य में) अहा बाँकेविहारी !

दासू : कैसा दुम दबाकर भागा !

भोलू : तुमने तो सौ सुनार की एक लुहार की कर दी, दासू भगत !

दासू : भूल गया सारी चौकड़ी। बड़ा अखाड़ची समझ रहा था अपने को ! बोलती बंद। आया दैन्य-भाव दिखाने—हमें पछाड़ने ! यहाँ बड़े-बड़े संतों से मुठभेड़ करते जीवन बीत गया। आज तक दीनता-प्रदर्शन में कोई ठहर तो जाये अपने सामने ! टट्टू कहीं का !

भोलू : दीनता की वह लात पड़ी बेटा पर ! अजी, अपने बराबर किसी को समझेई ना था।

दासू : सीतापते अपने भगत को भला हारने दे। (गाता है।) जब-जब भीर पड़े भगतों पर···

सहजू : (गाते हुए प्रवेश)

मो सम कौन कुटिल-खल-कामी !···कामी !

[बैठकर]

जिन तन दियो ताहि बिसरायो ऐसो लोन हरामी।
भरि-भरि उदर विषय को धावो जैसे शूकरगामी।
पापी कौन बड़ा है मो तें सब पतितन मैं नामी।
मो सम कौन कुटिल-खल-कामी···
का······ऽ······मी···का······मी

[दासू और भोलू ध्यानमग्न मुद्रा में]

बांकेविहारी, किस मुंह से तुम्हारे पास आऊँ। मैं पापों का पुंज, जीवन-जनम विषय-भोग में गँवाया। हाय, आज भी तो परनारी को

कैसी ललचाई आंखों से देखता हूं। हाय रे गोपियों के चीरहरैया, द्रौपदी के चीरबढ़ैया, रासरचैया, कृष्णकन्हैया, आज भी यह पापी-कलापी मन विषय-वासना का दास। आज भी हाय रे, मेरा मन किसी की छलकती जवानी पर दीवाना! किसी कजरारे नयनोंवाली, सुकुमारी नारी की लटकती चाल देख, मद-भरी नूपुर-रुन-झुन सुन कलेजा कुलाचें मारे है। हाय! कामदेव अब भी पंचशर ताने है। यह मनरूपी हाथी संयम का अंकुश नाग माने है। हे गोपियों के वल्लभ, अपने पीताम्बर से इसकी टांग बांध राखो। हे सुदर्शनधारी, समदर्शी भगवान, मेरा निस्तार कैसे हो···आज तुमसे इतना विमुख. श्री राधे-राधे!

दासू : (करुण कंठ, भीगी आंखें, पश्चात्ताप की वाणी से)

माधवजू मो सम मंद न कोऊ।

[सहजू की हिचकियां]

पतितन को सिरमौर कौन है मो समान जग माहीं।
सब विधि हीनमलीनदीन अति लीन-विषय कोऊ नाहीं।
प्रभुजी······प्रभुजी···मो सम···
मो सम मंद न कोऊ·········कोऊ!
[करुण सिसकियां और हिचकियां लेता है।]

भोलू : पहले तो इतनी देर कभी न होती थी। आज न जाने क्या···

सहजू : महापरभो हुए, उन्हें क्या, मरते हैं हम भगत लोग। हम इतनी देर से आंखें फाड़ रहे हैं—अब आवें, अब आवें...आवैं तो दर्शन करके जाएं।

भोलू : अजी, ऊंची दूकान, फीका पकवान!

दासू : ऐसी बात न कहें, भगतराज। आचार्यजी की चरनधूल भी मिल जाय तो सात कुल बैकुंठ-वास करें।

भोलू : हां, यह तो है।

[सहजू उपेक्षा से हंसता है। एक व्यक्ति कृष्ण की तसवीर लाकर चौकी पर रखता है। दासू उचककर देखता है। उसकी कोहनी सहजू को लगती है।]

सहजू : (रूखे स्वर में) अजी महाराज, जरा देख के। हमें भी भगवान के दर्शन करने हैं।

दासू : (भाव-मुग्ध) अहा-हा! क्या अलौकिक रूप है! क्या झांकी है!

[दासू हाथ जोड़, सिर झुकाता है। सिर सहजू को लगता है।]

सहजू : (उचककर) क्या मनोहर झांकी है! (कोहनी दासू को मारते हुए) धन्न-धन्न राधा-माधो!

दासू : (रूखे स्वर और सरोष नयन से) क्या करते हो महाराज, कोहनी

नहीं क्या ?

सहजू : दीखता ना होगा तुम्हें !

दासू : अंधा होगा तू !···ढोंगी कहीं का !

सहजू : अबे, चल-चल बगुलाभगत ! रंगा सियार !

दासू : अबे, रास्ता नाप, नाथपंथी, नागा, कनफड़िया···थू-थू !

सहजू : जा, कहीं और मुंह काला कर सरभंगी, भिखमंगे ! मलेच्छ, डोम··· दुर्गन्धी···राच्छत !

दासू : जा, नरक में पड़, महाअज्ञानी, मूरख-खल-कामी, लंपट-लबार-लालची, पापी-परपंची !

सहजू : परम नीच निकाम नारकीय नर कूकर-शूकर-सा जीवन, पाप-पंक में लथपथ मन···(उल्टी-सी करने का अभिनय)।

भोलू : (कपड़ा मुंह पर लेकर) हरे-हरे !

दासू : अबे, उड़ जा यहाँ से काले मनवाले, काले तनवाले, कन्नास-कौवे !

सहजू : ऐसे परम पावन स्थान में तेरा क्या काम रे, उल्लू के उल्लू !

दासू : कहीं अंधकूप में जाकर उल्टा लटक जा, अबे चमगादड़ !

सहजू : तू कहाँ से आ मरा, चोर-उचक्के ? भगवान के मंदिर में ऐसे पापियों का क्या काम ! (भोलू से) इस मरदूद की सूरत देख सात जनम के पुन्न-व्रत-संयम क्षण में नष्ट हों—अभागा, कुसगुना, कुचाली !

भोलू : बहुत हुई भगतराज। बस भी करो।

दासू : (संभलकर उठते हुए) हे हनुमान, ज्ञान-गुन-सागर! जै बजरंग बली··· (सहजू पर झपटना) आज तेरी शामत आई लगै है।

सहजू : (मुक्का तानते हुए उठकर) जै सुदर्शनधारी ! बिना ठुके मानेगा नहीं तू। (दासू पर झपटना)।

भोलू : यह क्या है भगतराज ! (दोनों को अलग करने का प्रयत्न) हे भगवान ! दौड़ो, बचाओ ! हे बांकेबिहारी !

[दोनों का उलझना—एक-दो लोगों का दौड़कर दोनों को अलग करना।]

भोलू : दिव्यधाम परम अस्थान···हरे-हरे !

एक व्यक्ति : सामने भगवान किशन विराजमान। राधे-राधे !

दूसरा व्यक्ति : (दौड़ते हुए) तुम्हें जमना मैया की सौगन्ध भैया, जो या जगै पै रार करो।

दासू : अभी ठीक कर दूं !

एक व्यक्ति : आखिर कोई बात भी है, भगतराज ! दोनों ही महात्मा होके···

सहजू : (खिसियाने स्वर में)···यह भगत है ? दीनता दिखाता है, तुलसी का पद गाता है, अपने को तुच्छ नीचातिनीच बताता है···और है कुछ भी नहीं···पाखंडी ! लबार !

दासू : तू है बड़ा कहीं का वह···चांडाल कहीं का! सूर का पद भी अपावन कर दिया। कैसा सिसकते हुए गाता था—(चिढ़ाते हुए) 'मो सम कौन कुटिल खल-कामी!' तू क्या है ऐसा? झूठा, बहुरूपिया, उचक्का!

सहजू : खोपड़ी खुजा रही है क्या? बताऊँ?

दासू : लातों का भूत बातों से नहीं मानेगा? आऊँ? (फिर उलझने की चेष्टा।)

एक व्यक्ति : (बीच में पकड़कर) अजी, रहने दो महाराज! किसे झूठा कहें, दोनों ही महात्मा···भगवान का भजन करें। (दोनों को अलग-अलग बैठाना) क्यों यहां अनरथ करते हो?

भोलू : और क्या? भगवान में ध्यान लगा जीवन सुफल बनाओ।

दासू : (गाना)—

जो पै रहनि राम सो नाहीं।
तो नर खर-कूकर-सूकर सम।
[सहजू की ओर संकेत]
वृथा जियत जग माहीं।
जो पै रहनि राम सो नाहीं।

सहजू : (गाना)—

भजन बिन जीवन जैसे प्रेत।
[आंख खोल दासू की ओर संकेत]
मलिन मंद मति डोलत घर-घर
उदर भरन के हेत।
भजन बिन जीवत जैसे प्रेत···
[दोनों गुनगुनाते रहते हैं।]

११

'नवजोती' की नयी हीरोइन

सत्येन्द्र शरत

आपका जन्म १० अप्रैल, सन् १६२६ को अमरावती (बरार) में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा अमरावती और नागपुर में हुई। उसके बाद देहरादून और इलाहाबाद में। इलाहाबाद युनिर्वासटी से एम० ए० की डिग्री ली। सन् १६८६ से जीविका के लिए अनेक कार्य किए। एक वर्ष 'प्रतीक' द्वैमासिक के सहायक सम्पादक और चार वर्ष फिल्मों में सहायक निर्देशक रहने के बाद आकाशवाणी, दिल्ली में नाटक-लेखक और नाटक-निर्देशक। आजकल विविध भारती कार्यक्रम के प्रोड्यूसर।

रचनाएँ

'नील कमल', 'कुहासा और किरण', 'तार के खम्भे', 'कुंदमाला', 'नया सफर', 'नए चित्र', 'पलाश-पुष्प', 'स्वयंवर', 'इन्द्रधनुष', 'नवरंग', आदि।

बम्बई के अढ़ाई कमरे वाले एक फ्लैट का सजा हुआ ड्राइंग-रूम। फर्नीचर और सजावट के सामानों को गिनाना व्यर्थ है, इसलिए कि यदि यह नाटक खेला गया तो खेलनेवाले अपने साधन और अपनी सुविधा के अनुसार ये सब चीज़ें जुटायेंगे, मेरी दी हुई सूची के अनुसार नहीं। वैसे आम फर्नीचर के साथ एक कोने में एक कुर्सी और एक राइटिंग-टेबल भी हो तो अच्छा है। टेलीफोन उसी टेबल पर होगा।

कमरे में दो दरवाज़े हैं—दायीं ओर बायीं ओर। दोनों दर्शकों से अदृश्य हैं: बायीं ओर का दरवाज़ा फ्लैट का प्रमुख द्वार है, जिससे आगन्तुक आयेंगे। दायीं ओर का दरवाज़ा अन्दर बेड-रूम और किचन में जाता है। नौकर इस द्वार से मंच पर आयेगा।

पर्दा उठने पर घर का नौकर फर्नीचर और दूसरा सामान झाड़ता-पोंछता दीख पड़ता है। पहाड़ी लहजे में वह कोई गीत भी गुनगुना रहा है।

कुछ क्षण बाद एक सुन्दर, स्वस्थ युवक दायीं ओर से अन्दर आता है। वह घर का स्वामी रामेश्वर है। वह एक ओर चुपचाप खड़ा हो जाता है और नौकर को गीत गाते देखता रहता है। सहसा वह आगे बढ़ता है और नौकर को पुकारता है।

रामेश्वर : भगवान!

भगवान : (चौंकता है और रामेश्वर को देखता है।) जी, बाबूजी!

रामेश्वर : भगवान, तुम काम कम करते हो और गाना ज्यादा गाते हो...

भगवान : (दोनों हथेलियाँ मलता हुआ) बाबूजी, मैं खाली बैठे गाना नहीं गाता। मैं तो काम करते हुए गाना गाता हूँ...जितना गाता हूँ उतना ही काम करता हूँ।

रामेश्वर : अच्छा-अच्छा। तुमने सब चीज़ें ठीक-ठाक कर ली हैं न?

भगवान : जी बाबूजी, बस चिवड़ा रह गया है। कमरा साफ करके मैं अभी चिवड़ा तैयार करता हूँ।

रामेश्वर : अच्छा तो जल्दी करो...(दीवार-घड़ी की ओर देखता हुआ) पाँच बजने वाले हैं।

भगवान : (अन्दर की ओर जाता हुआ) जी, बाबूजी!...(सहसा रुककर, रामेश्वर को सम्बोधित करता हुआ) बाबूजी!

रामेश्वर : क्या बात है?

भगवान : बाबूजी, बीबीजी सचमुच ही फिलिम कम्पनी में जा रही हैं?

रामेश्वर : क्यों? तुम से मतलब?

भगवान : जी, अगर बीबीजी को फिलिम में काम मिल रहा है तो बाबूजी, फिर मेरे भी भाग जग गये। फिर तो बाबूजी, बीबीजी की वजह से मुझको

भी कहीं चानस मिल जायगा।

रामेश्वर : (रस लेते हुए) क्यों, तुमको भी फिलिम में काम करने का शौक है ?

भगवान : (गहरी साँस लेकर) अजी बाबूजी, इसी शौक की वजह से तो घर से भागकर यहाँ बम्बई आया हूँ।

रामेश्वर : (मुसकराकर) अच्छा, अगर तुम्हें बीबीजी से अपनी सिफारिश करवानी है तो तुम्हें चाहिए कि अपने काम से अपनी बीबीजी को हमेशा खुश रखो...तभी बीबीजी तुम्हारे लिए भी कोशिश करेंगी। समझ गये न ?

भगवान : (सिर हिलाता हुआ) जी...समझ गया।

रामेश्वर : अच्छा, अब बातें मत करो। तुम्हारी बीबीजी कपड़े बदलकर यहाँ आने ही वाली हैं। उनके यहाँ आने से पहले ही तुम किचन में पहुँचकर काम में जुट जाओ !

भगवान : अच्छा जी...(लेकिन जाता नहीं, खड़ा रहता है।)

रामेश्वर : जाओ, भागो !

भगवान : (जाते हुए) जा रहा हूँ, बाबूजी।

[भगवान भागता हुआ-सा अन्दर चला जाता है। रामेश्वर मुसकराता हुआ खड़ा रहता है और कमरे में चारों ओर दृष्टि फेंकता है। कुछ क्षण बाद दायीं ओर बढ़ता है और दाएँ प्रवेश-द्वार के निकट खड़ा होकर कहता है :]

रामेश्वर : अरे मालती, तुम अभी तक तैयार ही नहीं हुई !

मालती : (अन्दर से) हो गयी हूँ। बस, साड़ी पहन रही हूँ !

रामेश्वर : वह तो तुम पिछले आधे घंटे से पहन रही हो...(रुककर) किसी बड़े आदमी ने सच ही कहा है, जितने समय में औरतें कपड़े पहनकर तैयार होती हैं, उतने समय में किसी देश की किस्मत का फैसला हो सकता है—मैं तो बल्कि यह कहना चाहूँगा कि किसी एक देश का नहीं, सारे संसार की किस्मत का फैसला हो सकता है।

मालती : (हँसकर) और मज़ा यह कि इतना सब हो चुकने पर भी स्त्री तैयार न हो पायेगी...

रामेश्वर : (ज़ोर से हँसता है।) मालती, जीवन में आज पहली बार इंटेलिजेंट बात कही है तुमने ! ज़रा इसी बात पर बाहर तो आ जाओ...

मालती : यह लीजिये आ गयी।

[सुन्दर और कीमती रेशमी कपड़ों में आवृत्त मालती दाहिनी ओर से आती है। रामेश्वर उसे देखता रहता है। मालती लजा जाती है।]

मालती : (लजाये स्वर में) ऐसे क्या देख रहे हैं ?

रामेश्वर : (मुसकराकर) कुछ नहीं। कभी-कभी पुरानी आदतें याद आ जाती हैं।

मालती : (लजाकर) अच्छा, बैठ तो जाइए ! आपको खड़े रहने की सज़ा

किसने दी है ?

रामेश्वर : (बैठते हुए) यों ही। तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। तुम भी तो बैठो।

मालती : लीजिये। (सोफे पर बैठ जाती है।)

रामेश्वर : (मालती की ओर देखते हुए) अच्छा, तो 'नवजोती फिल्म्स' के डायरेक्टर ने तुम्हें अपनी इसी पिक्चर में एक साइड-रोल दे दिया है।

मालती : हाँ···मिसेज कांतावाला के बहुत कहने पर ही वे राज़ी हुए···बात यह है कि उनकी कास्टिंग हो चुकी है।

रामेश्वर : ओ !···तो जो रोल तुम करने जा रही हो, वह पहले कौन कर रहा था ?

मालती : कोई मिस अंजलि मेहता थीं···अब उनकी जगह मैं यह रोल करूँगी। डायरेक्टर साहब कह रहे थे कि इस पिक्चर में तो रोल बहुत छोटा है, लेकिन अगली पिक्चर में उन्होंने मुझे बड़ा रोल देने का प्रॉमिज़ किया है।

रामेश्वर : (हँसकर) हाँ, अगर उनकी अगली पिक्चर बनी तो···

मालती : (बात काटकर) क्या मतलब ?

रामेश्वर : भई, इस लाइन का क्या भरोसा···? खैर, आखिर डायरेक्टर साहब ने क्या कहा ?

मालती : उन्होंने कहा था कि वे आज अपने प्रोडक्शन-मैनेजर को यहाँ भेजेंगे, ताकि वह कुछ ज़रूरी जानकारी हासिल कर ले और मुझसे इस पिक्चर के लिए टर्म्ज़ आदि तय कर ले···

रामेश्वर : (स्वर में किंचित् आश्चर्य है।) टर्म्ज प्रोडक्शन-मैनेजर तय करता है ?···

मालती : हां। बात यह है कि प्रोडक्शन-मैनेजर, पिक्चर के फनांसर सेठ बुलाकी-दास दामोदरमल का खास आदमी है। सेठजी उसी को मानते हैं। अगर प्रोडक्शन-मैनेजर मुझ से इम्प्रेस हो जाय और सेठजी से मेरे फेवर में बात करे, तो मेरे चान्सेज़ बड़े स्ट्रांग हो जाते हैं···

रामेश्वर : यानी ?···

मालती : यानी इस पिक्चर में भी अच्छे पैसे मिल जायेंगे और अगली पिक्चर में तो हो सकता है कि मुझे ही हीरोइन ले लिया जाय···

रामेश्वर : और इस तरह तुम्हारी किस्मत जाग उठेगी !

मालती : साथ में तुम्हारी नहीं ?

रामेश्वर : हाँ, अब तो मेरी-तुम्हारी किस्मतें जुड़ गयी हैं···(मुसकराकर) चलो, यह सौभाग्य भी विरलों को ही नसीब होता है।

मालती : (कुछ आश्चर्य से) कौन-सा सौभाग्य ?

रामेश्वर : पत्नी के टिकट पर ख्याति पाना···

मालती : (उठ खड़ी होती है।) अच्छा, अब बातें बनाना छो[illegible] कीजिए।

रामेश्वर : (फुर्ती से उठ खड़ा होता है।) आज्ञा दीजिए, क्या काम है ?

मालती : (व्यग्र स्वर में) जरा देखना, चाय और खाने का सब सामान तैयार हैं न

रामेश्वर : इतनी छोटी-छोटी बातों की चिन्ता कर अपना यह सुन्दर शरीर घुल लगोगी तो फिर हीरोइन कैसे बनोगी ?

मालती : तुम्हें तो हमेशा मजाक ही सूझता रहता है।

रामेश्वर : हमेशा नहीं, तुम्हें देखकर ही !

मालती : अच्छा, इस वक्त रहने दो। जरा देख लो, सब चीजें ठीक हैं न ?

रामेश्वर : हाँ, सब ठीक हैं। सिर्फ चिवड़ा अभी तक तैयार नहीं हुआ।

मालती : (चिढ़े स्वर में) दो घंटे हो गये हैं, अभी तक तैयार नहीं हुआ ! भगवान बहुत सुस्त है।

रामेश्वर : (हँसकर) क्या करे बेचारा, इस नाम के सभी जीव-जन्तु सुस्त होते है

मालती : (चिढ़कर) तुम हमेशा उसका पक्ष लेते हो, क्या बात है ?

रामेश्वर : भाई, मैं आस्तिक हूँ। भगवान का पक्ष न लूँ ?...और फिर इस वम में भगवान...मेरा मतलब है नौकर—मिलते कहाँ हैं ?

मालती : (घड़ी की ओर देखती हुई) यह घड़ी भी कमबख्त सुस्त हो गयी है कितने धीरे-धीरे चल रही है।

रामेश्वर : आज तो तुम्हें सभी चीजें सुस्त दीखेंगी। आज तुम्हारा दिल जो बल्लि उछल रहा है।

मालती : तुम्हारी घड़ी में क्या टाइम है ?

रामेश्वर : दीवार-घड़ी ठीक है। दोनों घड़ियों में एक ही टाइम है—पाँच ब में दो मिनट।

मालती : ओह ! अभी तक दो मिनट बाकी हैं।

रामेश्वर : (हँसकर) कहो तो घड़ी की सूई आगे सरका दूं ! अभी पांच बज जायें

मालती : (अचानक) सुनो जी, जैसे-जैसे घड़ी की सूई आगे सरक रही है, मेरा दि घबरा रहा है। कुछ नर्वसनेस मालूम हो रही है। क्या करूं ?

रामेश्वर : (हँसकर) नौशादर की शीशी सूंघ लो। तबीयत झक हो जायेगी।

मालती : फिर मजाक ! बड़े बेरहम हो !

रामेश्वर : अच्छा, मुझे एक बात तो बता दो। वह जो तुम्हारे प्रोडक्शन-मैने साहब आने वाले हैं न, उनके सामने मुझे क्या करना होगा ?

मालती : कुछ नहीं। आराम से राइटिंग-टेबल पर कुछ पढ़ते-लिखते रहना। लोग (सोफे की ओर इशारा कर) यहाँ बातें करते रहेंगे।

रामेश्वर : ठीक है। (अचानक) हाँ, मालती, यह तो बताओ कि मिस्टर. कोलम का सही नाम क्या है ?

मालती : (साश्चर्य) कोलम्बस !

रामेश्वर : हाँ-हाँ, जिन्होंने तुम्हारी डिस्कवरी की है—यानी जिनकी तुम नयी ख हो ?

मालती : ओह ! (हँसती है ।) उनका नाम मिस्टर जाधवराव है।
रामेश्वर : (हँसता है, फिर घड़ी की ओर देखकर) लो, पांच भी बज गये ।
मालती : (आकुलता से) अब प्रोडक्शन मैनेजर साहब आने ही वाले होंगे ।
रामेश्वर : (मुसकराकर) हां, अगर उनकी घड़ी में भी पांच बज गये होंगे तो !
मालती : (बाएँ दरवाजे तक जाती है, सहसा मुड़ती है ।) अच्छा जी, तुमने मेरे नये फोटोग्राफ्स देखे ?
रामेश्वर : वे जो तुमने फिल्म के इस इण्टरव्यू के लिए खिचवाये हैं ?
मालती : हां ।
रामेश्वर : नहीं, तुमने दिखाये ही नहीं ।
मालती : अभी लो···(चंचलता से) जरा बताना, कैसे हैं ? (राइटिंग-टेबल की ड्राअर में से लिफाफा लाती है ।) लो, ये देखो···
रामेश्वर : (लिफाफे में से तसवीरें निकालता है, देखते हुए) हुं···गुड !···वेरी गुड !···स्टूडियो शां-ग्रीला में खिचवाये हैं न ?
मालती : (चेहरे पर प्रसन्नता है ।) हां ।
रामेश्वर : (एक फोटो देखते हुए) अच्छा ! इस फोटो में आपने हाथ में फूल भी ले रखा है ! यह किसलिए, साहब ?
मालती : जिससे फोटो में स्वाभाविकता आ जाय ।
रामेश्वर : (हँसता है ।) ओह ! मैं तो समझा था कि···
मालती : क्या ?
रामेश्वर : कि फोटो में खुशबू आ जाय ! (धीमी हँसी) नहीं साहब, ये तीनों पोज अच्छे हैं ।
मालती : (प्रसन्न स्वर में, लेकिन बनती हुई) भई, मुझे तो यह पोज पसन्द नहीं ।
रामेश्वर : क्यों ? इसमें क्या खराबी है ?
मालती : देखो न···इसमें मेरी नाक कितनी छोटी है !
रामेश्वर : (हँसकर) क्या हर्ज है ? साल-दो साल में अपने आप बड़ी हो जायेगी ।
मालती : (बनकर) तुम फिर मजाक कर रहे हो !
रामेश्वर : नहीं, सीरियसली कह रहा हूं । इस फोटो में तो मुझे दूसरा ही डिफेक्ट नजर आता है ।
मालती : क्या ?
रामेश्वर : तुमने जो गले में हार पहन रखा है वह इतना बढ़िया है कि सारा ध्यान तो वही खींच लेता है । हुआ यह है कि इस फोटो में यह हार फोरग्राउंड में आ गया है और तुम्हारा चेहरा बैकग्राउंड में चला गया है ।
मालती : (खीजकर) अच्छा, लाइए फोटोग्राफ्स ! मेरी गलती थी, जो मैंने आपको दिखाये ।

[रामेश्वर हँसता है। सहसा कॉल-बेल बजती है।]

मालती : (मुदित स्वर में) लो, वे आ गये हैं, मालूम पड़ता है।
रामेश्वर : ये फोटो कहाँ रखूं ?
मालती : उधर डाल दो न मेज पर। (आवाज देती है।) भगवान! ओ भगवान
भगवान : (अन्दर से) जी बीबीजी! (चिवड़े की तश्तरी लिये भागा चला आता है।)···जी बीबीजी!
मालती : देख, दरवाजे पर जो साहब हैं, उन्हें अन्दर ले आ।
भगवान : अच्छा जी, बीबी जी! (बायीं ओर जाने लगता है।)
मालती : गधे, वह चिवड़े की तश्तरी हाथ में लिये बाहर कहाँ जा रहा है ? उसे यहीं रख दे न!
भगवान : ओह! गलती हो गयी, बीबीजी। (तश्तरी मेज़ पर रखता है।)
मालती : जल्दी जा।
भगवान : (जाते हुए) जा रहा हूँ, बीबीजी।
मालती : (सहसा) अरे भगवान, सुनो, सुनो।
भगवान : (वापस आकर) जी बीबी जी!
मालती : एकदम दरवाज़ा मत खोल। पहले झिरमिरी में से झाँककर देख आ कि कौन साहब हैं बाहर।
भगवान : अच्छा, बीबीजी। (बाहर चला जाता है।)
रामेश्वर : क्यों, इस बात का क्या मतलब ?
मालती : थोड़ी सावधानी बरतने में क्या हर्ज है ? यह भी तो हो सकता है कि यह कॉल-बेल प्रोडक्शन-मैनेजर साहब की बजाय हमारे किसी परिचित या मित्र ने बजायी हो।
रामेश्वर : (सोचता-सा) वैसे आज किसी के आने की बात तो नहीं थी।
मालती : अजी, ये मित्र या परिचित लोग पहले से टाइम तय करके थोड़े ही आया करते हैं ?

[भगवान भागा-भागा आता है।]

भगवान : बीबी जी, एक मोटे-से साहब दरवाजे पर खड़े हैं।
रामेश्वर : मोटे-से साहब ?
मालती : मोटे-से साहब! (रामेश्वर को देखती हुई) हमारे जानकारों में तो कोई मोटे-से साहब हैं नहीं। यकीनन वे प्रोडक्शन-मैनेजर ही हैं। जा, भागता हुआ जा और उन्हें फौरन अन्दर ले आ।
भगवान : (भागता जाता है।) अच्छा जी···
मालती : (डाँटते स्वर में) तुम अब यहाँ इस तरह मत खड़े रहो। वहाँ कुर्सी पर बैठ जाओ। 'फिल्मफेयर' पड़ा है, उसे देखते रहो। (रामेश्वर बिना कुछ बोले कुर्सी की ओर बढ़ता है।) पर तुम अपना कॉलर तो ठीक कर लो। (रामेश्वर अपना कॉलर ठीक करने लगता है।) लेकिन पहले ज़रा तुम मेरा जूड़ा ठीक कर दो!

[रामेश्वर अपना कॉलर वैसे ही छोड़ मालती का जूड़ा ठीक करने लगता है ।]

रामेश्वर : (ठीक करके) यह लो···

मालती : अब ठीक है न ?···

रामेश्वर : (मुसकराकर) फर्स्ट क्लास !

मालती : (धीमे स्वर में) सुनो जी, मैं कैसी लग रही हूँ ?

रामेश्वर : (उसको बाँहों में लेने का प्रयास करते हुए) सुनना चाहती हो तो···

मालती : (अपने को रामेश्वर की बाँहों से छुड़ाते हुए) छोड़ो जी ! देखो, वे आ गये हैं ।

[भगवान के साथ एक मोटे-से साहब अन्दर पधारते हैं । रामेश्वर मालती को मुक्त कर देता है । मालती उन सज्जन को देख, निराशा से रामेश्वर की ओर देखती है ।]

मालती : (नमस्ते करती हुई) नमस्ते, अभिमन्यु जी !

अभिमन्यु : (हाथ जोड़ नमस्ते करता है ।) नमस्ते, मालती जी !

मालती : आइए, आइए । इधर बैठिए ।

अभिमन्यु : (बैठता हुआ) धन्यवाद ! (रामेश्वर की ओर इशारा कर) आप शायद देवटिया साहब हैं ?

मालती : (मुसकराकर) जी हाँ !

[रामेश्वर अभिमन्युजी को नमस्ते करता है ।]

रामेश्वर : (अभिमन्यु की ओर संकेत कर) मालती, आपकी तारीफ ?

मालती : ओह ! आप हैं श्री अभिमन्यु पांडे—'माहीम आर्ट थियेटर' के सेक्रेटरी । स्वयं भी बहुत अच्छे अभिनेता हैं । पिछले वर्ष क्लब की ओर से जो 'उत्तरा अभिमन्यु' नाटक हुआ था न···

रामेश्वर : हाँ-हाँ···

मालती : उसमें अभिमन्यु का पार्ट आप ही ने किया था ।

रामेश्वर : (मुसकराकर) ओह ! साहब, बड़ी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर । कहिए, आज हम पर कैसे कृपा की ?

अभिमन्यु : (मुसकराकर) अजी, कृपा कैसी ? अपने स्वार्थ से आया हूँ । मालती जी को फिर कष्ट देना है ।

मालती : किस बात के लिए ?

अभिमन्यु : इस बार 'माहीम आर्ट थियेटर' की तरफ से 'चट्टान' ड्रामा खेला जा रहा है । मिस्टर रायमोहन ही डायरेक्ट कर रहे हैं । कल एक स्पेशल मीटिंग कर, हमने उसकी कास्टिंग कर ली थी । लीडिंग रोल आप कर रही हैं । इस बुधवार को छह बजे उसकी पहली रिहर्सल है—गोखले हॉल, बी. बी. सी. आई. दादर में । आपको आना है ।

मालती : माफ कीजिए, मैं न आ सकूँगी ।

अभिमन्यु : (घबराये स्वर में) क्यों, आपकी तबीयत तो ठीक है ?

मालती : जी हाँ, तबीयत तो ठीक है। पर मैं ड्रामे में पार्ट न कर सकूँगी।

अभिमन्यु : (साश्चर्य) यह आप क्या कह रही हैं, मालती जी ? हमारे पिछले ड्रामों की कामयाबी में आपका बहुत बड़ा हाथ रहा है। आपके भरोसे पर ही हमने इस बार इतना मुश्किल ड्रामा चुना है। मिस्टर रायमोहन की तो शुरू ही से यह राय थी।

मालती : आप मिस्टर रायमोहन को मेरा धन्यवाद कह दीजिएगा और मेरी ओर से माफी माँग लीजिएगा।

अभिमन्यु : पर ड्रामे में काम न करने की वजह तो बता दीजिए। क्या हम लोगों से कोई गलती हो गयी है ?

मालती : जी नहीं। बात यह है कि मुझे एक फिल्म में काम मिल गया है। अगले महीने से उस फिल्म की शूटिंग है। मैं दो नावों में न चल सकूँगी।

अभिमन्यु : (हताश स्वर में) तो आपने भी फिल्म ज्वायन कर ली ? खैर ! ···किस पिक्चर में काम कर रही हैं आप ?

मालती : पिक्चर का नाम तो नहीं मालूम। पर उसे नवजोती फिल्म कम्पनी प्रोड्यूस कर रही है।

अभिमन्यु : (साश्चर्य) नवजोती फिल्म कम्पनी ! पर मालती जी, नवजोती की एक अभिनेत्री तो हमारे ड्रामे में भी काम कर रही हैं। बहुत कोशिश कर रही हैं बेचारी कि हीरोइन का रोल मिल जाय उन्हें। कल ही आयी हैं।

मालती : (कौतूहलपूर्वक) क्या नाम है उनका ?

अभिमन्यु : मिस अंजलि मेहता।

मालती : (प्रसन्न होकर) जरूर कोशिश कर रही होंगी ! उस पिक्चर में जो रोल वे करने वाली थीं, वह अब मैं कर रही हूँ। अब बेचारी स्टेज पर काम न करेंगी तो क्या करेंगी ?

अभिमन्यु : अच्छा !

मालती : जी हाँ ! खैर, आप अपने ड्रामे में मेरा रोल उन्हें दे दीजिये।

अभिमन्यु : जी, मजबूरी में यह तो करना ही होगा। वैसे तो ज्यादा अच्छा यही होता कि आप ही हीरोइन का रोल करतीं।

मालती : मैंने अपनी मजबूरी आपको बतला दी, अभिमन्यु साहब। (खड़ी हो जाती है।)

अभिमन्यु : (खड़े होते हुए) आप एक बार और सोच लीजिएगा, मालती जी। मैं टेलीफोन नम्बर छोड़े जाता हूँ। अगर आपकी राय बदल जाय तो मिस्टर रायमोहन को रिंग कर लीजिएगा।

मालती : नहीं। उसकी कोई जरूरत नहीं, अभिमन्यु साहब। मैंने अच्छी तरह सोच-कर ही आपको इनकार किया है।

अभिमन्यु : (विवशता से) जैसी आपकी इच्छा, मालती जी। आपसे प्रार्थना करन

मेरा कर्तव्य था। उसका मैंने पालन किया।

मालती : आपको निराश करते हुए मुझे भी दुःख हो रहा है।

अभिमन्यु : नहीं जी, कोई बात नहीं। अच्छा, तो मैं चलूंगा, नमस्ते···नमस्ते···

मालती : नमस्ते।

[अभिमन्यु जाता है।]

रामेश्वर : (अभिमन्यु की पीठ से) नमस्ते! (मालती के निकट आता हुआ) टेलीफोन नम्बर तो रख लिया होता, मालती।

मालती : क्या जरूरत थी, जब मैं इस ड्रामे में काम ही नहीं कर रही! एक साथ तो मैं दो जगह कंसेंट्रेट नहीं कर सकती!

रामेश्वर : तो भी। नम्बर रख लेने में हर्ज ही क्या था? वक्त-जरूरत काम आता।

मालती : जी हां। टेलीफोन नम्बर न हुआ, गोया किसी अफसर का टेस्टिमोनियल हो गया जो वक्त-जरूरत काम आता।

[कॉल-बेल फिर बजती है।]

मालती : देखो, घंटी बजी है। इस बार जरूर प्रोडक्शन-मैनेजर ही हैं।

रामेश्वर : भगवान को भेजकर पहले मालूम कर लो। कहीं धोखा न खाना पड़े।

मालती : भगवान···भगवान!

[भगवान इस बार अन्दर, दायीं ओर से नहीं, बायीं ओर से भागा हुआ आता है।]

भगवान : जी बीबी जी, एक कोट-पतलूनधारी सज्जन हैं। हाथ में चमड़े का बैग है।

मालती : (घबराकर) जरूर प्रोडक्शन-मैनेजर हैं! (बेताबी से) जा, बुला ना जल्दी। (रामेश्वर से) तुम जरा मेरा जूड़ा ठीक कर दो। बार-बार ढीला हो जाता है। (रामेश्वर मुसकराकर जूड़ा ठीक करने लगता है।) बस-बस, देखो वह आ रहे हैं।

[कोट-पतलूनधारी एक सज्जन का प्रवेश। हाथ में चमड़े का पोर्टफ़ोलियो है। अन्दर आते ही ठिठक जाते हैं। भगवान अन्दर चला जाता है।]

आगन्तुक : नमस्ते। जी, श्रीमती मालती देवटिया आप ही हैं न?

मालती : (घबराहट में साड़ी का पल्लू ठीक करते और नमस्कार के लिए हाथ उठाते हुए) जी हां। आप···

आगन्तुक : जी, मैं नवजोती···

मालती : (बात काटकर) मैं समझ गयी। आइए, बैठिए। ये हैं मेरे पति रामेश्वर देवटिया। 'मातृभूमि' में सर्कुलेशन-मैनेजर हैं।

आगन्तुक : नमस्ते। (बैठता है।) बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर।

रामेश्वर : मुझे भी बहुत खुशी हुई।

मालती : जरा आप भगवान से कह दीजिएगा। चाय यहीं ले आये।

रामेश्वर : हाँ-हाँ। अभी लो। (अन्दर जाता है।)

आगन्तुक : अजी, रहने दीजिए। तकलीफ क्यों करती हैं ?

मालती : इसमें तकलीफ की क्या बात है ? यह तो चाय का ही टाइम है। वैसे आपको कोई आपत्ति तो नहीं है ? चाय पीते हैं न ?

आगन्तुक : बहुत। हमारा तो काम ही ऐसा है कि चाय का सहारा लेना पड़ता है।

मालती : जी हाँ, आपको डे-नाइट वर्क जो करना पड़ता है।

आगन्तुक : (हँसता-सा) जी हाँ, जिंदा रहने के लिए करना ही पड़ता है।

मालती : और देखिए, लोग समझते हैं कि आपकी लाइन में लोग हजारों-लाखों कमाते हैं। यह कोई नहीं देखता कि उसके पीछे कितनी कड़ी मेहनत छिपी रहती है।

आगन्तुक : बात यह है जी, लोग दूसरों के काम को बहुत अच्छा और आसान समझते हैं।

मालती : जी, यही बात है, गो मैं ऐसा नहीं समझती। लीजिए, चाय आ गयी··· हाँ, यहीं रख दो।

[भगवान चाय तथा खाने का सामान एक ट्रे में लेकर प्रवेश करता है और ट्रे को छोटी मेज़ पर रख, अन्दर जाता है। मालती चाय बनाना आरम्भ करती है।]

आगन्तुक : सुना है मिसेज़ देवटिया, आप अभिनय बहुत अच्छा करती हैं।

मालती : (शरमाती हुई) अजी, कहाँ ? बस यूं ही, मामूली-सा···लीजिए, चाय लीजिए।

आगन्तुक : (चाय का प्याला लेते हुए) धन्यवाद ! मिसेज़ कांतावाला आपकी बहुत प्रशंसा करती थीं।

मालती : (कुछ आश्चर्य से) आप भी मिसेज़ कांतावाला को जानते हैं ?

आगन्तुक : (साश्चर्य) क्यों, मुझे आपसे मिलने के लिए···

मालती : (बात काटकर) ओह, मैं समझ गयी···मिसेज कांतावाला की बहुत मेहरबानी है मुझ पर। यह सब जो हो रहा है, उन्हीं की कृपा है।

आगन्तक : जी हाँ।

मालती : देखिए, मुझे अच्छी एक्टिंग के लिए सबसे पहला मैडल मिसेज़ कांतावाला ने ही दिया था। उन्हें मेरी एक्टिंग बहुत पसन्द आयी थी।

आगन्तुक : (हँसी का लहजा) ओह ! कौन-सा नाटक था ?

मालती : गोगोल के एक नाटक का हिन्दी अनुवाद था—'शाह-बादशाह'। हिन्दी में अच्छे नाटक हैं ही कहाँ ?

आगन्तुक : जी हाँ···कहाँ हुआ था यह ?

मालती : दामोदर हॉल, परेल में। देखिए, शायद उसका कोई स्टिल मेरे पास होगा। अभी दिखाती हूँ आपको···

[मालती जाती है और छोटी मेज़ से एक स्टिल निकालती है।]

मालती : (आती हुई) जी, यह देखिए। मैं मेयर की लड़की बनी हुई हूँ।

आगन्तुक : (प्रशंसात्मक स्वर में) जी, बहुत अच्छा है। आपकी ड्रेस तो उन्होंने विदेशी रखी है।

[रामेश्वर अन्दर से आता है और राइटिंग-टेबल के निकट बैठ जाता है।]

मालती : मेरी नहीं, सारी कास्ट की ड्रेस उन्होंने विदेशी रखी है। हिन्दुस्तानी ड्रेस में भी मेरे फोटोग्राफ्स हैं...(ऊँची आवाज़ में रामेश्वर से) जरा देखना जी, आज सुबह जो फोटो आये हैं, वे वहीं छोटी मेज पर रखे हुए हैं न?

रामेश्वर : (दूर से) देखता हूँ...हाँ, यहीं रखे हैं।

मालती : जरा इधर दे देना...(धीमी आवाज में आगन्तुक से) अभी तीन-चार दिन पहले ही खिचवाये हैं—स्टूडियो शां-ग्रीला में।

रामेश्वर : यह लो। (लिफाफा मेज़ पर रख देता है।)

मालती : (उत्साहभरे स्वर में) जी, यह देखिए—तीनों पोज हैं—फ्रण्ट, प्रोफ़ाइल और फुल फ़िगर।

आगन्तुक : (प्रशंसात्मक स्वर में) जी, बहुत अच्छे हैं···बहुत ही अच्छे हैं। सच मानिए, मिसेज़ देवटिया, मैं झूठी प्रशंसा नहीं कर रहा हूँ।

मालती : बहुत-बहुत धन्यवाद। आपका क्या खयाल है? मेरा फेस फोटोजेनिक है या नहीं?

आगन्तुक : (हिचकिचाहट के साथ) अब देखिए, मैं इस सिलसिले में क्या कह सकता हूँ? यह तो···

मालती : (बात काटकर) मैं समझ रही हूँ। पर तब भी···(टोन बदलकर) अरे आपने चिवड़ा तो लिया ही नहीं? लीजिए न। बिलकुल ताज़ा है।

आगन्तुक : धन्यवाद। इतना खा लिया है कि अब तो बिलकुल भी गुंजाइश नहीं रही है। (लेकिन खाये निरन्तर जा रहे हैं।)

मालती : अजी, क्या खाया है आपने? सारी प्लेटें ज्यों-की-त्यों रखी हैं।

[हालांकि प्लेटें लगभग खाली हो चली हैं।]

आगन्तुक : (हँसने का अभिनय) नहीं जी, बहुत हो गया है। (रूमाल से मुंह पोंछकर) मेरा खयाल है अब उस सिलसिले में भी कुछ बातचीत कर ली जाय जिसके लिए मैं यहाँ आया हूँ।

मालती : (प्रसन्न स्वर में) ओह! अवश्य। आप कांट्रैक्ट-फार्म तो अभी अपने साथ नहीं लाये होंगे?

आगन्तुक : (सोचता हुआ) कांट्रैक्ट फार्म? ओह, आपका मतलब [illegible] फार्म से है। वह तो मैं लाया हूँ। बैग में है। हमारा प्रो[illegible] नहीं देखा होगा?

मालती : उसे देखने का सौभाग्य तो अभी प्राप्त नहीं

आगन्तुक : मैं अभी दिखाता हूँ। (बैग खोलने को

वैसे एक बात पूछना चाहता था। दस हज़ार के लिए तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी ?

मालती : (चौंककर) दस हज़ार ?

आगन्तुक : जी, दस हज़ार तो कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है। और फिर आपकी... आई मीन पोज़ीशन को देखते हुए...

मालती : (प्रसन्न स्वर में) नहीं, अगर आप इसे ठीक समझते हैं, तब मैं क्या कह सकती हूँ ?

आगन्तुक : साहब, मेरा तो खयाल है कि कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिए।

मालती : चलिए, आप ही की बात मान ली।

आगन्तुक : और टाइम कितना रखा जाये—दस साल ?

मालती : (चौंककर) दस साल !

आगन्तुक : क्यों ? दस साल बहुत कम हैं ? पर टाइम में क्या रखा है ?...आई... मीन पन्द्रह, बीस या लाइफ लांग कर देंगे इसे...

मालती : (चौंककर) लाइफ लांग ?...मालूम होता है आप लोगों की बहुत बड़ी-बड़ी योजनाएँ हैं।

आगन्तुक : (हँसकर) जी हाँ। दूसरी कम्पनियों की अपेक्षा हमारी योजनाएँ बड़ी ही हैं। लाइफ लांग प्रपोज़ल के सिलसिले में मैं आपसे एक आवश्यक बात पूछना चाहता था, यदि आप कुछ...आई मीन...माइंड न करें।

मालती : हाँ-हाँ, पूछिए न !

आगन्तुक : देखिए, सभ्य समाज में एक महिला से इस प्रकार का प्रश्न करना... आई मीन...इंडीसेंसी समझी जायेगी, मगर ज़रूरत देखते हुए मजबूर हूँ। पूछना ही पड़ रहा है...

मालती : नहीं-नहीं, आप संकोच मत कीजिए। पूछिए न...

आगन्तुक : जी, आपकी डेट ऑफ बर्थ यानी जन्म-तिथि क्या है ?...मेरा मतलब है आपकी उम्र इस समय कितनी है ?

मालती : (शरमाती हुई) देखिए, मेरी जन्मपत्री तो खो गई है, इसलिए सही तारीख या सन् बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है। हाँ, मेरे हाई स्कूल सार्टिफ़िकेट में मेरी जन्म-तिथि १६ अक्तूबर, १९२९ लिखी हुई है, जो मेरे विचार से ठीक ही है...

आगन्तुक : यानी आपकी उम्र इस समय...

[टेलीफोन की घंटी बजती है।]

मालती : (ऊँची आवाज़ से) ज़रा देखिएगा जी, किसका फ़ोन है ?

रामेश्वर : (स्वर में थोड़ा व्यंग्य है।) वही कर रहा हूँ साहब...(पृष्ठभूमि में रिसीवर उठाकर) हैलो...जी...यह ६९१०० है...मैं रामेश्वर देवटिया बोल रहा हूँ...जी हाँ...अच्छा...लेकिन वह तो...मगर यहाँ तो...

मालती : हाँ, तो आप क्या कह रहे थे ?

आगन्तुक : मैं कह रहा था कि आपकी उमर पचीस साल सात माह बैठती है। इसके अनुसार आपके लिए यह अच्छा होगा कि आप...

रामेश्वर : (टेलीफोन रखकर, ऊँची आवाज़ में) मालती !

मालती : किसका फोन है ?

रामेश्वर : (ऊँची आवाज़ में) बताता हूं। इधर आओ !

मालती : (धीमे से) ज़रा एक मिनट मुझे माफ कीजिएगा। (रामेश्वर के निकट जाती है।)

आगन्तुक : हाँ-हाँ, अवश्य ! (चिवड़े की प्लेट की ओर हाथ बढ़ाता है।)

मालती : (रामेश्वर के निकट) क्या बात है ? किसका फोन था ?

रामेश्वर : नवजोती फिल्म कम्पनी के प्रोडक्शन-मैनेजर का !

मालती : (साश्चर्य) नवजोती के प्रोडक्शन-मैनेजर का ! लेकिन यह...

रामेश्वर : पहले पूरी बात तो सुनो। उसने फोन पर कहा है कि उसे दिए हुए टाइम पर न पहुँच पाने का बहुत अफसोस है। उसे इस बात का भी अफसोस है कि वह कभी यहाँ न आ सकेगा क्योंकि कुछ मजबूरियाँ ही ऐसी हो गयी हैं। सेठ बुलाकीदास दामोदरमल को शेयर बाज़ार में जबरदस्त घाटा पड़ा है। वे दिवालिया हो गये हैं और फिल्म तो क्या, बीवी-बच्चों को भी फनांस करने लायक नहीं रहे। वह फिल्म और फिल्म कम्पनी सब ठप्प हो गयी है।

मालती : (आवेश में) यह गलत है···ऐसा कैसे हो सकता है ?···किसी ने हमारे साथ मज़ाक किया है···

रामेश्वर : मज़ाक कौन करेगा ? किसे ऐसी जरूरत पड़ी है ?

मालती : लेकिन...लेकिन नवजोती के प्रोडक्शन-मैनेजर तो ये बैठे हैं।

रामेश्वर : इनकी शक्ल पर लिखा हुआ तो है नहीं !

मालती : तो···तो ये साहब कौन हैं ?

रामेश्वर : पूछ लो इन्हीं से।

[मालती आगन्तुक के निकट आती है।]

मालती : क्यों साहब, क्या आप नवजोती फिल्म कम्पनी के प्रोडक्शन-मैनेजर नहीं हैं ?

आगन्तुक : (साश्चर्य) नवजोती फिल्म कम्पनी ?...(प्लेट हाथ में ही लिये खड़ा हो जाता है।) जी नहीं। मैं नवजोती इंश्योरेंस कम्पनी का एजेन्ट हूँ। मिसेज़ कांतावाला ने मुझे आपकी इंश्योरेंस के लिए भेजा था।

मालती : (सक्रोध) आपने पहले ही क्यों नहीं कहा ?

आगन्तुक : आपने कहने का मौका ही कहां दिया ?

मालती : आपको मौका निकालना चाहिए था।

आगन्तुक : मैंने···आई मीन...कोशिश तो बहुत की थी...मगर...

मालती : (बात काटकर) मगर-वगर कुछ नहीं, साहब। आप ठीक बात तो कर

वैसे एक बात पूछना चाहता था। दस हज़ार के लिए तो आपको कोई आपत्ति नहीं होगी ?

मालती : (चौंककर) दस हज़ार ?

आगन्तुक : जी, दस हज़ार तो कोई बहुत बड़ी रकम नहीं है। और फिर आपकी. आई मीन पोज़ीशन को देखते हुए···

मालती : (प्रसन्न स्वर में) नहीं, अगर आप इसे ठीक समझते हैं, तब मैं क्या व सकती हूँ ?

आगन्तुक : साहब, मेरा तो खयाल है कि कम-से-कम इतना तो होना ही चाहिए।

मालती : चलिए, आप ही की बात मान ली।

आगन्तुक : और टाइम कितना रखा जाये—दस साल ?

मालती : (चौंककर) दस साल !

आगन्तुक : क्यों ? दस साल बहुत कम हैं ? पर टाइम में क्या रखा है ?...आई. मीन पन्द्रह, बीस या लाइफ लांग कर देंगे इसे...

मालती : (चौंककर) लाइफ लांग ?···मालूम होता है आप लोगों की बहुत बड़ बड़ी योजनाएँ हैं।

आगन्तुक : (हँसकर) जी हाँ। दूसरी कम्पनियों की अपेक्षा हमारी योजनाएँ व ही हैं। लाइफ लांग प्रपोज़ल के सिलसिले में मैं आपसे एक आवश्य बात पूछना चाहता था, यदि आप कुछ···आई मीन···माइंड न करें।

मालती : हाँ-हाँ, पूछिए न !

आगन्तुक : देखिए, सभ्य समाज में एक महिला से इस प्रकार का प्रश्न करना. आई मीन...इंडीसेंसी समझी जायेगी, मगर ज़रूरत देखते हुए मजबू हूँ। पूछना ही पड़ रहा है...

मालती : नहीं-नहीं, आप संकोच मत कीजिए। पूछिए न...

आगन्तुक : जी, आपकी डेट ऑफ बर्थ यानी जन्म-तिथि क्या है ?···मेरा मतलब आपकी उम्र इस समय कितनी है ?

मालती : (शरमाती हुई) देखिए, मेरी जन्मपत्री तो खो गई है, इसलिए सही तारी या सन् बताना मेरे लिए सम्भव नहीं है। हाँ, मेरे हाई स्कूल सार्टिफ़िके में मेरी जन्म-तिथि १६ अक्तूबर, १९२९ लिखी हुई है, जो मेरे विचार ठीक ही है...

आगन्तुक : यानी आपकी उम्र इस समय...

[टेलीफोन की घंटी बजती है।]

मालती : (ऊँची आवाज़ से) ज़रा देखिएगा जी, किसका फ़ोन है ?

रामेश्वर : (स्वर में थोड़ा व्यंग्य है।) वही कर रहा हूँ साहब···(पृष्ठभूमि में रिसी वर उठाकर) हैलो...जी...यह ६६१०० है...मैं रामेश्वर देवटिया बो रहा हूँ...जी हाँ...अच्छा...लेकिन वह तो...मगर यहाँ तो...

मालती : हाँ, तो आप क्या कह रहे थे ?

आगन्तुक : मैं कह रहा था कि आपकी उमर पचीस साल सात माह बैठती है। इसके अनुसार आपके लिए यह अच्छा होगा कि आप...

रामेश्वर : (टेलीफोन रखकर, ऊँची आवाज़ में) मालती !

मालती : किसका फोन है ?

रामेश्वर : (ऊँची आवाज में) बताता हूं। इधर आओ !

मालती : (धीमे से) ज़रा एक मिनट मुझे माफ कीजिएगा। (रामेश्वर के निकट जाती है।)

आगन्तुक : हाँ-हाँ, अवश्य ! (चिवड़े की प्लेट की ओर हाथ बढ़ाता है।)

मालती : (रामेश्वर के निकट) क्या बात है ? किसका फोन था ?

रामेश्वर : नवजोती फिल्म कम्पनी के प्रोडक्शन-मैनेजर का !

मालती : (साश्चर्य) नवजोती के प्रोडक्शन-मैनेजर का ! लेकिन वह...

रामेश्वर : पहले पूरी बात तो सुनो। उसने फोन पर कहा है कि उसे दिए हुए टाइम पर न पहुंच पाने का बहुत अफसोस है। उसे इस बात का भी अफसोस है कि वह कभी यहाँ न आ सकेगा क्योंकि कुछ मजबूरियां ही ऐसी हो गयी हैं। सेठ बुलाकीदास दामोदरमल को शेयर बाज़ार में जबरदस्त घाटा पड़ा है। वे दिवालिया हो गये हैं और फिल्म तो क्या, बीवी-बच्चों को भी फनांस करने लायक नहीं रहे। वह फिल्म और फिल्म कम्पनी सब ठप्प हो गयी है।

मालती : (आवेश में) यह गलत है···ऐसा कैसे हो सकता है ?···किसी ने हमारे साथ मज़ाक किया है···

रामेश्वर : मज़ाक कौन करेगा ? किसे ऐसी जरूरत पड़ी है ?

मालती : लेकिन...लेकिन नवजोती के प्रोडक्शन-मैनेजर तो ये बैठे हैं।

रामेश्वर : इनकी शक्ल पर लिखा हुआ तो है नहीं !

मालती : तो···तो ये साहब कौन हैं ?

रामेश्वर : पूछ लो इन्हीं से।

[मालती आगन्तुक के निकट आती है।]

मालती : क्यों साहब, क्या आप नवजोती फिल्म कम्पनी के प्रोडक्शन-मैनेजर नहीं हैं ?

आगन्तुक : (साश्चर्य) नवजोती फिल्म कम्पनी ?...(प्लेट हाथ में ही लिये खड़ा हो जाता है।) जी नहीं। मैं नवजोती इंश्योरेंस कम्पनी का एजेन्ट हूं। मिसेज़ कांतावाला ने मुझे आपकी इंश्योरेंस के लिए भेजा था।

मालती : (सक्रोध) आपने पहले ही क्यों नहीं कहा ?

आगन्तुक : आपने कहने का मौका ही कहां दिया ?

मालती : आपको मौका निकालना चाहिए था।

आगन्तुक : मैंने···आई मीन...कोशिश तो बहुत की थी...मगर...

मालती : (बात काटकर) मगर-वगर कुछ नहीं, साहब। आप ठीक बात तो कह

नहीं रहे हैं, 'आई मीन, आई मीन' करते जा रहे हैं। आपको सबसे पहले अपना कार्ड देना चाहिए था।

आगन्तुक : मेरे कार्ड छपने गये हुए हैं, नहीं तो मैं एक की जगह दो-दो कार्ड पेश करता। वही एक मजबूरी हो गई है। (प्लेट मेज़ पर रख देता है।)

मालती : आपकी मजबूरी ने मुझे कितनी बड़ी गलतफहमी में डाल दिया।

आगन्तुक : इसके लिए मुझे अफसोस है। (कुछ रुककर, इधर-उधर देखते हुए) अच्छा जी, मुझे अब आज्ञा दीजिए। काफी देर हो गयी है...मैं फिर आऊंगा। (सहसा ध्यान आ जाने पर) हाँ, चाय के लिए धन्यवाद। चिवड़ा भी बहुत अच्छा बना हुआ था...अच्छा तो नमस्ते...नमस्ते...!

रामेश्वर : (हाथ जोड़कर) नमस्ते!

[आगन्तुक खिसियायी मुसकराहट के साथ अपना बैग उठाकर प्रस्थान करता है। मालती हताश भाव से सोफे पर धम्म से गिर पड़ती है।]

मालती : (स्वर में थकान और निराशा है) ओह भगवान!...

[भगवान अन्दर से भागा-भागा आता है।]

भगवान : (निकट आकर) क्या लाऊँ, बीबी जी?

मालती : (जैसे शिकंजे में कसी जा रही हो) मेरा सिर!

रामेश्वर : (मुसकराकर) भगवान, तुम्हारी बीबीजी थक गयी हैं। चाय पिलाने में इतनी मगन रहीं कि खुद ढंग से एक प्याला भी नहीं पी सकीं। जाओ, भागकर टी-पॉट में थोड़ा गर्म पानी और ले आओ!

भगवान : जी, बहुत अच्छा।

[भगवान टी-पॉट उठाकर अंदर जाता है। रामेश्वर मुसकराकर मालती के पास बैठता है।]

रामेश्वर : (शरारत से) क्यों मालती, परसों ड्रामे की रिहर्सल में जाओगी या नहीं?

मालती : (रुआँसी) मैं कहती हूँ जी, मुझे तंग न करो।

[मालती दोनों हाथों से अपना मुँह छिपा लेती है। रामेश्वर हँसता है।]

१२
बहू की विदा

विनोद रस्तोगी

श्री विनोद रस्तोगी का जन्म सन् १९२३ में शम्साबाद, जिला फर्रुखाबाद में हुआ था। प्रारम्भिक शिक्षा शम्साबाद में पायी। हाई-स्कूल फर्रुखाबाद, इण्टर कन्नौज और बी० ए० कानपुर से किया। पहले कविताएं और कहानियां लिखते रहे, १९५० से नाटक-क्षेत्र में प्रवेश किया। अब तक अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कई पुस्तकें विभिन्न सरकारों तथा संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत भी हुई हैं। अनेक रचनाओं का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

आजकल आकाशवाणी से सम्बद्ध हैं।

रचनाएँ

'नए हाथ', 'आज़ादी के बाद', 'तूफान और तिनका', 'ठण्डी आग', 'दरारें', 'रुपया, रूप और रोटी', 'ज़िन्दगी के गीत', 'पुरुष का पाप', 'क़सम कुरान की', 'बहू की विदा,' 'निर्माण का देवता', 'काले कौवे : गोरे हंस', 'गोपा का दान,' 'भगीरथ के बेटे', 'रोटीवाली गली' आदि।

पात्र

जीवनलाल : एक धनी व्यापारी, अवस्था पचास वर्ष।
राजेश्वरी : जीवनलाल की पत्नी, अवस्था छियालीस वर्ष।
रमेश : जीवनलाल का पुत्र, अवस्था बाईस वर्ष।
कमला : रमेश की पत्नी, अवस्था उन्नीस वर्ष।
प्रमोद : कमला का भाई, अवस्था तेईस वर्ष।

कमरा आधुनिक ढंग से सजा है। सामने की ओर बाएँ कोने में रेडियो और दाएँ कोने में पुस्तकों का रैक है। कमरे के बीच में सोफा-सेट है। छोटी गोल मेज पर सुन्दर फूलदान रखा है।

कमरे में दो द्वार हैं। सामनेवाला द्वार अन्दर जाने के लिए है और बायीं ओर का द्वार बाहरी बरामदे में खुलता है। दोनों पर पर्दे पड़े हैं। दायीं ओर खिड़की है जो खुली हुई है।

पर्दा उठने पर जीवनलाल खिड़की के समीप खड़े हुए दिखाई पड़ते हैं। वे बाहर की ओर देख रहे हैं। आँखों पर चश्मा है। भरे हुए चेहरे पर बड़ी-बड़ी मूँछें हैं। सिर गंजा है। धोती-कुर्ता पहने हैं। मुख पर गंभीरता और समृद्धि के चिह्न हैं।

उनसे कुछ दूर हटकर ही प्रमोद विनम्र भाव से खड़ा है। वह पैंट और बुशर्ट पहने है। चेहरे पर निराशाजन्य करुण भाव है।

प्रमोद : (आगे बढ़कर धीमे स्वर में) क्या निर्णय किया आपने ?

जीवनलाल : विदा नहीं होगी।

प्रमोद : लेकिन जरा सोचिए तो। यदि आपने विदा नहीं की तो बहन की [illegible] दशा होगी !

जीवनलाल : मैंने उसकी दशा का ठेका नहीं लिया है!

प्रमोद : हर लड़की पहला सावन अपनी सखी-सहे[illegible] बिताने का सपना देखती है।

जीवनलाल : जानता हूँ।
[जीवनलाल सोफे पर बैठकर [illegible] प्रमोद की बातों से ऊब रहे हों।]

प्रमोद : यह जानकर भी···

जीवनलाल : अपना निर्णय सुना चुका हूँ। [illegible]

प्रमोद : यदि मैं कमला को बिना लिये [illegible] हृदय टूट जायेगा।

जीवनलाल : मैं मजबूर हूँ। अगर माँ-बहन [illegible] था तो दहेज [illegible] क्यों नहीं दिया ?

प्रमोद : (दीन स्वर में) अपनी सामर्थ्य [illegible] जितना भी हो [illegible] दे दिया। फिर भी [illegible]

जीवनलाल : (कड़े स्वर में) अगर [illegible] थी तो अपनी [illegible] घर देखते। झोपड़ी में [illegible] क्यों [illegible]

प्रमोद : (हाथ जोड़कर) जी···

जीवनलाल : (उठकर आवेश में [illegible] हुए [illegible] तो हुए, [illegible]

ठीक से नहीं की गयी। मेरे नाम पर जो धब्बा लगा, मेरी शान को जो ठेस पहुँची, भरी बिरादरी में जो हँसी हुई, उस करारी चोट का घाव आज भी हरा है। जाओ, कह देना अपनी माँ से कि अगर बेटी को विदा कराना चाहती हैं तो पहले उस घाव के लिए मरहम भेजें।

प्रमोद : जी···आप इस समय तो विदा कर दें। हम गौने में आपकी हर मांग पूरी करने की चेष्टा करेंगे।

जीवनलाल : मैंने दुनिया देखी है, प्रमोद ! ये बाल धूप में सफेद नहीं हुए हैं। और तुम···(उत्तेजित स्वर में) कल के छोकरे मुझे बेवकूफ बनाना चाहते हो !

प्रमोद : यह आप क्या कह रहे हैं ?

जीवनलाल : ठीक कह रहा हूँ। मेरा फैसला आखिरी है। विदा तभी होगी जब पाँच हज़ार नकद (दायाँ हाथ फैलाकर) इस हाथ पर रख दोगे।

प्रमोद : (आवेश में) यह तो सरासर अन्याय है। शिकायत आपको हमसे है। उस भोली-भाली लड़की ने आपका क्या बिगाड़ा है जो विदा न करके आप उससे बदला ले रहे हैं ? अगर रमेश बाबू होते···

जीवनलाल : तो वह क्या कर लेता ? मेरे सामने मुँह खोलने की हिम्मत नहीं है उसमें। वह मेरा बेटा है। तुम्हारी तरह बड़ों के मुँह लगने की बद-तमीज़ी करने वाला कोई आवारा छोकरा नहीं।

प्रमोद : (अपमान से तिलमिलाकर) बाबूजी ! बेटीवाला समझकर ही आप मेरा अपमान कर रहे हैं। किन्तु···किन्तु यह न भूलिये कि आप भी बेटी-वाले हैं।

जीवनलाल : हाँ, हम भी बेटीवाले हैं! लेकिन तुम्हारी तरह नहीं। पिछले महीने हमने भी अपनी गौरी की शादी की है। वह खातिरदारी की कि बारात वाले दंग रह गये। इतना दहेज दिया कि देखनेवालों ने दाँतों तले अँगुली दबा ली। (दर्द-मिश्रित आवेश) तुम मेरी बराबरी करोगे ? हुँ··· ···बेटीवाले···! बेटीवाले होकर भी हमारी मूँछ ऊँची है! समझे ?

प्रमोद : जी···

जीवनलाल : रमेश गया है गौरी को विदा कराने। (कलाई पर बँधी घड़ी देखकर) कुछ देर में उसे लेकर आता ही होगा। मेरी बेटी पहला सावन यहाँ बितायेगी। तुम्हारी बहन के सपने कभी पूरे नहीं होंगे और उसके सपनों के खून का दाग तुम्हारे हाथों और तुम्हारी मां के आँचल पर होगा ! समझे ?

प्रमोद : (व्यंग्य से) जो हमारी बहन है क्या वह आपकी कोई नहीं है ?

जीवनलाल : (तेजी से) बेटी और बहू को एक ही तराज़ू पर तौलना चाहते हो ? बेटी बेटी है और बहू बहू !

प्रमोद : ठीक है। जब आप अपनी जिद पर अड़े हैं तो विनती करना व्यर्थ है (रुककर धीमे स्वर में) क्या जाने से पहले एक बार बहन से मिल सकता हूँ ?

जीवनलाल : जरूर ! और हां, उसे यह भी बताते जाना कि अगली बार मेरे लिए मरहम लेकर विदा कराने कब आओगे ! (ऊँचे स्वर में) अरे, सुनती हो, गौरी की मां ! जरा बहू को भेज दो। अपने भाई से मिल ले आकर। (सहज स्वर में) मैं तब तक देखूँ कि माली के बच्चे ने झूला डाला या नहीं ! (द्वार की ओर बढ़ते हैं। द्वार का पर्दा हटाकर मुड़ते हुए) गौरी के लिए झूला डाल रहा है लॉन में।

[जीवनलाल का प्रस्थान। प्रमोद थका-सा सोफे पर बैठ जाता है। अन्दर से कमला आती है। चांद-से सुन्दर मुखड़े पर उदासी की घटा है। हाथों में लाल चूड़ियां हैं। रेशमी साड़ी-ब्लाउज पहने है। प्रमोद के पास जाकर चुपचाप खड़ी हो जाती है—सिर नीचा किये।]

प्रमोद : (भारी स्वर में) बैठ जाओ, कमला।

[कमला पास ही बैठ जाती है।]

प्रमोद : अच्छी तरह तो हो ?

[कमला सिसकने लगती है।]

प्रमोद : (आर्द्र स्वर में) पागल न बनो, कमला ! रोओ मत, मैं कहता हूं रोओ मत ! इन मोतियों का मूल्य समझने वाला यहां कोई नहीं है। पानी से पत्थर नहीं पिघल सकता !

कमला : (सिसकती हुई) भैया ! क्या···

प्रमोद : घबराओ मत ! मैं जल्दी ही फिर आऊंगा और उस बार विदा अवश्य होगी क्योंकि मैं चोट का मरहम लेकर आऊंगा।

कमला : (न समझने के ढंग से) मरहम···?

प्रमोद : हां, कमला ! हमारे व्यवहार से बाबूजी के कलेजे में घाव हो गया है। उन्हें मरहम चाहिए और उस मरहम की कीमत है पांच हजार रुपये !

[कमला चौंककर भाई की ओर देखती है।]

प्रमोद : तुम चिन्ता न करो, कमला ! मरहम का प्रबन्ध हो जायेगा। इस गिरे हाल में भी मकान सात-आठ हजार में तो बिक ही जायेगा।

कमला : (व्याकुलतापूर्ण आग्रह से) मेरी विदा के लिए घर न बेचना, भैया ! आपको मेरे सुख-सुहाग की सौगन्ध है।

प्रमोद : यह क्या कह रही हो तुम ? क्या तुम नहीं चाहतीं कि सावन सखी-सहेलियों के साथ मां के घर बिताओ ?

कमला : किस लड़की की यह कामना नहीं होगी, भैया ? लेकिन···लेकिन उस कामना की पूर्ति के लिए इतनी बड़ी कीमत चुकाना कहां त[illegible] साल-दो साल में [illegible] आपको रखना [illegible]

आकर···

प्रमोद : (बीच में ही) लेकिन तुम···

कमला : मेरी चिन्ता आप न करें। सच, विदा न होने से मुझे जरा भी दुःख न होगा।

प्रमोद : कमला···!

कमला : गौरी आ रही है। बहुत अच्छा स्वभाव है उसका। हर समय हँसती-हँसाती ही रहती है। उसके साथ रहकर मुझे सखी-सहेलियों की कमी बिलकुल नहीं अखरेगी। आप विश्वास करें, भैया।

प्रमोद : लेकिन आज नहीं तो कल रुपया तो देना ही पड़ेगा, कमला! कागज के टुकड़ों पर अपना स्नेह और प्यार बेचनेवालों के बीच तुम इस तरह कब तक रह सकोगी?

कमला : धीरे-धीरे सब ठीक हो जायेगा, भैया। माँ जी तो ममता की मूर्ति हैं ही, बाबूजी जरा जिद्दी स्वभाव के हैं। समय के साथ वे भी सब भूल जायेंगे।

प्रमोद : मुझे तो ऐसा नहीं लगता। सब एक ही धातु के बने हैं। हो सकता है, माँजी की ममता सिर्फ दिखावा हो!

[अन्दर से राजेश्वरी का प्रवेश। गोरा रंग, स्वस्थ शरीर। सफ़ेद साड़ी और ब्लाउज पहने हैं।]

राजेश्वरी : कैसा दिखावा, भैया?

[प्रमोद चौंक पड़ता है। कमला और प्रमोद उठने का उपक्रम करते हैं।]

राजेश्वरी : (दूसरे कौच पर बैठती हुई) बैठे रहो तुम लोग। (हँसकर) क्या बातें हो रही थीं भाई-बहन में?

प्रमोद : बस, कुशल-क्षेम पूछ रहा था।

राजेश्वरी : हाँ, विदा के लिए क्या कहा उन्होंने?

[प्रमोद मौन रहता है। कमला दृष्टि नीची कर लेती है।]

राजेश्वरी : समझ गयी, अपनी ज़िद के आगे तो वे किसी की सुनते ही नहीं। जब तुम्हारी चिट्ठी आयी थी तभी मना कर रहे थे। मैं तो समझाते-समझाते हार गई। क्या कहा उन्होंने?

[प्रमोद अब भी मौन है।]

राजेश्वरी : मुझसे शर्म कैसी? मेरे लिए जैसा रमेश वैसे ही तुम। बोलो, कितना रुपया चाहते हैं वे?

प्रमोद : जी···जी, रुपये की तो कोई बात नहीं हुई। वे तो···

राजेश्वरी : (बीच में ही) माँ से झूठ बोलते हो! मैं उन्हें अच्छी तरह जानती हूँ। इन्सान से ज्यादा प्यारा उन्हें पैसा है।

प्रमोद : जी···आप···

राजेश्वरी : (प्रमोद की ओर गूढ़ दृष्टि से देखती हुई) बोलो, कितना रुपया लेकर वे विदा करने को तैयार हैं ? चुप क्यों हो ? बताओ।

प्रमोद : (धीमे और उदास स्वर में) पांच हजार।

राजेश्वरी . बस ! मैं देती हूं तुम्हें रुपये। उनके मुंह पर मारकर कहना कि यह लो कागज के रंग-बिरंगे टुकड़े जिन्हें तुम आदमी से ज्यादा प्यार करते हो। (उठकर सामनेवाले द्वार की ओर बढ़ती हुई) मैं अभी लाती हूं।

प्रमोद : (उठकर) ठहरिये, मांजी।

[राजेश्वरी रुक जाती है और मुड़कर प्रमोद की ओर देखती है।]

प्रमोद : मुझे रुपये नहीं चाहिए। मैं बिना विदा कराये ही जा रहा हूं।

[कमला उसी प्रकार मूर्तिवत बैठी है।]

राजेश्वरी : (लौटती हुई) यह क्या कह रहे हो, बेटा ? मेरे रहते विदा न हो यह कभी नहीं हो सकता। मैं मां हूं, मां के दिल को समझती हूं। (भारी स्वर में) जिस तरह उतावली होकर मैं गौरी की राह देख रही हूं उसी तरह तुम्हारी मां भी कमला की राह देख रही होगी। नहीं, विदा जरूर होगी। तुम अकेले नहीं जाओगे। (कमर से कुंजियों का गुच्छा निकालकर कमला की ओर बढ़ाती हुई) जा बेटी, तिजोरी से रुपये निकाल ला।

[कमला गुच्छा लेने के लिए हाथ आगे नहीं बढ़ाती। प्रमोद खिड़की की ओर मन्द गति से बढ़ता है।]

राजेश्वरी : जाती क्यों नहीं ? (गुच्छा कमला के हाथ में थमाती हुई) जल्दी कर।

[कमला उठकर 'मांजी' कहती है और फिर सिसकने लगती है। राजेश्वरी 'मेरी बेटी' कहकर उसे हृदय से लगा लेती है। प्रमोद खिड़की से बाहर की ओर देखने लगता है।]

जीवनलाल : (बाहर से) अरे, सुनती हो ! गौरी के आने का समय हो गया और तुमने स्वागत की कोई तैयारी नहीं की !

राजेश्वरी : (कमला से) जा, बेटी ! तू अन्दर जा !

[कमला अन्दर जाती है। प्रमोद मुड़कर बाहर वाले द्वार की ओर देखता है, जिधर से जीवनलाल आते हैं।]

जीवनलाल : अरे, तुम यहां खड़ी हो ? जाकर तैयारी करो स्वागत की। जरा यह भी तो देख लें कि नाकवाले अपने बेटी का स्वागत कैसे करते हैं।

राजेश्वरी : (चिढ़कर) गालियों के अलावा कभी सीधी बात नहीं निकलती मुंह से ? जब देखो तब बेढंगी बातें !

जीवनलाल : यह लो ! इसमें कौन-सी गाली दे दी मैंने ?

राजेश्वरी : तुम समझते हो कि दुनिया में एक तुम्हीं नाकवाले हो, और सब नकटे हैं !

जीवनलाल : तुम्हें तो मेरी हर बात में बुराई ही दिखाई देती है। प्रमोद,

बताओ, मैंने कोई बुरी बात कही है ?

प्रमोद : (धीरे-धीरे आगे बढ़ता हुआ) ठीक ही कहा है आपने। आज के युग में पैसा ही नाक और मूँछ है। जिसके पास पैसा नहीं वह नाक-मूँछ होते हुए भी नकटा है, मूँछकटा है।

[नेपथ्य से हॉर्न का स्वर।]

जीवनलाल : (प्रसन्न स्वर में) आ गयी मेरी गौरी! (राजेश्वरी से) अरे, खड़ी-खड़ी मेरा मुँह क्या देख रही हो? अन्दर से मिठाई का थाल लाओ।

[राजेश्वरी उसी प्रकार खड़ी रहती है। उसकी दृष्टि बाहर वाले द्वार की ओर है। प्रमोद भी उसी ओर देख रहा है। अन्दर वाले द्वार के पर्दे की ओट में कमला खड़ी है। बाहर से उसका हाथ दिखाई पड़ रहा है। जीवनलाल बड़े उत्साह से द्वार की ओर बढ़ते हैं। तभी बाहरसे रमेश आता है। इकहरे बदन का सुन्दर नवयुवक है वह। पैंट और कमीज़ पहने है। हाथ में बरसाती कोट है। चेहरे पर उदासी के चिह्न हैं। बरसाती कोट कोच पर रखकर चुपचाप खड़ा हो जाता है।]

जीवनलाल : (बाहर वाले द्वार का पर्दा हटाकर बाहर झाँकने के बाद घबराये हुए स्वर में) गौरी कहाँ है?

रमेश : (धीमे स्वर में) वह नहीं आयी।

जीवनलाल : नहीं आयी? क्यों? तबीयत तो ठीक है उसकी?

रमेश : जी हाँ!

जीवनलाल : फिर?

रमेश : उन्होंने विदा नहीं की!

[राजेश्वरी हतप्रभ-सी कोच पर बैठ जाती है। कमला के हाथ में कम्पन होता है जिससे पर्दा भी हिल जाता है। प्रमोद बड़े ध्यान से जीवनलाल की ओर देख रहा है।]

जीवनलाल : (जैसे किसी ने छाती पर घूँसा मार दिया हो) विदा नहीं की? क्यों नहीं की विदा?

रमेश : कह रहे थे दहेज पूरा नहीं दिया गया।

जीवनलाल : (बिगड़कर) हमने तो जीवनभर की कमाई दे दी और उनकी नज़र में दहेज पूरा नहीं दिया गया। लोभी कहीं के!

राजेश्वरी : (उठकर) उन्हें क्यों भला-बुरा कह रहे हो? बेटीवाले चाहे अपना घर-द्वार बेचकर दे दें पर बेटेवालों की नाक-भौं सिकुड़ी ही रहती है।

जीवनलाल : मगर शराफत और इन्सानियत···

राजेश्वरी : (बीच में ही) अब शराफत और इन्सानियत की दुहाई देते हो। कुछ देर पहले तो···

जीवनलाल : चुप रहो तुम!

राजेश्वरी : वहुत चुप रही। अव नहीं रहूँगी। आखिर क्या कमी है वहू के दहेज में ? मगर तुम हो कि···

जीवनलाल : (अनसुनी करके) मेरी वेटी की विदा न करके उन्होंने मेरा अपमान किया है। मैं···मैं···

राजेश्वरी : तुम भी तो किसी की वेटी की विदा न करके अपमान कर रहे हो किसी का।

जीवनलाल : (चीखकर) गौरी की माँ !

राजेश्वरी : अव भी आँखें नहीं खुलीं ? जो व्यवहार अपनी वेटी के लिए तुम दूसरों से चाहते हो वही दूसरे की वेटी को भी दो। जव तक वहू और वेटी को एक-सा नहीं समझोगे, न तुम्हें सुख मिलेगा और न शान्ति !

[जीवनलाल वेचैनी से इधर-उधर टहलते हैं। वे हाथ मल रहे हैं। सिर नीचे झुका है। प्रमोद रमेश के पास जाकर खड़ा हो जाता है।]

जीवनलाल : वहू और वेटी ! वेटी और वहू !! अजीव उलझन है। कुछ समझ में नहीं आता।

राजेश्वरी : अगर हर वेटेवाला यह याद रखे कि वह वेटीवाला भी है तो सव उलझनें सुलझ जायँ।

प्रमोद : (रुककर पत्नी की ओर देखते हुए)···शायद तुम ठीक कहती हो।

कमला : (आगे वढ़कर धीमे स्वर में) अव मुझे आज्ञा दीजिये, वावूजी !

जीवनलाल : (चौंककर) ऐं...

प्रमोद : मेरी गाड़ी का समय हो रहा है। मैं जा रहा हूँ। (द्वार तक जाता है। फिर घूमकर) मैं जल्द ही फिर आऊँगा। विश्वास रखें, इस वार आपकी चोट के लिए मरहम लाना न भूलूँगा।

जीवनलाल : (दुखी स्वर में) ठहरो, प्रमोद ! मुझे और लज्जित न करो, वेटा ! मेरी चोट का इलाज वेटी की ससुरालवालों ने दूसरी चोट से कर दिया है।

प्रमोद : (लौटता हुआ साश्चर्य) वावूजी···!

जीवनलाल : (निःश्वास छोड़कर) कभी-कभी चोट भी मरहम का काम कर जाती है, वेटा। (राजेश्वरी की ओर मुड़कर) अरे, खड़ी-खड़ी हमारा मुँह क्या ताक रही हो ? अन्दर जाकर तैयारी क्यों नहीं करती ? वहू की विदा नहीं करनी है क्या ?

[कमला का हाथ पर्दे की ओट में हो जाता है। वह हर्ष के आँसू पोंछती हुई शीघ्रता से अन्दर जाती है। रमेश और प्रमोद मुसकराकर एक-दूसरे की ओर देखते हैं। जीवनलाल मन्द गति से खिड़की की ओर वढ़ते हैं और तभी धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।]

१३
चक्रव्यूह

चिरंजीत

लोकप्रिय रेडियो-रूपक 'ढोल की पोल' (झूठिस्तान) के रचयिता, प्रगति और प्यार के कवि और पुराने पत्रकार श्री चिरंजीत को सर्वाधिक ख्याति अपने नाटकों के कारण मिली है। हिन्दी के आधुनिक नाटक-साहित्य में सोद्देश्य नाटककार एवं प्रहसनकार के रूप में आपका अपना एक विशिष्ट स्थान है।

श्री चिरंजीत रेडियो के लिए सन् १९४१ से लिख रहे हैं और आज आप रेडियो नाट्यशिल्प के आचार्य माने जाते हैं। गत तीन दशकों में आप रेडियो के लिए अनेकानेक लोकप्रिय नाटकों का सृजन कर चुके हैं, जिनमें 'नया नगर', 'मास्टर सिलबिल', 'मानो न मानो', 'दादी माँ जागी' और 'लहरें' उल्लेखनीय हैं। रंगमंचीय विधा में भी आपकी विशिष्ट गति है। आपके अनेक नाटक प्रशंसित एवं सम्मानित हो चुके हैं। प्रस्तुत एकांकी 'चक्रव्यूह' आपकी सोद्देश्य नाट्यकला एवं हास्य-व्यंग्य का एक उत्कृष्ट नमूना है। यह एकांकी रंगमंच पर अनेक स्थानों पर बड़ी सफलता से खेला जा चुका है।

अब तक आपकी लगभग बीस पुस्तकें छप चुकी हैं। आजकल आप आकाशवाणी, दिल्ली में चीफ प्रोड्यूसर (ड्रामा) हैं।

रचनाएँ

'घेराव', 'तस्वीर उसकी', 'अभिमन्यु चक्रव्यूह में', 'ढोल की पोल', 'पाँच प्रहसन', 'रंगारंग', 'मन्दिर की जोत', 'मधु की रात और जिन्दगी', 'कहे पैरुडीदास', 'मास्टर सिलबिल', 'सिलबिल की सिलबिलाहट' आदि।

१३

चक्रव्यूह

चिरंजीत

लोकप्रिय रेडियो-रूपक 'ढोल की पोल' (भूठिस्तान) के रचयिता, प्रगति और प्यार के कवि और पुराने पत्रकार श्री चिरंजीत को सर्वाधिक ख्याति अपने नाटकों के कारण मिली है। हिन्दी के आधुनिक नाटक-साहित्य में सोद्देश्य नाटककार एवं प्रहसनकार के रूप में आपका अपना एक विशिष्ट स्थान है।

श्री चिरंजीत रेडियो के लिए सन् १९४१ से लिख रहे हैं और आज आप रेडियो नाट्यशिल्प के आचार्य माने जाते हैं। गत तीन दशकों में आप रेडियो के लिए अनेकानेक लोकप्रिय नाटकों का सृजन कर चुके हैं, जिनमें 'नया नगर', 'मास्टर सिलबिल', 'मानो न मानो', 'दादी माँ जागी' और 'लहरें' उल्लेखनीय हैं। रंगमंचीय विधा में भी आपकी विशिष्ट गति है। आपके अनेक नाटक प्रशंसित एवं सम्मानित हो चुके हैं। प्रस्तुत एकांकी 'चक्रव्यूह' आपकी सोद्देश्य नाट्यकला एवं हास्य-व्यंग्य का एक उत्कृष्ट नमूना है। यह एकांकी रंगमंच पर अनेक स्थानों पर बड़ी सफलता से खेला जा चुका है।

अब तक आपकी लगभग बीस पुस्तकें छप चुकी हैं। आजकल आप आकाशवाणी, दिल्ली में चीफ प्रोड्यूसर (ड्रामा) हैं।

रचनाएँ

'घेराव', 'तस्वीर उसकी', 'अभिमन्यु चक्रव्यूह में', 'ढोल की पोल', 'पाँच प्रहसन', 'रंगारंग', 'मन्दिर की जोत', 'मधु की रात और जिन्दगी', 'कहे पैरुडीदास', 'मास्टर सिलबिल', 'सिलबिल की सिलबिलाहट' आदि।

पात्र

कैलाशनाथ : दिल्ली स्थित केन्द्रीय सचिवालय का एक उत्तर भारतीय अधिकारी जो अपनी योग्यता, कार्य-दक्षता और ईमानदारी के कारण पैंतीस वर्ष की उम्र में ही बहुत ऊँचे और जिम्मेदार पद पर पहुँच चुका है।

लीला : कैलाशनाथ की सुशिक्षित-सुन्दर पत्नी, जो पति के ऊँचे पद और अपने पश्चिमी रंग-ढंग के कारण नई दिल्ली की आधुनिकाओं की सिरताज बनी हुई है। उम्र तीस वर्ष।

सरोज : नई युग-चेतना से अनुप्राणित युवती, लीला की छोटी बहन, मेडिकल कॉलिज की छात्रा। उम्र लगभग बाईस वर्ष।

रामू : घर का पहाड़ी नौकर, जो अपने को न तो कामचोर मानता है, न झूठा। उसके जीवन का ध्येय है—दफ्तर में चपरासी बनकर आया से शादी।

आया : क्रिश्चियन होते हुए भी खालिस हिन्दुस्तानी महिला। उम्र बस उतनी ही, जितनी कि बड़े अफसरों की पत्नियों को 'खतरनाक' नहीं लगती।

विलायती शाह : एक ठेकेदार, जो रिश्वत को उतना ही पवित्र और अचूक मानता है, जितना कि भगवान् को श्रद्धापूर्वक चढ़ाया जाने वाला सवा रुपये का प्रसाद।

प्रधान जी : भारत की लगभग चार हजार जातियों-उपजातियों के संकीर्ण मनोवृत्ति वाले स्वार्थी नेताओं जैसा ही एक नेता—सामाजिक सामंतशाही का प्रतीक।

युवक : एक मेधावी युवक, जो दिल्ली में चक्रव्यूह ही चक्रव्यूह पाता है।

स्थान : नई दिल्ली की एक सरकारी कोठी ।

समय : सर्दी के मौसम की एक सायंकाल, साढ़े चार वजे के वाद ।

नई दिल्ली में वावू कैलाशनाथ की कोठी का ड्राइंग-रूम, जिसके सोफा-सेट आदि वढ़िया फर्नीचर और आधुनिक साज-सज्जा से गृहस्वामी के ऊँचे पद और गृह-स्वामिनी की सुरुचि का परिचय मिलता है। वायीं ओर प्रवेश-द्वार है, जो वाहर पोर्टिको में खुलता है । दायीं ओर पर्दों से सजे दो दरवाज़े हैं । अगला दरवाजा गृह-स्वामी के निजी कमरे और शयन-कक्ष में खुलता है और पिछला दरवाज़ा कोठी के आँगन में खुलता है, जहाँ रसोई और नौकरों के कमरे हैं । सामने की दीवार में एक खिड़की है, जिसका पर्दा ज़रा सरका हुआ है और उसमें से पहले कोठी के हरे-भरे वग़ीचे का और वाद में रात के वढ़ते हुए अन्धकार का आभास मिलता है। वायीं दीवार के साथ आगे की ओर एक तिपाई पर टेलीफोन रखा है। जव पर्दा उठता है, तो सायंकाल के साढ़े चार वज चुके हैं । ड्राइंग-रूम में कोई नहीं है । एकाएक ड्राइंग-रूम की निर्जनता को मुखर करती हुई टेलीफोन की घंटी वज उठती है। कुछ देर वाद पिछले दाएँ दरवाज़े से रामू लपककर आता है । उसके पीछे आया भी आती है, परन्तु दरवाज़े पर ही ठिठक जाती है ।

रामू : (आते हुए पहाड़ी लहजे में) इस सुसरी आया से इतना भी नहीं होता कि आकर टेलीफोन ही सुन ले । वड़ी मेमसाहव वनी फिरती है ! (रिसीवर उठाकर) हैलो ! राम कसम, मैं वावू कैलाशनाथ का नौकर ठाकुर रामसिंह यानी कि रामू वोल रहा हूँ···(डपटकर) कौन कैलाशनाथ ? (डरकर) ओह, क्षमा कीजिए, वावूजी ! नमस्ते, वावूजी ! गलती हुई, वावूजी ! मैं समझा था कि···जी ! अभी दफ्तर से आ रहे हैं ?···क्या कहा ? आज आप क्लव नहीं जाएँगे, शाम की चाय घर पर ही पियेंगे ! जी, वहुत अच्छा···मैं सव काम-काज छोडकर अभी आपके लिए चाय वनाता हूँ···जी ! कौन, वीवी जी ? जी, वह तो···राम कसम, मैं आज झूठ नहीं वोलूँगा, वीवी जी अभी अपनी कॉफी-क्लव की मीटिंग खत्म करके कल की कॉफी-क्लव की मीटिंग के लिए कॉफी खरीदने वाज़ार गई हैं···जी ? कह रही थीं, कोई साढ़े छ: वजे तक लौटूँगी । क्या जी ?···वहुत अच्छा । आप जव पाँच वजे घर पहुँचेंगे, तो आपको कॉफी, नहीं-नहीं, चाय तैयार मिलेगी । और जी, दफ्तर में मेरे लिए चपरासी की नौकरी···! जी !···(सहमकर) वहुत अच्छा, जी ! फिर कभी नहीं कहूँगा, जी ! आपके घर की नौकरी ही ठीक

है, जी ! (काँपते हाथों से रिसीवर रखता है और वड़बड़ाता है।) बाप रे, आज तो बाबूजी का मूड एकदम गड़बड़ है। तभी तो मैं आज उनकी आवाज़ नहीं पहचान सका। उस दिन खुद ही कहा था—"मैं तुझे दफ्तर में चपरासी की नौकरी दिलाऊँगा और आया से तेरा ब्याह करवाऊँगा।" आज बोले—"तू गधा है।" हाँ, मैं गधा हूँ, तभी तो दफ्तर में चपरासी बनना चाहता हूँ।

आया : (आगे बढ़कर) रामू !

रामू : (चौंककर, पलटकर) कौन आया ? अरी, तू यहीं खड़ी थी ?

आया : उदास न हो। तू गधा नहीं, घोड़ा है—रेस का घोड़ा।

रामू : अरी, अगर मैं घोड़ा होता, तो राम कसम, अब तक पढ़-लिखकर दफ्तर का बाबू बन गया होता।

आया : दफ्तर का बाबू बनने के लिए गधा होना ही काफी है। वैसे हमारे लिए तो तू अब भी बाबू है। चाय बन गया ?

रामू : (त्योरी चढ़ाकर) अच्छा, यह बात है। इस चाय के लिए ही मुझे बाबू बना रही है। नहीं, आज चाय नहीं मिलेगी।

आया : चाय नहीं मिलेगा, तो हम नौकरी छोड़कर चला जाएगा।

रामू : क्या नखरे हैं मेम साहब के ! चाय नहीं मिलेगी, तो नौकरी छोड़कर चली जाएगी। चले गए अंगरेज़ और छोड़ गए पीछे···

आया : क्या बकता है ! क्रिश्चियन होते हुए भी हम खालिस हिन्दुस्तानी है। दोनों टैम चाय मिलेगा, इसी कंडीशन पर हमने इस घर में आया का नौकरी किया था। बबुआ को सँभाल, हम चला।

रामू : अरी, सुन तो। राम कसम, बबुआ को तो उसकी माँ सँभालेगी, लेकिन अगर तू चली गई तो इस ठाकुर रामसिंह को कौन सँभालेगा ? तू अपने कमरे में चल, मैं चाय लेकर अभी आया। सिर्फ चाय ही नहीं, राम कसम, बिस्कुट भी लाऊँगा।

आया : अच्छा, तो हम नौकरी नहीं छोड़ेगा, लेकिन···लेकिन हमारा-तुम्हारा शादी नहीं हो सकता।

रामू : (घबराकर) क्यों ?

आया : तू ऊँची जात का हिन्दू हमें नीची नज़र से देखता है।

रामू : अरी नहीं, राम कसम, सरकार ने कानून बनाकर सबकी नज़रें बराबर कर दी हैं। अब ऊँच-नीच का भेद नहीं रहा। सब एक ही देश के एक-से वासी हैं। उस दिन बाबूजी कह रहे थे कि देश की एकता के लिए जातियों, धर्मों और प्रान्तों की दीवारें तोड़कर शादियाँ होनी चाहिए।

आया : अरे रामू, तू तो लीडर का माफिक बात करता है।

रामू : अरी, लीडर तो सिर्फ बात ही करता है, राम कसम, मैं तो उस पर

अमल भी करता हूँ। (आया का हाथ अपने हाथ में लेकर) तो हम दोनों की शादी पक्की ?

आया : (हाथ छुड़ाकर) नहीं, हमारा शादी तब पक्का होगा, जब तू दफ्तर में चपरासी बन जाएगा।

रामू : चपरासी बनने का वादा तो बाबूजी ने···(एकाएक जैसे कुछ याद आ गया हो) अरे, मार डाला।

आया : (घबराकर) क्या हुआ ?

रामू : राम कसम, तेरी बातों में खोकर मैं घर का काम-काज भूल जाता हूँ, मालिक-मालकिन का हुक्म भूल जाता हूँ और झूठा कहलाता हूँ, कामचोर कहलाता हूँ।

आया : (प्यार से) कामचोर नहीं, तू तो दिल का चोर है।

रामू : हाँ, तेरी खातिर मैं सचमुच चोर बन गया हूँ। चोरी-चोरी तुझे चाय पिलाता हूँ, चोरी-चोरी तुझे बढ़िया खाना खिलाता हूँ, मालिक-मालकिन के लिए आए उपहार चोरी-चोरी तेरे कमरे में पहुँचाता हूँ।

आया : (हँसकर) और बबुआ बनकर···?

रामू : (कानों में उंगली डालकर) न बाबा, अब मैं तेरी कोई बात नहीं सुनूंगा। राम कसम, अभी-अभी बाबूजी ने फोन पर कहा था कि वे ठीक पाँच बजे घर पहुँच जाएँगे और चाय घर पर ही पियेंगे।

आया : आज क्या बात है, रामू ? रोज़ाना तो साहब दफ्तर से सीधा क्लब जाता है और वहाँ से आठ-नौ बजे घर आता है।

रामू : राम कसम, मैं भी तो हैरान हूँ कि आज बाबूजी ठीक पाँच बजे दफ्तर से सीधे घर क्यों आ रहे हैं ? फोन पर तो उनका मूड भी मुझे कुछ गड़बड़ लगा।

[तभी दरवाजे की घंटी बजती है।]

बाप रे, वे आ गए। चाय तो अभी बनी नहीं। अब क्या होगा ?

आया : घबरा नहीं। तू किचन में जाकर चाय बना। हम दरवाज़ा खोलकर उन्हें ड्राइंग-रूम में बिठाता है, बातों में लगाता है।

रामू : शाबाश! राम कसम, इसे कहते हैं···क्या कहते हैं ? सुसरी अंगरेज़ी तो मुझे आती ही नहीं।

आया : इसे हम कहते हैं डिप्लोमेसी।

रामू : अरे, जियो मिस डिप्लोमेसी, तुझ पर कुर्बान है यह आशिक देसी। (रसोई की ओर भागता है।)

[दरवाजे की घंटी फिर बजती है।]

आया : (दरवाज़ा खोलते हुए) गुड ईवनिंग, सर ! आज तो आप···

[ठेकेदार लाला विलायती शाह अन्दर आता है—बगल में एक

दबाये हुए ।]

विलायती शाह : गुड ईवनिंग, मिस आया। लगता है, साहब अभी दफ्तर से नहीं आया।

आया : (सँभलकर) ओह, मिस्टर विलायती शाह! (बेरुखी से) साहब ऑफिस से अभी नहीं आया।

विलायती शाह : (खुश होकर सोफे पर बैठते हुए) मैंने भी यही सोचा था। वे तो क्लब से होकर आते हैं। ज़रा मेम साहब को बुला दो।

आया : वह भी तो घर में नहीं। शॉपिंग करने बाज़ार गया है।

विलायती शाह : फिर तो गड़बड़ हो गया।

[रामू पिछले दरवाज़े से झाँकता है और फिर अन्दर आता है।]

रामू : क्या बात है, विलायती शाह जी? राम कसम, आप तो बहुत दिनों बाद आए।

विलायती शाह : अजी, क्या आएँ? तुम्हारा साहब तो हाथ ही नहीं रखने देता। उस ठेके के लिए सब कुछ मेम साहब को दिया, पर ठेका किसी और को मिला। सवा रुपये का परशाद लेकर भगवान् भी मुँहमाँगी मुराद दे देता है, पर तुम्हारा साहब तो भगवान् से भी ज्यादा ईमानदार बनता है।

रामू : ऐसी तो कोई बात नहीं, विलायती शाह जी! राम कसम, साहब मुझे बहुत मानता है, बीबी जी से भी ज्यादा। एक बार अपना कोई काम तो बताइए!

विलायती शाह : नहीं भई, यह काम तो तुम्हारी बीबी जी ही करा सकती हैं।

रामू : क्या काम है?

विलायती शाह : आज तुम्हारे साहब के दफ्तर में इंजीनियर की नौकरी के लिए इंटरव्यूह था। तुम्हारे साहब उस कमेटी के चेयरमैन थे। मेरा साला लुभायाराम भी इंटरव्यूह देने गया था। बीबी जी अगर सिफारिश कर दें, तो यह नौकरी अपने साले को मिल सकती है।

रामू : राम कसम, ज़रूर मिल सकती है। मैं बीबी जी से कहूँगा कि वह साहब से आपके साले रामलुभाया की ज़ोरदार सिफारिश करें।

विलायती शाह : फिर तो काम बन गया। यह लो दस रुपये, मिठाई खा लेना। (दस रुपये का नोट देता है।)

रामू : (नोट लेकर) राम कसम, इसकी क्या ज़रूरत थी!

विलायती शाह : (डिब्बा खोलते हुए) और यह शाल बीबी जी के लिए। कल ही कश्मीर से आया है।

[रामू झपटकर डिब्बे में से शाल निकालकर देखता है। हाथ का नोट डिब्बे में ही रह जाता है। विलायती शाह बिना देखे खाली

डिब्बा बन्द करके सोफ़े के नीचे रख देता है ।]

रामू : (शाल को हाथ में लेकर) इस शाल के लिए बीवी जी की तरफ से धन्यवाद ! बीवी जी से मैं सिफारिश करवा दूँगा । अब आप जाइए। साहब आज जल्दी घर आ रहे हैं ।

विलायती शाह : (जल्दी से उठकर) साहब आ रहे हैं, तो मैं चलता हूँ । भई, अगर अपना साला इंजीनियर बन जाए, तो पौ बारह समझो। मैं दूंगा बिल्डिंग के ठेके का टेंडर और साला कर देगा फौरन पास । न कोई रिश्वत, न कोई मिन्नत-समाजत । तो अब मैं चलता हूँ ।

रामू : निश्चिन्त होकर जाइए । राम कसम, सिफारिश तो मैं ज़ोरदार करवा दूँगा···(धीरे से) आगे बाबूजी की मर्ज़ी ।

[विलायती शाह जाता है । रामू जल्दी से अन्दर से दरवाज़ा बन्द करता है और फिर लौटकर शाल आया को ओढ़ा देता है ।]

रामू : आहा, मेरी आया रानी, यह शाल तो कश्मीर के कारीगरों ने बस तेरे लिए ही बनाकर भेजा है ।

आया : (झूठ-मूठ नाराज़ होकर) हमें नहीं चाहिए यह रिश्वत का शाल !

रामू : अरी, यह रिश्वत नहीं, देवी के चरणों में चढ़ावा है, उपहार है । उपहार कहने से रिश्वत रिश्वत नहीं रहती । राम कसम, अगर यकीन न हो, तो पूछ ले किसी भी बड़े अफसर के नौकर से ।

आया : (शाल को अच्छी तरह ओढ़ते हुए, हँसकर) तू बड़ा बदमास है ।

रामू : अरी, बदमास नहीं, तेरा दास, चरणदास, रिश्वत आए रास ।

आया : अगर साहब को पता चल गया तो···?

रामू : साहब को बीवी जी ही तो बताएँगी । बीवी जी को जब हम नहीं बताएँगे, तो वह कैसे साहब को बताएँगी । जा निश्चिन्त होकर, शाल को अपना समझकर अपने ट्रंक में रख ले । राम कसम, तू भी क्या याद करेगी कि किसी पहाड़ी रईस से पाला पड़ा था ।

आया : (आँखें मटकाकर) और वह दस का नोट ?

रामू : दस का नोट ? हाँ, दस का नोट भी मिठाई के लिए हमें मिला है । (जेबें टटोलकर) ऐं, वह नोट कहाँ गया ?

आया : अभी-अभी तो उस ठेकेदार ने तुझे दिया था ।

रामू : (घबराकर) दिया तो था, परन्तु पता नहीं, मैंने कहाँ रख दिया । (इधर-उधर ढूंढता है ।)

आया : अपना सब पॉकेट अच्छी तरह देख लिया ?

[रामू अपनी सब जेबें टटोलता है । तभी दरवाज़े की घंटी बजती है ।]

रामू : (डरकर, हड़बड़ाकर) लगता है, बाबू जी दफ्तर से आ ग[illegible] भाग-कर अपने कमरे में जा और इस शाल को ठिकाने [illegible] मैं

यहाँ नोट ढूँढता हूँ ।

[आया शाल लेकर पिछले दरवाज़े से अन्दर जाती है । रामू नोट ढूँढता है । तभी दरवाज़े की घंटी फिर बजती है । रामू जल्दी से दरवाज़ा खोलता है ।]

रामू : (दरवाजा खोलकर भौंचक्का-सा) कौन ? बावी जी ? राम कसम···

लीला : (अन्दर आते हुए डाँटकर) दरवाज़ा खोलने में इतनी देर क्यों लगाई ? क्या कर रहा था अन्दर ?

रामू : (बात बनाते हुए) जी, बीबी जी, मैं तो रसोई में था और···

लीला : और आया कहाँ थी ?

रामू : जी, वह बबुआ को सुला रही थी ।

लीला : बबुआ को अभी कहाँ से नींद आ गई ? यह तो उसके बाहर घूमने का समय है । (पुकारकर) आया, आया !

आया : (जल्दी से आकर) जी, मेम साहब !

लाली : क्या बबुआ को पाँच बजे ही सुला दिया ?

[रामू और आया की आँखें मिलती हैं । आया समझ जाती है ।]

आया : मेम साहब, फीडिंग के बाद उसे जरा लिटाया था । वह सो गया । थोड़ी देर बाद हम उसे बाहर घुमाने ले जाएगा ।

लीला : घुमाकर उसे जल्दी वापस लाना । पार्क में किसी का इन्तज़ार न करती रहना···

[लीला अगले दाएँ कमरे में चली जाती है । आया जली-भुनी-सी जाने लगती है कि रामू उसे रोक लेता है ।]

रामू : अरी, बुरा न मान । आजकल हर बड़े अफसर की बीबी घर की आया को अपनी सौत समझती है ।

आया : (घृणा से) हूँ । दस का नोट मिला ?

रामू : नहीं । अभी ढूँढता हूँ ।

आया : बहाने बनाता है ! चोट्टा कहीं का !

[आया अन्दर जाती है । रामू नोट ढूँढने लगता है । तभी लीला आती है ।]

लीला : (आकर) रामू, क्या ढूँढ रहा है ?

रामू : (संभलकर) कुछ नहीं, बीबी जी । और हाँ, राम कसम, बीबीजी, आप बाज़ार से इतनी जल्दी कैसे लौट आयीं ?

लीला : अरे, लौटना ही पड़ा । रीगल के बस-स्टॉप पर उतरी थी कि मेरा बरसों का बिछुड़ा भाई रामू मिल गया ।

रामू : (चौंककर) रामू ? जी, मैं तो घर पर ही···राम कसम···

लीला : (हँसकर) अरे, तू नहीं । अपने मुँहबोले भाई को भी मैं प्यार से रामू

ही कहती हूँ। उसका पूरा नाम तो···

रामू : बीबी जी, बाबूजी का अभी-अभी दफ्तर से फोन आया था। राम कसम, मैंने उन्हें बताया था कि आप बाज़ार गई हैं, और साढ़े छः बजे तक घर लौटेंगी। अभी आकर जब वे आपको घर में देखेंगे तो कहेंगे कि मैं झूठ बोलता हूँ।

लीला : खैर, झूठ तो तू बोलता ही है। अरे, हाँ, मैं कहीं भूल न जाऊँ, जरा जल्दी से सरोज के होस्टल का फोन मिला दे।

रामू : जी, कौन सरोज ?

लीला : तू केवल झूठा ही नहीं, भुलक्कड़ भी है। तू जानता नहीं कि सरोज मेरी छोटी बहन है, मेडिकल कॉलेज में पढ़ती है और होस्टल में रहती है···

रामू : जी हाँ, आपने बताया तो था, लेकिन राम कसम, मैं आपको यह भी बता दूँ कि बाबूजी आज पाँच बजे ही घर पहुँच रहे हैं, शाम की चाय घर पर ही पियेंगे···

लीला : ऐं, आज वे इतनी जल्दी घर क्यों आ रहे हैं ?

रामू : अचरज तो मुझे भी हो रहा है। राम कमम, रोज़ तो वे आठ-नौ बजे क्लब से होकर घर आते हैं।

लीला : तो आज वे क्लब नहीं जाएँगे ? यह बहुत अच्छा हुआ। रामू के आने से पहले ही मैं उनसे उसकी नौकरी की बात पक्की कर लूँगी।

रामू : (चौंककर) नौकरी की बात ?

लीला : देख, रामू को मैंने खाने पर बुलाया है। होस्टल से सरोज को भी बुला रही हूँ। तू जल्दी से जाकर रसोई में जुट जा।

रामू : जी, पहले तो बाबूजी के लिए चाय बनानी होगी। राम कमस, वे आते ही होंगे।

लीला : अच्छा-अच्छा, पहले जल्दी से चाय बना और फिर खाना बनाना।

रामू : जी, बहुत अच्छा।

[रामू रसोई की ओर कदम बढ़ाता है और लीला टेलीफोन के पास बैठकर डायरेक्टरी में सरोज के होस्टल का नम्बर ढूंढती है। रामू लौटकर इधर-उधर दबे पांव अपना खोया नोट ढूंढने लगता है। लीला पलटकर देखती है।]

लीला : क्या ढूंढ रहा है, रामू ?

रामू : (एकाएक भागने का उपक्रम करता हुआ) कुछ नहीं, बीबी जी !

लीला : बताता क्यों नहीं ? सारा ड्राइंग-रूम तूने उलट-पलट डाला है।

रामू : (बात बनाते हुए) जी, वह···गाँव से चिट्ठी आयी थी। वह कहीं मेरी जेब से गिर गई···

लीला : तो जाकर रसोई या अपने कमरे में ढूंढ।

रामू : जी हाँ, आप ठीक कहती हैं। वहीं जाकर ढूँढता हूँ।

[रामू रसोई की ओर जाता है। लीला रिसीवर उठाकर टेलीफोन का नम्बर मिलाती है।]

लीला : (फोन पर) हैलो! क्या आप मेडिकल कॉलेज के होस्टल से बोल रही हैं?...ऐं, कौन सरोज?...अरी, मैं तुझे ही तो बुला रही थी...क्या? अपनी बड़ी बहन की आवाज भी नहीं पहचानती?...हाँ, मैं लीला बोल रही हूँ। क्या?...सिर्फ बात ही नहीं, खुश-खबरी भी है...रामू दिल्ली आया हुआ है और...अरी, मेरा नौकर नहीं, तुम्हारा होनेवाला नौकर...(हँसकर) हाँ, इंजीनियर रामू...मेरा मुँहबोला भाई...हाँ, वही। शाम को मेरे यहां खाना खाने आ रहा है... बस, तू भी फौरन चली आ। क्या?...मुझे अभी-अभी कनॉट प्लेस में मिला था...उसे पता नहीं था कि हम दोनों ही दिल्ली में हैं। दो साल पहले वहाँ से पिताजी की बदली कानपुर हो गई थी न...हाँ, उसे पता नहीं था कि शादी के बाद मैं दिल्ली आ गई हूँ और तू भी पढ़ाई के सिलसिले में दिल्ली आ गई है। हाँ-हाँ, सुनकर बड़ा ही खुश हुआ...क्या?...अरे, हाँ, यह तो तुझे बताया ही नहीं...आज तेरे जीजाजी के दफ्तर में उसका इण्टरव्यू था, इंजीनियर की पोस्ट के लिए...नहीं-नहीं, उसे पता नहीं था कि सिलेक्शन कमेटी के चेयरमैन तेरे जीजाजी हैं। हाँ, जब मैंने उसे बताया तो...अरी, यह भी कोई कहने की बात है?...उसे जरूर यह जगह मिलेगी, और फिर...क्या? अरी, मेरी लाड़ली बहन सरोजरानी के हृदय में जगह पाकर वह पहले ही इस जगह का हकदार हो चुका है...तू चिन्ता न कर, पिताजी को मैं मना लूंगी...ऐसा योग्य दामाद उन्हें और कहाँ मिलेगा...क्या कहा? वार्ड में तेरी सात बजे तक ड्यूटी है?...ठीक है, साढ़े सात बजे तक तो तू पहुँच जायेगी न?

[बाहर कार का हॉर्न और फिर कार के रुकने की आवाज़ सुनाई देती है।]

ले, तेरे जीजाजी दफ्तर से आ गए। तू साढ़े सात बजे तक जरूर पहुँच जाना। अच्छा, बाई-बाई।

[टेलीफोन का रिसीवर रखकर लीला लपककर दरवाजा खोलती है। कैलाशनाथ बड़े पद की जिम्मेदारी से दबा हुआ-सा, ब्रीफ-केस उठाए हुए अन्दर आता है।]

कैलाशनाथ : (आते हुए) रामू!

लीला : रामू नहीं, आपके स्वागत के लिए यह दासी प्रस्तुत है।

कैलाश० : अरे, लीला, तुम घर में ही हो ? आज इस कमबख्त ने फिर झूठ बोला !

रामू : (आकर) राम कसम, बाबूजी, मैंने झूठ नहीं बोला। बीबी जी कह गई थीं कि ये…

लीला : अच्छा-अच्छा, सफाई बाद में देना। (कैलाशनाथ का ब्रीफ केस रामू को पकड़ाकर) जा, इसे साहब के कमरे में रख आ और फिर साहब के लिए चाय बनाकर ला। (रामू जाता है।) आप खड़े क्यों हैं ? बैठिये न। अब कहीं जाना तो नहीं है ?

कैलाश० : नहीं, अब कहीं नहीं जाना। आज क्लब का प्रोग्राम भी कैंसल कर दिया है।

लीला : शुक्र है, आपने और पतियों की तरह आज सीधे घर आना तो सीखा।

कैलाश० : (पुकारकर) रामू, रामू !

रामू : (अगले दाएँ दरवाज़े से आकर) जी, बाबूजी।

कैलाश० : देख, बाहर का यह दरवाजा अन्दर से अच्छी तरह बन्द कर दे। अगर हो सके, तो अन्दर से ताला भी लगा दे।

रामू : जी, बहुत अच्छा ! (अन्दर से दरवाज़ा बन्द करता है।)

कैलाश० : और देख, अगर कोई पिछले दरवाज़े पर आकर पूछे कि बाबूजी घर हैं, तो कहना—बाबूजी घर पर नहीं हैं। क्या कहेगा ?

रामू : जी कहूँगा, राम कमस, बाबूजी कहते हैं कि मैं घर पर नहीं हूँ।

कैलाश० : (डाँटकर) गधा कहीं का !

रामू : (सहमकर) जी !

कैलाश० : जा, भागकर चाय ला !

रामू : अभी लाया। (जाता है।)

कैलाश० : लीला, आज तुम कुछ काम करने के मूड में जान पड़ती हो। जल्दी से इस डोर-बेल का कनेक्शन काट दो और अन्दर से ताला लगा दो।

लीला : लेकिन पहले यह तो पता चले कि यह किलाबन्दी क्यों की जा रही है !

कैलाश० : लीला, क्या बताऊँ, सिफारिश करनेवालों की एक पूरी फौज ने मेरा पीछा कर रखा है। उनसे बचने के लिए ही मैं पाँच बजने से पहले दफ्तर से उठ आया और यह सोचकर कि वे क्लब तक मेरा पीछा करेंगे, मैं बिना किसी को बताए सीधा घर चला आया हूँ।

लीला : ओह ! अब समझी।

कैलाश० : (सोफे पर बैठते हुए) खैर, हटाओ। रामू ने फोन पर बताया था कि तुम…

लीला : हाँ, मैं कनॉट प्लेस गई थी। वहाँ बरसों बाद मेरा एक धर्म-भाई

मिल गया।

कैलाश० : (हँसकर) धर्म-भाई ? लड़कियाँ अंग्रेज़ी में जिसे 'कज़न' कहती हैं, वही न ?

लीला : हर पति की तरह आप भी बेहद शक्की हैं। सुनिये, आज आपके ऑफिस में इंजीनियर की पोस्ट के लिए कोई इण्टरव्यू था ?

कैलाश० : (एकाएक उठकर, दूर जाकर) क्या तुम तक भी यह खबर पहुँच गई ?

लीला : तो क्या यह कोई बुरी खबर है ?

कैलाश० : हाँ, लीला, इस युग के अनुसार यह बहुत बुरी खबर है। आजकल जब भी किसी छोटी-बड़ी नौकरी के लिए इण्टरव्यू होता है, तो हर अच्छे-बुरे उम्मीदवार के लिए सिफारिशों का ताँता लग जाता है। कहीं मिनिस्टर की सिफारिश तो कहीं बड़े अफसर की सिफ़ारिश; कहीं नेता की सिफारिश तो कहीं मित्र की सिफारिश; कहीं सहयोगी की सिफारिश तो कहीं रिश्तेदार की सिफारिश। एक अनार के पीछे सौ बीमार। जिसकी सिफारिश न मानो, वही नाराज़। इण्टरव्यू होता है उम्मीदवारों में से सबसे योग्य व्यक्ति को चुनने के लिए; परन्तु सिफारिश करने वाले योग्य-अयोग्य का भेद नहीं मानते। वे तो चाहते हैं अपने उम्मीदवार की सफलता। सच कहूँ, इस सिफारिशबाज़ी ने देश के प्रशासन को छिन्न-भिन्न करके रख दिया है। सारा देश नौकरी के इच्छुक स्वार्थी गुटों में बँटा हुआ दिखाई देता है···

लीला : सो तो है ही, लेकिन मैं जिसकी सिफारिश कर रही हूँ···

कैलाश० : (और भी क्षुब्ध होकर) लीला, मेरे सामने सिफारिश शब्द का प्रयोग न करो। इस शब्द के पीछे काम करनेवाली मनोवृत्ति से मुझे चिढ़ है, घृणा है। हमारे ऑफिस में इंजीनियर की एक पोस्ट खाली थी। उसके लिए देश के विभिन्न राज्यों से छँट-छँटाकर कोई तीस उम्मीदवार आज इण्टरव्यू के लिए आए थे। इण्टरव्यू अभी खत्म भी नहीं हुआ था कि टेलीफ़ोन पर टेलीफ़ोन आने लगे—"मैं अमुक बड़े आदमी का पी० ए० बोल रहा हूँ। यह पोस्ट अमुक उम्मीदवार को ही मिलनी चाहिए।" "कैलाश, मैं तुम्हारा वह बोल रहा हूँ, यह नौकरी मेरे फलाँ आदमी को मिलनी चाहिए।" इन सिफारिशों की बमबारी से बचने के लिए मैं आज इतनी जल्दी दफ्तर से भागकर घर में आ छिपा हूँ और यहाँ आकर देखता हूँ कि···

लीला : लेकिन मेरी बात आपको माननी ही होगी।

कैलाश० : अब असम्भव है, क्योंकि कमेटी ने जो फैसला करना था, सो···

लीला : (जल्दी से) तो उस पोस्ट पर किसकी नियुक्ति होगी, इस बात का फैसला क्या आप कर चुके हैं ?

कैलाश० : हाँ, एकदम पक्का फैसला कर आया हूँ। जो उम्मीदवार हमें पढ़ाई, प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर सबसे अधिक योग्य और होनहार नज़र आया उसे हमने चुन लिया।

लीला : कौन है वह ?

कैलाश० : लीला, मुझे क्षमा करो, दफ्तर का यह गोपनीय निर्णय मैं तुम्हें भी नहीं बता सकता।

लीला : (नाराज़ी से) ओह ! तो मेरा इतना भी अधिकार नहीं !

कैलाश० : लो, नाराज़ हो गईं। अगर मुझे मालूम होता कि सिफारिश करने वाले तुम तक भी पहुँच जाएँगे, तो मैं दफ्तर से भागकर घर आने की बजाय...

लीला : व्यर्थ की बातें छोड़िए। अभी आपने निर्णय ही किया है, नियुक्ति-पत्र तो ज़ारी किया नहीं। देखिए, मैंने आज तक आपसे कभी किसी बात के लिए ज़िद नहीं की। लेकिन यह पोस्ट तो आपको रामू को देनी होगी।

[तभी रामू चाय की ट्रे लिए आता है।]

कैलाश० : (चौंककर) रामू को...यानी कि...

रामू : (तिपाई पर चाय की ट्रे रखता हुआ) हाँ, बाबूजी, इस घर में रहते अगर मेरी कुछ तरक्की हो जाए, तो...

लीला : क्या बक रहा है ?

रामू : अभी-अभी आप बाबूजी से मेरी सिफारिश कर रही थीं न ?

लीला : अरे, मैं तो अपने धर्म-भाई के लिए कह रही थी।

कैलाश० : (हँसकर) तो क्या उसका नाम भी रामू है ?

लीला : रामू तो हम प्यार से कहते हैं, उसका असली नाम तो...

[तभी टेलीफोन की घंटी बजती है।]

रामू, सुनना यह किसका टेलीफोन है ? (कैलाशनाथ से) आप आराम से चाय पीजिए। (प्याले में चाय बनाती है।)

रामू : (रिसीवर उठाकर) हैलो !...हाँ, मैं कैलाशनाथ के घर मे ही बोल रहा हूँ !...कौन ?...अच्छा जी, मैं उन्हें बुलाता हूँ। (कैलाशनाथ से) बाबूजी, कोई मंत्री जी बोल रहे हैं।

कैलाश० : देखा लीला, मैंने पी० ए० की बात नहीं सुनी, तो खुद मंत्रीजी...

लीला : मंत्रीजी की बात तो सुननी ही होगी।

कैलाश० : हाँ, सुननी ही होगी। (रामू से रिसीवर लेकर) जी, मैं कैलाशनाथ बोल रहा हूँ। आज्ञा कीजिए !...कौन ? ओह ! कवि-समाज के मंत्री जी हैं ?...नमस्कार, मंत्री जी...क्या कहा ? मुझे खेद है कि

उस दिन मैं कवि-समाज की गोष्ठी में नहीं पहुँच सका। जी···हाँ, उस दिन दफ्तर में इतनी देर हो गई थी कि···क्या कहा ? अगले रविवार को आप कवि-गोष्ठी मेरे घर पर रखना चाहते हैं ?···मुझे कोई आपत्ति नहीं। अजी, मेरे तो घर में काव्य की गंगा आ रही है···क्या ?···अजी, मैं अब क्या लिखूँगा। मैं तो अब मात्र श्रोता बनकर रह गया हूँ···

लीला : (हँसते हुए) रामू, तू वाकई गधा है। यह तो कोई नकली मंत्री हैं। बेकार में डरा दिया।

कैलाश० : जी ? (जरा संभलकर) हाँ, इंजीनियर की एक पोस्ट के लिए आज इण्टरव्यू था···कौन ?···हाँ-हाँ !···क्या कहा ?···वह इंजीनियर के साथ-साथ हिन्दी का सेवक और सफल कवि भी है ?···लेकिन मंत्री जी, इंजीनियर के काम में यह भाषा का प्रश्न कहाँ पैदा होता है ?···जी नहीं। भाषा के नाम पर मैं इस तरह की बेईमानी नहीं कर सकता···जी हाँ, हमने योग्यता के आधार पर जिसे चुनना था, चुन लिया। जी नहीं, इस विषय में मैं और कुछ बात नहीं करना चाहता···नमस्कार ! (झल्लाकर टेलीफोन बन्द करता है।) कमाल है, कवि-समाज के यह मंत्री जी समझते हैं कि बाँध-निर्माण-योजना और कवि-सम्मेलन के आयोजन में कोई फर्क नहीं। टेकनीकल काम में भी अपना दूषित भाषावाद घुसेड़ रहे हैं ! पता नहीं, इन सिफारिश करनेवालों को कहाँ से मालूम हो गया कि मैं इस समय घर में हूँ ?

लीला : (हँसकर) पहले उन्होंने दफ्तर में फोन किया होगा, फिर क्लब में किया होगा और अन्त में···

कैलाश० : (बैठकर चाय पीते हुए) मैं अब सोचता हूँ कि भागकर कुतुबमीनार पर पहुँच जाऊँ। वहाँ न फोन होगा, न···(तभी दरवाज़े की घंटी बजती है।) लो, लगता है कि कोई फ़ोन का सहारा न लेकर सीधा घर ही पहुँच गया। रामू, दरवाजा मत खोलना।

लीला : लेकिन हो सकता है कि मेरा वह धर्म-भाई रामू आया हो। मैंने उसे खाने पर बुला रखा है।

कैलाश० : ऐं, उसे खाने पर बुला रखा है ? फिर तो मैं पिछले दरवाज़े से क्लब···(पिछले दरवाज़े की तरफ बढ़ता है। तभी नवागन्तुक की आवाज़ सुनाई देती है।)

आवाज़ : (बाहर से) बाबू कैलाशनाथ जी ! अरे भई, घर पर ही हो न ?

लीला : यह तो मेरा धर्म-भाई नहीं। रामू, दरवाज़ा मत खोलना।

कैलाश० : (लौटते हुए) मगर लीला, यह आवाज़ तो हमारी बिरादरी के प्रधान जी की है। बिरादरी की सभा का वार्षिक चुनाव होनेवाला

है। उसी के बारे में परामर्श करने आए होंगे। रामू, जा, उन्हें बड़े आदर से अन्दर लिवा ला।

रामू : जी, बहुत अच्छा।

[रामू दरवाजा खोलता है और बड़ी-बड़ी मूंछोंवाले रोबीले वयोवृद्ध प्रधानजी छड़ी के सहारे अन्दर आते हैं।]

प्रधानजी : (आते हुए) मेरा अनुमान ठीक निकला। मैं जानता था कि तुम इस समय घर में ही होगे। मैं ठीक कह रहा हूँ न ?

कैलाश० : (उठकर नमस्ते करके) जी, आइए, विराजिए। अभी दफ्तर से आया हूँ।

[प्रधानजी खूब फैलकर सोफे पर बैठ जाते हैं। कैलाशनाथ पास ही कुर्सी खींचकर बैठ जाता है।]

लीला : रामू, जा, अन्दर जाकर खाना तैयार कर।

रामू : जी, बहुत अच्छा। (जाता है।)

कैलाश० : लीला, प्रधानजी के लिए चाय बनाओ।

[लीला ट्रे में रखे एक खाली प्याले में चाय बनाती है।]

प्रधानजी : (हँसकर) बेटी के हाथ की चाय तो मैं जरूर पिऊँगा। कैलाश बाबू, तुम्हारे बारे में इसके पिता को मैंने ही तो खबर दी थी। तुम्हारे पिताजी कुछ आनाकानी कर रहे थे। मैंने उन पर बिरादरी की सभा का ऐसा जोर डाला कि उन्हें यह रिश्ता मंजूर करना ही पड़ा। मैं ठीक कह रहा हूँ न ? (प्याला उठाकर चाय पीने लगते हैं।)

कैलाश० : जी हाँ, आपने बड़ी कृपा की थी। आज कैसे कष्ट किया ?

प्रधानजी : कष्ट की कुछ न पूछो, कैलाश बाबू। मैं तो आजकल बिरादरी की चिन्ताओं से ही मरा जा रहा हूँ। मैं तो सोचता हूँ कि बिरादरी का संगठन मजबूत हो, उसकी शक्ति बढ़े, दिनोंदिन उन्नति हो, लेकिन यह नई पीढ़ी सब किये-धरे पर पानी फेरने पर तुली है। मैं ठीक कह रहा हूँ न ?

कैलाश० : जी हाँ। वार्षिक चुनाव कब हो रहे हैं ?

प्रधानजी : अगले महीने होंगे। और कैलाश बाबू, अब के दिल्ली और नई दिल्ली की पार्टियों में कसकर मुकाबला होगा। नई दिल्ली की पार्टी, सुना है, तुम्हें प्रधान बनाना चाहती है। मैं ठीक कह रहा हूँ न ?

कैलाश० : जी, मुझे तो कुछ पता नहीं।

प्रधानजी : मुझे सब पता है। कैसे पता है ? अरे भई, पिछले दस वर्षों से मैं ही बिरादरी की सभा का प्रधान चला आ रहा हूँ। बात दरअसल यह है कि मैं न तो नई दिल्ली का हूँ और न पुरानी दिल्ली का,

बस बीच का हूँ। इसलिए दोनों पार्टियाँ मेरा आदर करती हैं, मेरी बात मानती हैं। मैं ठीक कह रहा हूँ न ?

कैलाश० : आप ठीक कह रहे हैं, इसलिए प्रधान-पद के लिए खड़ा होने का मेरा कोई इरादा नहीं है।

प्रधानजी : क्यों इरादा नहीं ? अरे भई, तुम्हारे ही कारण तो मैं अपना नाम वापस ले रहा हूँ और कोशिश कर रहा हूँ कि तुम सर्वसम्मति से बिना मुकाबले के बिरादरी के प्रधान चुने जाओ। तुमने इतनी छोटी उम्र में इतने ऊँचे सरकारी पद पर पहुँचकर बिरादरी का गौरव बढ़ाया है, इसलिए बिरादरी का यह कर्तव्य हो जाता है कि तुम्हें प्रधान बनाकर सम्मानित करे। मैं ठीक कह रहा हूँ न ?

कैलाश० : जी हाँ, लेकिन मेरे पास इतना समय कहाँ कि···

प्रधानजी : अरे भई, बिरादरी के लिए समय तो निकालना ही होगा। और फिर मैं जो तुम्हारे साथ रहूँगा, सभा के संरक्षक के रूप में। मैंने बिरादरी को सशक्त और संगठित बनाने के लिए एक योजना बना रखी है, जो तुम्हारे ही सहयोग से कार्यान्वित हो सकती है, क्योंकि भगवान् ने तुम्हें ऊँचा सरकारी पद दिया है, प्रभाव दिया है, शक्ति दी है। मैं ठीक कह रहा हूँ न ? और हाँ, बेटी लीला, तुम्हारे पिता भगवती बाबू का कानपुर से पत्र आया था। तुम्हारी छोटी बहन यहाँ मेडिकल कॉलेज में पढ़ती है न ?

लीला : जी हाँ, इसी महीने उसका कोर्स पूरा हो जाएगा।

प्रधानजी : तुम्हारे पिताजी चाहते हैं कि जैसे मैंने तुम्हारे लिए इतना अच्छा वर ढूँढ दिया था, वैसे ही छोटी लड़की के लिए भी कोई योग्य और सुशील लड़का ढूँढ दूँ। उन्हें मुझ पर पूरा भरोसा है। मैं भी तुम दोनों बहनों को अपनी बेटियों के समान ही समझता हूँ। एक-दो लड़के मेरी नजर में हैं। पूरा पता लगाकर, अपनी तसल्ली करके मैं तुम्हें खबर दूँगा। मैं ठीक कह रहा हूँ न ? अच्छा, अब मैं चलूँ।

[प्रधानजी उठते हैं और उनके साथ ही कैलाशनाथ और लीला भी उठते हैं। दरवाजे की ओर जाते हुए प्रधानजी एकाएक रुक जाते हैं।]

अरे हाँ, याद आया। बेटा कैलाश, एक मामूली-सा काम था। अपना वह लड़का किशोरीलाल है न ? उससे मैंने कह दिया था कि वह इण्टरव्यू के समय बिरादरी और मेरे नाम का इशारा कर दे, तुम अपने-आप समझ जाओगे।

कैलाश० : (सँभलकर) मैं समझा नहीं।

प्रधानजी : (फिर सोफे पर बैठते हुए) अरे बेटा, तुम्हारे यहाँ कोई इंजीनियर

की जगह है न ? किशोरीलाल उसी के इण्टरव्यू के लिए आज तुम्हारे यहाँ गया था। उसने लौटकर कहा—"ताऊजी, मुझे तो कैलाशनाथजी ने पहचाना तक नहीं।" मैंने हँसकर कहा—"अरे बेटा, कैलाशनाथ बड़े गहरे आदमी हैं। कमेटी के और मेम्बरों के सामने कैसे बिरादरी की जान-पहचान प्रकट करते; लेकिन सब समझ-बूझकर आखिर चुना होगा उन्होंने अपनी बिरादरी का ही लड़का।" मैंने ठीक कहा न, बेटा ?

कैलाश० : (नर्मी से) जी, योग्य इंजीनियर का चुनाव करते समय जात-बिरादरी का विचार तो नहीं किया गया।

प्रधानजी : क्या कहते हो, बेटा ? ऐसे मामलों में जात-बिरादरी का विचार तो करना ही पड़ता है, सारी दुनिया करती है। बिरादरी की शक्ति बढ़ाने के यही तो अवसर होते हैं। बेटा, यह जगह तो अपने लड़के किशोरीलाल को ही मिलनी चाहिए।

कैलाश० : जी, मुझे खेद से कहना पड़ता है कि जो लड़का इस पोस्ट के लिए चुना गया है, उसका नाम किशोरीलाल नहीं।

प्रधानजी : अरे भई, यह क्या कह रहे हो ? बेटी लीला, सुनी अपने पति की बात ? जरा तुम्हीं समझाओ इसे।

लीला : जी, मैं क्या समझा सकती हूँ।

प्रधानजी : (तनकर) तो मैं इसे बिरादरी की सभा के प्रधान की हैसियत से समझाता हूँ कि···

कैलाश० : क्षमा कीजिए, आपने मुझे गलत समझा है। मैं पूरे देश को अपनी बिरादरी मानता हूँ। पूरे देश में से जो योग्य लड़का मिला है, नौकरी उसी को दी जा रही है।

प्रधानजी : कौन है वह लड़का ?

कैलाश० : आपके लिए इतना जानना ही काफी है कि वह हमारी जात-बिरादरी का नहीं है।

प्रधानजी : (गुस्से से) तुम हमारी जाति और बिरादरी के शत्रु हो। बिरादरी की सभा की अगली बैठक में मैं तुम्हारे विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करवाकर···

कैलाश० : आप जो जी चाहे कीजिए, पर मैं गलत फैसला करके अपने देश का शत्रु नहीं बन सकता।

प्रधानजी : (तैश में उठकर जाते हुए) अच्छा, तो मैं भी दिखा दूंगा कि बिरादरी का शत्रु बनने का क्या परिणाम होता है ? और यह भी सुन लो, तुम्हारी साली के लिए बिरादरी का कोई लड़का नहीं मिलेगा।

कैलाश० : (बिगड़कर) न मिले बिरादरी का लड़का। बिरादरी के बाहर पूरे देश में सैंकड़ों योग्य लड़के हैं।

प्रधानजी : (गुस्से से काँपते हुए) तो क्या तुम अपनी साली की शादी बिरादरी से बाहर करोगे ?

कैलाश० : हाँ, अवश्य करूँगा।

प्रधानजी : तो मैं आज ही तुम्हारा बिरादरी से बहिष्कार करवाता हूँ। (चले जाते हैं।)

कैलाश० : (विक्षोभ के साथ) बिरादरी से बहिष्कार ! अच्छा ही है कि मैं बिरादरी के तंग दायरे से निकलकर देश के खुले वायुमंडल में सुख और सन्तोष की साँस ले सकूँगा। जातियों-उपजातियों के इन चक्रव्यूहों ने हर भारतवासी को संकुचित, स्वार्थी और देशद्रोही बना दिया है। जब तक ये घिनौने चक्रव्यूह नहीं टूटते, तब तक न तो देश एक हो सकता है, न उन्नति कर सकता है। सुन रही हो, लीला ? मैं तुम्हारी बहन की शादी बिरादरी से बाहर करूँगा।

लीला : (मुसकराकर) मैं आपके इस निश्चय का स्वागत करती हूँ। और आप सुनकर खुश होंगे कि मेरा धर्म-भाई रामू हमारी बिरादरी का नहीं।

कैलाश० : (सँभलकर) क्या मतलब ?

लीला : मतलब यह कि हम तो हैं क्षत्रिय और रामू है ब्राह्मण। उसका बाप बड़े ही उदार विचारों का है। सरोज और रामू एक-दूसरे को जानते हैं और मेरा खयाल है कि एक-दूसरे को चाहते भी हैं। अगर रामू को यह नौकरी मिल जाए, तो सरोज का उससे तुरन्त विवाह हो जाएगा और अभी-अभी बिरादरी के प्रधानजी को आपने जो चुनौती दी है, वह भी पूरी हो जाएगी।

कैलाश० : (झुँझलाकर बैठते हुए) तो तुम मुझे कुनबा-परस्ती के चक्रव्यूह में फँसाकर मुझसे बेईमानी करवाना चाहती हो ? योग्यता के आधार पर चुने गए उम्मीदवार की मुझसे हक़तलफी करवाना चाहती हो ?

लीला : अगर मेरी बहन को ऐसा योग्य और मनचाहा वर न मिला, तो क्या उसकी हक़तलफी नहीं होगी ? पिताजी तो बूढ़े हो चुके हैं। बहन का सारा बोझ मेरे सिर पर है गोया कि आपके सिर पर है···

कैलाश० : नहीं, मैं भाषा के चक्रव्यूह में नहीं फँसा, जात-बिरादरी के चक्रव्यूह में नहीं फँसा और अब कुनबा-परस्ती के चक्रव्यूह में भी नहीं फँसूँगा। मैं इस नौकरी के मामले में कोई गोलमाल नहीं करूँगा।

लीला : अपनी साली के सुख के लिए भी नहीं ?

कैलाश० : लीला, भगवान के लिए मुझे भ्रष्टाचार करने को विवश न करो। सरोज के लिए मैं···

[तभी टेलीफोन की घंटी बजती है और बजती रहती है।]

ओह, यह भी किसी सिफारिश करने वाले का फोन होगा। मैं अब

एक मिनट भी इस घर में नहीं रुक सकता। मैं जा रहा हूँ क्लब।

लीला : नहीं, आप क्लब नहीं जा सकते। रामू के साथ मैंने सरोज को भी खाने पर बुला रखा है। यह शायद उसी का फोन हो। (टेलीफोन की तरफ जाती है।)

कैलाश० : (हताश होकर) अरे, क्या सरोज को भी खाने पर बुला रखा है? ओह, धर्म और ईमान रूपी अभिमन्यु को मारने के लिए कौरवों के सभी महारथी इकट्ठे हो रहे हैं।

लीला : (फोन का रिसीवर उठाकर) हैलो!···हाँ, मैं उन्हीं के घर से बोल रही हूँ···कौन?···जी, रुकिए, मैं अभी उन्हें बुलाती हूँ। (रिसीवर पर हाथ रखकर, कैलाशनाथ से) जल्दी आइए।

कैलाश० : कौन?

लीला : आपके मित्र रमाशंकर तिवारी के चाचा···

कैलाश० : (घबराकर) बाप रे! (लपककर लीला से रिसीवर लेता है।) नमस्ते, चाचाजी!···जी, आपकी दया से सब कुशल-मंगल है···जी नहीं, दफ्तर की व्यस्तता के कारण मैं आपकी सेवा में उपस्थित न हो सका, कल दर्शन करने जरूर आऊँगा···जी, क्या कहा?···हाँ-हाँ, इंजीनियर की एक पोस्ट के लिए आज इण्टरव्यू था···जी हाँ, पढ़ाई, प्रशिक्षण और अनुभव के आधार पर जो उम्मीदवार योग्यतम पाया गया, उसी को कमेटी ने चुना है···कौन?···जी नहीं, वे नहीं चुने गए···हाँ-हाँ, आपकी चिट्ठी उन्होंने मुझे दी थी, लेकिन योग्यता के मामले में वह···जी, क्या कहा?···हाँ, अपने प्रदेश से आए उम्मीदवारों में तो वे सबसे अधिक योग्य थे, लेकिन जिस उम्मीदवार को कमेटी ने चुना, वह उनसे कहीं अधिक योग्य था—देश-भर के उम्मीदवारों में योग्य था···(हकलाकर) जी?···नहीं, वह उत्तर भारत का नहीं, दक्षिण भारत का रहने वाला है···जी, पूरी कमेटी के फैसले को अब बदलना कठिन है। जी, मुझे बहुत खेद है कि आपकी आज्ञा का पालन नहीं हो सका, लेकिन मैं विश्वास दिलाता हूँ कि···जी, शान्ति से मेरी पूरी बात तो सुन लीजिए···ओह, टेलीफोन बन्द कर दिया। (रिसीवर रखता है और रूमाल से मुँह पोंछता है, जैसे प्रान्तीय नेता से पड़ी झाड़ को झाड़ने का प्रयत्न कर रहा हो। फिर झटककर उन्मादी की तरह बड़बड़ाने लगता है।) प्रान्तीयता की दलदल में फँसे हुए ये हैं हमारे पूज्य नेता, देश के कर्णधार, देश के व्यवस्थापक, देश के भाग्यविधाता! पूछते हैं—"उत्तर भारत का इंजीनियर छोड़कर दक्षिण भारत का इंजीनियर क्यों लिया? चुनाव करते समय पक्षपात क्यों नहीं बरता?" और मंच पर खड़े होकर यही नेता दुनिया के साम[illegible] लगाते

हैं—"भारत एक है ! उत्तर भारत और दक्षिण भारत एक हैं ! ! सारे भारतवासी एक हैं ! ! !" यही हैं वे नेता, जो सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों पर भ्रष्टाचार का आरोप लगाते हैं, और स्वयं प्रान्तीयता का विष फैलाकर प्रशासन को दूषित कर रहे हैं, सही रास्ते पर चलने वालों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं, देश की एकता को छिन्न-भिन्न कर रहे हैं।

लीला : *(घबराकर) क्या हो गया आपको ? पागलों की तरह बोले ही जा रहे हैं !*

कैलाश० : लीला, तुम नहीं जानती, आज मेरी आत्मा को कितना भीषण आघात लगा, मेरी निष्ठा को कितना बड़ा धक्का पहुँचा है। मैंने कभी रिश्वत नहीं ली, ठेकेदारों से कभी कमीशन नहीं ली, उपहार नहीं लिये। आज पता चला कि ईमानदारी ही सबसे बड़ा पाप है, अपराध है। मेरी इसी ईमानदारी के कारण मुझसे मेरे गुरुजन नाराज़ हैं, मित्र नाराज़ हैं, सगे-सम्बन्धी नाराज हैं, और तो और, तुम भी नाराज़ हो।

लीला : नहीं, मैं तो खुश हूँ कि आपने दक्षिण भारत के इंजीनियर को चुना है। रामू भी दक्षिण भारतीय है और मैं समझती हूँ कि···

कैलाश० : (बिगड़कर)···कि हमने रामू को ही चुना होगा। नहीं, हमने रामू नाम के किसी व्यक्ति को नहीं चुना।

[नौकर रामू जल्दी से आकर पिछले दरवाज़े में खड़ा हो जाता है।]

लीला : लेकिन रामू का···

कैलाश० : (गुस्से से पागल होकर) रामू ! रामू !! रामू !!! यह नाम सुनते-सुनते मेरे कान पक गए हैं, मेरा भेजा छलनी हो गया है, मेरे ईमान और निष्ठा के किले में दरारें पड़ गई हैं। मैं यह नाम नहीं सुनना चाहता, नहीं सुनना चाहता।

[कैलाशनाथ तेजी से दायीं ओर के कमरे में चला जाता है। रामू जल्दी से आगे आता है।]

रामू : बीबीजी, बाबूजी को क्या हुआ ?

लीला : तेरा सिर ! तू यहाँ क्यों चला आया ? पता नहीं, खाना खाने के लिए मेहमान आ रहे हैं ?

रामू : जी, राम कसम, खाना तो तैयार है।

लीला : आया बबुआ को घुमा लायी ?

रामू : जी हाँ, अब वह बबुआ को सुला रही है।

लीला : जा देख, बबुआ के साथ वह रानीजी खुद भी तो नहीं सो रहीं ?

रामू : जी, देखता हूँ। (जाते-जाते, रुककर) बीबीजी, राम कसम, एक बात है···

लीला : क्या है, जल्दी बोल ?

[तभी आया पिछले दरवाजे से झाँकती है।]

रामू : (झिझकते हुए) जी, वह ठेकेदार है न—विलायती शाह···

लीला : (चौंककर) क्या आज वह फिर आया था ?

रामू : जी हाँ, वह आया था और राम कसम, आपसे मिलना चाहता था, लेकिन···

लीला : अच्छा हुआ कि वह मुझसे नहीं मिला। तू नहीं जानता, तेरे साहब को वह एक आँख नहीं भाता। क्या काम था उसे ?

रामू : आज बाबूजी के दफ्तर में नौकरी के लिए उसके साले का इण्टरव्यू था।

लीला : अरे, उसी इण्टरव्यू के कारण ही तो आज घर में महाभारत मचा हुआ है। विलायती शाह के साले की बात तो दूरी रही, इण्टरव्यू में मेरा अपना मुँहबोला भाई भी फेल हो गया है। (कहती हुई कैलाशनाथ के कमरे में चली जाती है। रामू विमूढ़-सा खड़ा रह जाता है।)

आया : (आकर) अरे, नोट मिला ?

रामू : (चौंककर) नोट ? राम कसम, बहुत ढूँढ चुका, पता नहीं नोट छलावे की तरह कहाँ गायब हो गया ? (सोचता है।) अरे, हाँ, याद आया। मैंने डिब्बे में से शाल निकाला था न। लगता है, नोट उसी खाली डिब्बे में ही रह गया और विलायती शाह उसे लेकर चलता बना।

आया : नो-नो, हमारे साथ यह फोर-ट्वेन्टी नहीं चलेगा। नोट तेरे हाथ में हमने इन आँखों से देखा था।

रामू : (खीझकर) राम कसम, शादी हुई नहीं और तू अभी से बीवी की तरह पुलिसमैनी करने लगी ! कह दिया कि नोट मेरे पास नहीं है। यकीन न हो तो मेरी तलाशी ले ले।

[तभी दरवाजे की घंटी बजती है।]

आया : कोई आया है। हम तो चला अन्दर। (अन्दर जाती है।)

रामू : (स्वगत) यह चला अन्दर, तो हम भी चला अन्दर। बाबूजी ने कहा था—"रामू, कोई भी आए, दरवाजा मत खोलना।"

[रामू रसोई की ओर चला जाता है। दरवाजे की घंटी फिर बजती है। लीला लपककर बाहर आती है।]

रामू : (डांटकर) अरे कमबख्त, क्या बहरा हो गया है ? घंटी बज रही है और तू···?

रामू : (पलटकर) बाबूजी की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ।

लीला : आज्ञा के बच्चे, इधर आकर दरवाजा खोल !

रामू : (लौटकर) अब आपकी आज्ञा का पालन करता हूँ।

[रामू दरवाज़ा खोलता है। लीला की छोटी बहन सरोज नई चेतना से उमँगती-सी अन्दर आती है।]

सरोज : जीजी, कहाँ है रामू ?

रामू : जी, राम कसम, मैं तो आपके सामने···

लीला : बक नहीं। जा, अन्दर जाकर खाना लगा।

रामू : (सहमकर) जी, बहुत अच्छा। (अन्दर जाता है।)

लीला : सरोज, तुम तो आ गई, लेकिन तुम्हारा 'वह' वायदा करके भी अभी तक नहीं पहुँचा। क्या बजा है ?

सरोज : (घड़ी देखकर) सात बजे हैं।

लीला : (हँसकर) तो तुम जल्दी आ गई। क्यों न जल्दी आतीं ? आज दो बरस बाद अपने रामू से मिलोगी न।

सरोज : नहीं, मैं उससे झगड़ा करूँगी, बात तक नहीं करूँगी। दिल्ली आने की मुझे खबर तक नहीं दी।

लीला : अरे, कैसे खबर देता ? उसे पता ही नहीं था कि हम दोनों आजकल दिल्ली में हैं। इधर पिताजी के साथ हम कानपुर आयीं, उधर वह इंजीनियरिंग की विशेष ट्रेनिंग के लिए अमेरिका चला गया। न उसे हमारा पता, न हमें उसका पता।

सरोज : जीजी, आज बताती हूँ। उस विदेश-यात्रा ने ही सब गड़बड़ कर दिया, नहीं मैं तो उससे गुपचुप सिविल-मैरिज करने को तैयार थी।

लीला : (हँसकर) खैर, अब क्या इरादा है ?

सरोज : इधर उसे यह नौकरी मिली, उधर मैंने कोर्ट में उसे ले जाकर रजिस्टर पर दस्तखत करवाए।

लीला : (आह भरकर) लेकिन यह नौकरी ही तो नहीं मिल रही।

सरोज : (चौंककर) क्या कह रही हो, जीजी ? क्या जीजाजी माने नहीं ?

लीला : नहीं, वे किसी दूसरे उम्मीदवार को लेने का फैसला करके आए हैं और अपना फैसला किसी तरह भी बदलने को तैयार नहीं।

सरोज : (उत्तेजित होकर) यह कैसे हो सकता है ? कहाँ हैं जीजाजी ?

लीला : अपने कमरे में। लेकिन वे इस समय इस कद्र धर्मराज बने हुए है कि···

सरोज : कि महारानी द्रौपदी की भी नहीं सुनते।

[तभी कैलाशनाथ बाहर जाने के लिए तैयार होकर आता है—हाथों में दस्ताने पहनता हुआ।]

कैलाश० : (क्रुद्ध-सा) आ गई, सरोज ?

सरोज : मैं आयी और आप चल दिए। कहाँ जा रहे हैं इस समय ?

कैलाश० : (बात बनाते हुए) वह···वह···क्लब में कुछ काम है और···

सरोज : घर में मेहमानों को बुलाकर खुद चल देना, शायद क्षत्रिय धर्मराज की अतिथि-सत्कार की यही परिपाटी है ? खैर, जाइए, इस घर

लिए मैं पराई नहीं हूँ। मैं खाना खुद ही खा लूँगी।

[तभी कैलाशनाथ के हाथ का दस्ताना नीचे सोफे के पास गिर जाता है।]

सरोज : अरे, आपका दस्ताना गिर गया। (कहती-कहती पाँव से दस्ताने को सोफे के नीचे सरका देती है।)

कैलाश० : (चिढ़कर) और तुमने उसे सोफ़े के नीचे छुपा दिया। शरारत से बाज़ नहीं आती।

सरोज : शरारत करना तो मेरा अधिकार है, जीजाजी !

[कैलाशनाथ घुटने के बल बैठकर सोफ़े के नीचे से अपना दस्ताना निकालता है और साथ ही शाल वाला खाली डिब्बा भी।]

कैलाश० : (त्योरी चढ़ाकर) यह डिब्बा किसने यहाँ छुपाया ?

लीला : (हैरान-सी) यह डिब्बा मैंने तो अभी देखा है।

सरोज : यह तो साड़ी या शाल का डिब्बा जान पड़ता है। खोलकर देखिए।

कैलाश० : (डिब्बे को खोलकर) यह तो खाली है।

सरोज : खाली नहीं, दस का यह नोट रखा है इसमें। (नोट उठाकर दिखाती है।)

लीला : (और भी हैरान होकर) दस का नोट किसने रखा इसमें ?

कैलाश० : (सरोज से नोट लेकर सन्देह-भरी दृष्टि से लीला को देखते हुए) लीला, तुम्हें कुछ पता नहीं ?

लीला : (आहत-सी) आपको मुझ पर विश्वास नहीं ? (एकाएक) अरे हाँ, याद आया। मेरे पीछे आज शाम को विलायती शाह आया था।

कैलाश० : (घृणा से) वही ठेकेदार न, जिसने सारी दिल्ली में रिश्वत का एक चक्रव्यूह रच रखा है।

लीला : आज के इण्टरव्यू में क्या उसका साला भी आया था ?

कैलाश० : हाँ, आया था। विलायती शाह ने मुझे फोन किया था। अब समझा। तुमसे सिफारिश करवाने के लिए···

लीला : लेकिन मुझसे तो वह मिला ही नहीं। मेरे पीछे···

कैलाश० : तुम्हारे पीछे वह रामू से मिला होगा ?

लीला : हाँ। और रामू अभी-अभी उसके साले की आपसे सिफारिश करने को मुझसे कह भी रहा था, और···

कैलाश० : और क्या ?

लीला : रामू को मैंने दो-तीन बार इस कमरे में कोई खोयी चीज़ ढूंढते हुए देखा है।

सरोज : (हँसते हुए) तो वह डिब्बे में रखे गए नोट को ही ढूंढ रहा होगा। लीजिए, धर्मराज के घर में भी रिश्वत चलने लगी।

कैलाश० : (गुस्से से) रामू ! रामू !

रामू : (जल्दी से आकर) जी, बाबूजी !

कैलाश० : (नोट दिखाते हुए) तेरा यही नोट खो गया था न ?

रामू : (भौंचक्का-सा) जी, नोट ? कैसा नोट ?

कैलाश० : दस का नोट, जो इस खाली डिब्बे में रखा था और यह डिब्बा सोफ़े के नीचे रखा था।

रामू : (काँपकर) राम कसम, बाबूजी, मुझे न तो नोट का पता है, न डिब्बे का।

कैलाश० : तुझे अभी पता चल जाता है। अपना बोरिया-बिस्तर बाँध अ अभी, इसी समय यहाँ से चलता-फिरता नज़र आ।

लीला : (घबराकर) यह चला गया, तो हमें खाना कौन खिलाएगा ?

कैलाश० : खाना मैं खिलाऊँगा। आज से घर का सारा काम मैं अ हाथों से करूँगा। तुम राजकुमारी बनी रहो, लेकिन मैं तो क राजकुमार नहीं। मैं तो देश के निर्माण के लिए ईंटें ढोने वाला मजदूर हूँ।

रामू : (रोकर) बाबूजी, माफ कर दीजिए। मैं गरीब भूखों मर जाऊँगा

कैलाश० : तू मरे, चाहे जिए; लेकिन इस घर में तू नहीं रह सकता। जाने पहले यह भी बताता जा कि विलायती शाह इस डिब्बे में डाल क्या लाया था—शाल या साड़ी ?

रामू : (डरकर) जी, शाल।

कैलाश० : कहाँ है वह शाल ? बीबी जी के पास है या···?

लीला : (रोकर) आप मुझे नौकर के सामने जलील कर रहे हैं !

कैलाश० : (आहत-सा) अरे, हम सब जलील हैं, नौकर भी और मालिक-मा किन भी। आह ! मैं दुनिया के सामने दूध का धुला बनता थ ईमान और सच्चाई का देवता बनता था, धर्मराज बनता थ लेकिन···

लीला : (रोकर) तो आप समझते हैं कि मैं ही आपके पतन का कारण हूँ ठीक है। मुझे इस घर में रहने का अब कोई अधिकार नहीं। जा रही हूँ। (बाहर जाने लगती है।)

सरोज : ठहरो, जीजी ! रामू, बताता क्यों नहीं ? कहाँ है वह शाल ?

[तभी आया शाल लिए हुए आती है।]

रामू : जी, वह शाल···

आया : (शाल फेंकते हुए) यह रहा वह शाल। इस ईडियट ने हमें जबरदस्त दिया। हमें अपना वाईफ बनाना चाहता था।

रामू : (दर्दभरे स्वर में) आया !

कैलाश० : आया, मैं खुश हूँ कि तूने सब कुछ सच बता दिया। लेकिन अ तेरी भी हमें जरूरत नहीं। देश के मजदूरों के घर में यह सामन्त

चोंचले नहीं चल सकते। बच्चे की देखभाल अगर उसकी माँ नहीं कर सकती, तो मैं खुद करूँगा। आया, कल सवेरे तू भी यहाँ से किनारा कर।

आया : (गिड़गिड़ाकर) साहब, हम बहुत गरीब हैं, एकदम विडो है। हम कहाँ जाएगा? हमने सब सच बोला।

सरोज : जीजा जी, आया ने सच बोला है। इसे तो क्षमा कर ही दीजिए।

कैलाश० : खैर, इस घर में तो अब इसकी जरूरत नहीं। टहल-सेवा का काम छोड़कर इसे कोई उपयोगी धन्धा सीखना चाहिए। मैं कल इसे नारी-कल्याण-केन्द्र में दाखिल करवा दूँगा।

रामू : बाबूजी, मेरे लिए कोई नर-कल्याण-केन्द्र नहीं?

कैलाश० : हाँ, है—जेल! और अब पुलिस को फोन करूँ।

रामू : बाबूजी, मुझे पुलिस के हवाले न कीजिए। मैं आपके पाँव पड़ता हूँ।

कैलाश० : अरे, पुलिस के हवाले मैं यह रिश्वत का माल करना चाहता हूँ।

सरोज : जीजाजी, मेरे खयाल में तो फिलहाल विलायती शाह को आप खुद ही डाँट दीजिए।

कैलाश० : ठीक है, मैं अभी जाकर उसके ये रुपये और शाल लौटाता हूँ और··· (जाते-जाते रुककर) मेरा मफलर? शायद कमरे में रह गया है। (अपने कमरे में जाता है। तभी दरवाजे की घंटी बजती है।)

लीला : शायद रामू आ गया।

[लीला लपककर दरवाजा खोलती है। एक मद्रासी युवक अन्दर आता है।]

लीला : आ गए, भैया! बड़ी राह दिखाई।

युवक : (हाथ जोड़कर) नमस्कारम्, लीलाजी। अरे, सरोजजी भी इधर हैं?

[जल्दी से सरोज के पासप हुँचता है। सरोज बेरुखी से उसका स्वागत करती है।]

लीला : रामू!

युवक : (पलटकर) जी!

लीला : (हँसकर) अरे भई, मैं अपने इस नौकर को बुला रही हूँ। इसका नाम भी रामू है। अरे, तू यहाँ बुत बना क्यों खड़ा है? देखता नहीं, मेहमान आ गए हैं। जा, अन्दर जाकर मेज पर खाना लगा। आया, तू भी इसका हाथ बँटा।

[दोनों यंत्रवत् अन्दर जाते हैं। लीला कैलाशनाथ के कमरे में जाती है।]

युवक : अरे सरोजजी, आप मुझसे नाराज क्यों हैं जी? घर का सभी लोग नाराज़ लगता है। मिस्टर कैलाशनाथ कहाँ हैं?

सरोज : रामू, मुझे नहीं पता था कि तुम इतने नालायक हो।

युवक : नालायक ? मैं ?

सरोज : हाँ, तुम ! बड़े तीसमारखाँ बनते थे। अमेरिका ट्रेनिंग लेने गए थे और आज मामूली-सी इंजीनियर की पोस्ट के भी योग्य नहीं समझे गए।

युवक : क्या मैं सिलेक्ट नहीं हुआ ? मि० कैलाशनाथ के पी० ए० ने तो हिंट दिया था कि···

कैलाश० : (कमरे से आते हुए) सरोज, मैं खाना खाकर ही···

युवक : (जल्दी से उठकर) नमस्कारम्, सर। आज इण्टरव्यू के समय भेंट हुआ था।

कैलाश० : (चौंककर, भौंचक्का-सा) अरे, तुम मि० रामस्वामी ? (खुश होकर) लीला, सुनना ! तुमने मुझे पहले क्यों नहीं बताया कि तुम्हारे भाई का असली नाम रामू नहीं, के० रामस्वामी अय्यर है। रामस्वामी, इण्टरव्यू में तुम्हें बता देना चाहिए था कि तुम्हारा नाम रामू भी है।

रामस्वामी : सर, आपने इण्टरव्यू में यह बात पूछा ही नहीं।

लीला : (हँसकर) जब हम मद्रास में इनके पड़ोस में रहते थे, तो सभी इन्हें प्यार से रामू कहते थे।

कैलाश० : यह सब तुमने पहले क्यों नहीं बताया ? बेकार में इतना झगड़ा किया। तुम दोनों बहनें सुनकर खुश होगी कि इंजीनियर की पोस्ट के लिए हमने आज इन्हीं को चुना है।

सरोज : (खुश होकर) सच, जीजाजी ?

लीला : (खुश होकर, सरोज से) सरोज, बधाई ! (रामस्वामी से) देखो रामू, दो साल पहले मद्रास में सरोज को तुमने जो वचन दिया था, वह अब पूरा कर डालो।

[रामस्वामी और सरोज की अनुराग-भरी आँखें मिलती हैं।]

कैलाश० : (बड़े उत्साह से) हाँ, भई, तुम दोनों की जोड़ी बहुत अच्छी रहेगी। तुम दोनों के विवाह से यह भी साबित हो जाएगा कि नये भारत की तरुण पीढ़ी जाति, प्रान्त और उत्तर-दक्षिण की दीवारें गिराकर, भेद-भाव और ऊँच-नीच के चक्रव्यूह तोड़कर देश को एक बना रही है, राष्ट्रीय एकता का स्वप्न पूरा कर रही है। (एकाएक रुककर, उदास होकर) लेकिन, ठहरो। जब लोगों को पता चलेगा कि जिसे मैंने आज इंजीनियर की पोस्ट के लिए चुना है, उसी से मैं अपनी साली का विवाह कर रहा हूँ, तो कहेंगे—"यह कैलाशनाथ भी बेईमान और कुनबापरस्त निकला। इण्टरव्यू में उसे ही चुना, जिसे पहले से उसकी साली चुन चुकी थी।"

सरोज : और जीजाजी, कुनबे के लोगों का आपके बारे में जो मत है, वह भी

सुन लीजिए—"आप इतने ईमानदार और देशपरस्त हैं कि आपसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए।"

लीला : यह क्या कह रही हो, सरोज ?

कैलाश० : अरे भई, सरोज ठीक कह रही है। मनपसन्द वर-घर पाकर अब यह क्यों हमसे कोई सम्बन्ध रखेगी ? खैर, कहो, रामस्वामी···

लीला : अब आप भी इसे रामू ही कहिए।

कैलाश० : हाँ, तो रामू ! कहो, दिल्ली में आकर कैसे चक्रव्यूह में फँसे हो ?

रामस्वामी : सर, दिल्ली में चक्रव्यूह ही चक्रव्यूह है !

[सब हँसते हैं।]

१४

तलाक

रेवतीसरन शर्मा

श्री रेवतीसरन शर्मा का जन्म सन् १९२४ में हापुड़ में हुआ था। शिक्षा हापुड़ और मेरठ में हुई। रेडियो के श्रोताओं में ऐसा कौन होगा जिसने शर्मा जी के ध्वनि-नाटक सुने और सराहे न हों। आप गम्भीर और परिश्रमी लेखक हैं और ऐसा कोई तीर नहीं फेंकते जो तुक्का बनकर रह जाए! आपके कथानक घिसे-पिटे नहीं होते। उनका निर्माण आप बड़ी मेहनत से करते हैं। शैली आपकी उलझाव से मुक्त और जानदार होती है।

उपन्यास, कहानी और आलोचना पर भी आपने अपनी कुशल लेखनी उठाई है। कई पुस्तकें पुरस्कृत भी हो चुकी हैं।

रचनाएँ

'पत्थर और आंसू', 'न मील, न मंजिल', 'फूल मुरझा गए', 'काफिला', 'आग, राख और रोशनी', 'अमावस का अंधकार'; 'अंधेरे का बेटा', 'न धर्म न ईमान', 'चिराग की लौ', 'अपनी धरती,' आदि।

पहला दृश्य

एक मामूली-से घर का कमरा जिसमें एक तरफ चारपाई, दूसरी तरफ कुछ ट्रंक रखे हैं। अलगनी पर कपड़े टंगे हैं। एक कोने में साधुराम नंगे शरीर, आँखें मूँदे, पूजा की मुद्रा में बैठा है। इला एक कमीज़ हाथ में लिए आती है।]

इला : अब उठिये, समय हो गया।

साधुराम : किस बात का ?

इला : आज आपको नौकरी के इण्टरव्यू के लिए जाना है।

साधुराम : (स्वर में ऐसी कृत्रिमता है जैसे तोते के स्वर में होती है जो रटी हुई बात को दोहराता चला जाता है, बिना उसका अर्थ समझे। उसके स्वर की यही नाटकीयता हास्य-उत्पादक बन जाती है।) लेकिन मैं कह चुका हूँ, आज मेरा इकादशी का निर्जल व्रत है और मेरे महात्माजी पधारने वाले हैं।

इला : लेकिन इकादशी और भी आएँगी। महात्माजी पधारते ही रहते हैं।

साधुराम : इला, मैं तुम से कितनी बार कह चुका हूँ मेरी श्रद्धा-भक्ति, मेरी साधु-सेवा में विघ्न डालने की कोशिश न किया करो। मैं अपने धर्म-कर्म और अपने महात्मा-परमात्मा को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।

इला : लेकिन तुम अगर आज इण्टरव्यू में न जाओगे तो मेरे पिताजी का किया-कराया सब रद्द हो जाएगा। नौकरी हाथ से निकल जाएगी।

साधुराम : निकल जाएगी तो क्या हो जाएगा ? जो परमात्मा ने विचारा है, उस में तुम या तुम्हारे पिता क्या बदल सकते हैं। और जिस नौकरी को तुम इतना महत्त्व देती हो, वह तो मैं अपने आप छोड़ चुका हूँ।

इला : और इसी का फल तो मैं भोग रही हूँ कि आज घर में खाने को नहीं है; तन पर अच्छा पहनने को नहीं है; मैं और मेरा बच्चा जरा-जरा-सी चीज़ के लिए तरस गए हैं।

साधुराम : तू मूर्ख है, माया-मोह में फँसी है, इसलिए तरसती है। तेरा ध्यान इस संसार में है, इसलिए जलती है, कुढ़ती है, दुःख भोगती है। लेकिन मुझे देख। मैंने सब चीजों का मोह त्याग दिया। सरकारी स्कूल की पक्की नौकरी को लात मार दी। भोजन और वस्त्र की चाह को सूक्ष्म से सूक्ष्म कर दिया है और मैं खुश हूँ। मेरी आत्मा को, मेरे मन को वह शान्ति प्राप्त है जो आज तक प्राप्त नहीं हुई।

इला : देखिए, आज मैं आपसे बहस करना नहीं चाहती। मैं आपकी भक्ति-

पहला दृश्य

एक नामूली-से घर का कमरा जिसमें एक तरफ चारपाई, दूसरी तरफ कुछ ट्रंक रखे हैं। अलगनी पर कपड़े टंगे हैं। एक कोने में साधुराम नंगे शरीर, आँखें मूंदे, पूजा की मुद्रा में बैठा है। इला एक कमीज़ हाथ में लिए आती है।]

इला : अब उठिये, समय हो गया।

साधुराम : किस बात का ?

इला : आज आपको नौकरी के इण्टरव्यू के लिए जाना है।

साधुराम : (स्वर में ऐसी कृत्रिमता है जैसे तोते के स्वर में होती है जो रटी हुई बात को दोहराता चला जाता है, बिना उसका अर्थ समझे। उसके स्वर की यही नाटकीयता हास्य-उत्पादक बन जाती है।) लेकिन मैं कह चुका हूँ, आज मेरा इकादशी का निर्जल व्रत है और मेरे महात्माजी पधारने वाले हैं।

इला : लेकिन इकादशी और भी आएँगी। महात्माजी पधारते ही रहते हैं।

साधुराम : इला, मैं तुम से कितनी बार कह चुका हूँ मेरी श्रद्धा-भक्ति, मेरी साधु-सेवा में विघ्न डालने की कोशिश न किया करो। मैं अपने धर्म-कर्म और अपने महात्मा-परमात्मा को छोड़कर कहीं नहीं जाऊँगा।

इला : लेकिन तुम अगर आज इण्टरव्यू में न जाओगे तो मेरे पिताजी का किया-कराया सब रद्द हो जाएगा। नौकरी हाथ से निकल जाएगी।

साधुराम : निकल जाएगी तो क्या हो जाएगा ? जो परमात्मा ने विचारा है, उस में तुम या तुम्हारे पिता क्या बदल सकते हैं। और जिस नौकरी को तुम इतना महत्त्व देती हो, वह तो मैं अपने आप छोड़ चुका हूँ।

इला : और इसी का फल तो मैं भोग रही हूँ कि आज घर में खाने को नहीं है; तन पर अच्छा पहनने को नहीं है; मैं और मेरा बच्चा जरा-जरा-सी चीज़ के लिए तरस गए हैं।

साधुराम : तू मूर्ख है, माया-मोह में फँसी है, इसलिए तरसती है। तेरा ध्यान इस संसार में है, इसलिए जलती है, कुढ़ती है, दुःख भोगती है। लेकिन मुझे देख। मैंने सब चीजों का मोह त्याग दिया। सरकारी स्कूल की पक्की नौकरी को लात मार दी। भोजन और वस्त्र की चाह को सूक्ष्म से सूक्ष्म कर दिया है और मैं खुश हूँ। मेरी आत्मा को, मेरे मन को वह शान्ति प्राप्त है जो आज तक प्राप्त नहीं हुई।

इला : देखिए, आज मैं आपसे बहस करना नहीं चाहती। मैं आपकी भक्ति-

भावना को ठेस पहुँचाना नहीं चाहती। वह सब कुछ मैंने आपकी ख़ातिर अपने दिमाग से निकाल दिया है। लेकिन एक चीज़ है जो मैं कभी बर्दाश्त न कर सकूँगी। मैं अपने बच्चे को भूखा-नंगा नहीं देख सकती।

साधुराम : लेकिन मूर्ख, तू किसका पेट भर सकती है? तू किसका तन ढँक सकती है? अरे, यही तो बुद्धि का वह विकार है जो तुझे बेचैन और अशान्त किये हुए है। अरे, वह परमात्मा है जो सबका पिता है; जो सबको जिलाता है और मारता है; जो सबको खिलाता-पिलाता और पहनाता है। तू उसकी देन पर, उसके अपार भंडार पर, उसकी कृपालुता पर क्यों सन्देह करती है?

इला : इसलिए कि कल मेरे घर में सब कुछ था और आज कुछ नहीं है। कल तक मुझे रोशनी नजर आती थी, पर आज अँधेरा नज़र आता है। कल तक मैं लोगों को देती थी, आज उनसे लेती हूँ। तुम्हें मालूम है अब मैं जरा-जरा-सी चीज़ पड़ोसियों से माँगकर लाती हूँ!

साधुराम : तो क्या हुआ? भगवान् आप तो चलकर कोई चीज़ देने नहीं आते। वह किसी को माध्यम बनाते हैं। अगर उन्हें अब पड़ोसियों द्वारा हमारा अंश दिलाना पसन्द है तो इसमें उदास होने की क्या बात है? संसार में जितने हाथ हैं, वे सब भगवान ही के हाथ तो हैं।

इला : तो क्या तुम मुझे भीख लेने को कह रहे हो? मैं भिखारिन बन जाऊँ!

साधुराम : लेकिन भिखारिन तू कब नहीं थी? और कौन है जो भिखारी नहीं है? दाता तो इस संसार में केवल एक है—वही परमपिता परमात्मा।

इला : और इस परमपिता ने आपको आदेश दिया है कि काम न करो! निठल्ले सुलफा पीने वाले साधुओं की सोहबत में बैठकर···

साधुराम : (गरजकर) इला! अगर इससे आगे तूने एक शब्द भी कहा···

इला : तो तुम क्या कर डालोगे? कौन-सा अहित है जो तुमने नहीं किया? कौन-सा सपना और कौन-सी मेरी चाह है, जो तुमने अपनी इन काठ की खड़ाऊँ तले नहीं रौंदी? तुमने मुझसे मेरा क्या कुछ नहीं छीना? जानते हो मेरे सीने में आस के कितने अनगिनत नन्हे-नन्हे पौधे थे, जिन्हें लेकर मैं तुम्हारे घर आयी थी? मुझे पढ़ने का, आगे पढ़ने का, एक साफ-सुथरे और सजे हुए मकान में रहने का कितना चाव था। जब मैंने सुना कि मेरी शादी गवर्नमेंट स्कूल के अंग्रेजी टीचर से होने वाली है तो मेरे सीने में वे नन्हे पौधे ऐसे लहलहा उठे थे, जैसे बारिशों से पहले आनेवाली नम ठंडी हवाओं ने उन्हें गुदगुदा दिया हो। मैंने सोचा—मैं भी जाकर बी० टी० का कोर्स पास कर लूँगी। किसी गर्ल्स स्कूल में टीचर हो जाऊँगी। ज़िन्दगी में मुहब्बत और मेहनत के मिले-जुले फूल खिलेंगे। लेकिन तुमने सब कुछ तबाह कर दिया।

साधुराम : तबाह नहीं किया—तुझे मोह और माया के सागर में बहने से और अन्त

में डूबने से उबार लिया। तू अभी तक इन्द्रियों के वश में है। तुझे ज्ञान की आवश्यकता है।

इला : और वह ज्ञान मुझे तुम दोगे, जो मेहनत से जी चुराकर भाग खड़े हुए हो ! वह ज्ञान मुझे तुम्हारे वह महात्मा देंगे जो इन्द्रियों पर काबू पाने के लिए उपदेश के बदले दूध और घी से अपनी इन्द्रियों और अँतड़ियों के लिए चिकनाई हासिल करते फिरते हैं ! मुझे तुम्हारे इस ज्ञान की जरूरत नहीं जो औरतों को भिखारिन बनाता है।

साधुराम : देख, अगर तूने मेरे धर्म के विरुद्ध कुछ और कहा तो मुझसे बुरा कोई न होगा। मैं उससे बात करना नहीं चाहता जिसकी आत्मा इतनी पतित हो चुकी है।

इला : मेरी आत्मा पतित हो चुकी है ? मैं पूछती हूँ तुम्हारा अपना धर्म क्या है ? एक दिन तुम एक औरत का हाथ पकड़कर अपने घर लाए। उसकी सारी जिम्मेदारी उठाते हुए तुमने उसे एक बच्चे की माँ बनाया। इस तरह तुम एक औरत के पति और एक बच्चे के बाप बन गए। क्या तुम्हारा अब धर्म नहीं कि तुम उस औरत को सुखी रखो ? उस बच्चे को पाल-पोस-कर, पढ़ा-लिखाकर, एक अच्छा आदमी बना दो ? यह कौन-सा धर्म है कि एक बन्धन को तोड़कर, एक वचन से मुँह मोड़कर, एक जिम्मेदारी से बच निकलकर, तुम उसी धर्म-कर्म को संभालने चले हो जो ज़िन्दगी का दुश्मन है ?

साधुराम : मेरा धर्म-कर्म जिन्दगी का दुश्मन है ?

इला : जिन्दगी का दुश्मन नहीं है तो क्या है ? जरा अपनी ओर देखो, वह चेहरा जो कभी चमकता था आज सूखकर हड्डियों का ढांचा बन गया है। वे आँखें जो कभी नर्मी और मुहब्बत से नम रहती थीं, आज खुश्क और बीरान हैं। वे होंठ जो मुसकराते रहते थे अब सूखी रोटी के किनारों की तरह खुश्क हो गए हैं। तुम्हें देखकर तुम्हारी माँ सहम जाती है। मैं कोने में जाकर आँसू बहाती हूँ और तुम्हारा बच्चा डरकर बाहर निकल जाता है।

साधुराम : केवल इसलिए कि तुम सब मूर्ख हो। अज्ञानी हो। बाहरी रूप देखते हो, अन्तरात्मा का प्रकाश नहीं देखते। अरे, मेरे अन्तर में जो ज्योति जल रही है, उसे देखो।

इला : लेकिन जो अन्दर की ज्योति बाहर अँधेरा करती है; जो आत्मा बढ़े हुए गलों की तरह शरीर का सर्वनाश करती है, मुझे उससे कोई सरोकार नहीं।

साधुराम : तो फिर तू अपनी राह चल। अगर तू माया की दलदल में फँसना ही चाहती है तो तू जा। मैं नहीं जाऊँगा।

इला : यह तुम्हारा आखिरी जवाब है ?

साधुराम : हाँ, मैं आज इण्टरव्यू में नहीं जाऊँगा।

इला : तो एक बात याद रखना। आज के बाद तुम मुझसे किसी चीज़ की माँग न कर सकोगे। तुम्हारी तरह मैं भी आज से आज़ाद हूँ।
[इला विद्रोह से सुलगती अन्दर चली जाती है। अरुण 'क्षुद्र नारी, मोह-माया में लिप्त नारी' कहता हुआ अपनी पुस्तकें उठाता है और लकड़ी की खड़ाऊँ पर चलता बाहर निकल जाता है।]

दूसरा दृश्य

वही कमरा। अरुण की बूढ़ी माँ एक ट्रंक खोलकर उसमें से कपड़े निकाल-कर कुछ देख रही है। अरुण अन्दर आता है।

साधुराम : माँ!

माँ : हाँ, बेटा।

साधुराम : इला कहाँ गई ?

माँ : बेटा, बच्चे को डॉक्टर के यहाँ लेकर गई है।

साधुराम : क्यों ? क्या उसने महात्माजी की दी हुई भस्म नहीं दी ?

माँ : बेटा, भस्म से क्या हो सकता है। बच्चे को नमूनिया है।

साधुराम : अरे, नमूनिया छोड़ डबल-नमूनिया हो। महात्माजी की चुटकी से तो तपेदिक के मरीज हर-हर करके उठ खड़े होते हैं।

माँ : बेटा, बच्चे की बहुत बुरी हालत है। बिना डॉक्टर की दवाई के वह अच्छा न होगा।

साधुराम : माँ, तुम्हारी बुद्धि को भी क्या हो गया है! क्या डॉक्टर भगवान से बड़ा है ? वह आए तो मुझे बताना। मैं महात्माजी को अन्दर लाऊँगा। उनका हाथ लगते ही सारे रोग कट जाएँगे।

माँ : (हल्की आवाज में) अच्छा, बेटा।

साधुराम : इतने एक काम करो, माँ। मेरा बड़ा कोट निकाल दो और वह कम्बल निकाल दो जो इला पिछले साल लायी थी।

माँ : (चौंककर) इनका क्या करोगे, बेटा ?

साधुराम : मुझे अपने गुरु-भाइयों को देने हैं, उनके पास कम्बली नहीं है।

माँ : (घबराकर) मगर बेटा, वह इतने कीमती हैं और बहू अपने मैके से लायी है।

साधुराम : तो क्या हुआ ? वस्त्र का और शरीर का क्या मोल! दोनों का नाश होना है। और यहाँ क्या मेरा और क्या किसी दूसरे का है, सब भगवान् का दिया है।

माँ : लेकिन बेटा, घर में हमारे ओढ़ने को कोई और कम्बल नहीं है।

साधुराम : इसकी तुम क्यों चिन्ता करती हो ? इसकी चिन्ता वह ऊपरवाला करेगा।

माँ : लेकिन बेटा···

साधुराम : महात्माजी ने गलत नहीं कहा । [illegible] मोह-माया का सबसे बड़ा बन्धन होती है । तुम एक ओर हट जाओ

माँ : (भयभीत होकर) क्यों ? तू क्या करेगा ?

साधुराम : उन कम्बलों को निकालकर ले जाऊँगा, जिनको [illegible] हुए तुम्हारी लोभ में लिप्त आत्मा सिसकती है ।

माँ : लेकिन बेटा, ये बहू के हैं । इन्हें मत ले जा । वह आएगी तो···

साधुराम : क्या करेगी ? कह देना मैं ले गया हूँ । मैं उसका पति हूँ जिसे उसके तन-मन-धन सब पर पूरा अधिकार है ।

[साधुराम आगे बढ़कर ट्रंक में से कम्बल और कोट निकालता है और बाहर चला जाता है । उसके जाने के बाद इला आती है । उसकी गोद में बच्चा है, छोटे कम्बल में लिपटा हुआ ।]

माँ : बहू, तू आ गई ! क्या कहा डॉक्टर ने ?

इला : डबल नमूनिया का डर है ।

माँ : हाय, डबल नमूनिया ! मेरे राम, अब क्या होगा ?

इला : घबराओ नहीं, माँजी । मैं दवाई ले आयी हूँ । (बच्चे को चारपाई पर बिठाकर) डॉक्टर ने कहा है कि हवा नहीं लगनी चाहिए । तुम मेरे ट्रंक से कम्बल निकालकर इस पर डाल दो ।

माँ : (घबराकर) कम्बल ?

इला : हाँ । वे नए कम्बल जो मैं लायी थी दोनों ले आओ ।

माँ : लेकिन कम्बल तो···

इला : कम्बलों को क्या हुआ ?

माँ : वह ले गया ।

इला : वह कहाँ ले गए ?

माँ : अपने महात्मा को देने ।

इला : (चिढ़कर) और तुमने उन्हें रोका नहीं ?

माँ : मैंने बहुतेरा रोका लेकिन वह आप निकालकर ले गया ।

इला : लेकिन तुम्हें मालूम है वे कम्बल मेरे थे, मैं लायी थी !

माँ : मैंने सब कुछ कहा था बहू, लेकिन उसने एक न सुनी ।

इला : तो अब मेरे सामान तक भी नौबत पहुँचने लगी । मैं तो जेवर बेच-बेचकर अपने बच्चे का इलाज करा रही हूँ और वह मेरा सामान मुसटंडों को लुटा रहे हैं ।

माँ : मुझे आज मालूम हुआ है, बहू । चोर की माँ तो कोठे में मुँह देकर रोती है । मैं माँ होकर बेटे की बुराई कैसे करती ? वह तो मेरे जेवर-कपड़े भी एक-एक करके ले जा चुका है ।

इला : तुम्हारे जेवर-कपड़े ?

माँ : हाँ, बहू । यह जो रोज़ कीर्तन होते हैं; यह जो साधुओं को दूध-घी पिल...

जाते हैं; यह जो पाँच-पाँच सेर दूध का चरणामृत और मिठाई का भोग बनता है, इसके लिए रुपये कहाँ से आते हैं ? यह मेरे जेवर बेचकर आते हैं।

इला : लेकिन जब मैं पूछती थी तो तुम कहती थीं कि इसके पास अपना बचा हुआ रुपया होगा।

माँ : और क्या कहती ! मैं तो दो तरह मारी गई। एक तरफ बेटा निकलवा-निकलवा कर लेता रहा, दूसरी तरफ साधु धोखा देकर लूटते रहे।

इला : साधु धोखा देकर ?

माँ : हाँ, बहू। अपने बेटे को वैरागी होने से बचाने के लिए मैंने तुझसे छुपकर क्या-क्या जतन न किए। मैंने साधुओं से गंडे-तावीज लिए और जाप करवाये कि मेरा बेटा ठीक हो जाए। वे उधर बेटे को बहकाते रहे और इधर माँ को लूटते रहे। फल कुछ न निकला।

इला : फल कैसे न निकला ! फल तो निकल आया। यह जो घर का सर्वनाश हो गया है, यह क्या कुछ कम फल है ! आज मैंने अपने बच्चे का इलाज कराने के लिए अपने हाथों की चूड़ियाँ बेची हैं। कल मुझे अपने तन के कपड़े बेचने होंगे, और परसों शायद अपने को···

माँ : ऐसे बुरे बोल न बोल, बेटी। वह सम्हल जाएगा। उसे सुमति आ जाएगी। भगवान मेरी अरदास जरूर सुनेगा।

इला : तो तुम भी अपने बेटे की तरह भगवान के आसरे बैठी रहो। लेकिन मैं एक डाक्टर की बेटी हूँ जो भगवान के आसरे बैठने के बजाए उस हिस्से को काटकर फेंक देता है जो जिस्म में ज़हर फैलाने लगता है।

माँ : (काँपकर) बहू ! यह तूने क्या कहा ?

इला : कुछ नहीं ! सिर्फ इतना बताया है कि मैं तुम्हारे उस भगवान के आसरे बैठी रहने वाली नहीं हूँ जो जिन्दगी नहीं देता, बस मोक्ष ही देता है। (विद्रोह की भावना से सुलगती अन्दर चली जाती है।)

[साधुराम दाखिल होता है।]

: माँ !

माँ : कौन ? बेटा अरुण ! यह क्या ?

साधु : अब मैं अरुण नहीं हूँ, माँ। आज से मेरा नाम साधुराम है। महात्माजी ने मुझे दीक्षा दे दी है।

माँ : (चीखकर) क्या ? तू साधु हो गया ! और तेरे बाल ? तूने बाल भी कटा लिए ?

साधु : हाँ, माँ। भगवान के उपासक साधुराम से उत्तम और कोई नाम नहीं हो सकता। और बाल ? उनके कट जाने से···

माँ : (रोकर) यह तूने क्या किया, मेरे बेटे ? इस उमर में तू संन्यासी हो गया।

साधु : मैं संन्यासी नहीं हुआ, माँ। सिर्फ मैंने साधु-जनों की सेवा और उनके सत्संग

का व्रत लिया है। इससे मन को बड़ी शान्ति मिलती है। इस दीक्षा के उपलक्ष्य में मेरे महात्माजी और मेरे गुरुभाई यहीं भोजन करेंगे। उनके लिए खाना बनाओ।

माँ : लेकिन बेटा! तेरा बेटा बीमार है। बहू दो रात से सोयी नहीं है। खाना कौन बनाएगा? और घर में न घी है, न आटा है।

साधु : जब दवा, दूध और फलों के लिए पैसे आ सकते हैं तो भगवान के भोग के लिए क्यों नहीं आ सकते? इला से कहो।

माँ : इला कहाँ से लाएगी! वह तो अपनी चूड़ियाँ बेचकर दवाई लायी है, बेटा।

साधु : तो क्या हुआ? धातु माया का रूप है। इससे आदमी जितना भी विरक्त हो जाए उतना ही वह भगवान के समीप पहुँच जाता है।

इला : (अन्दर आकर) तो फिर तुम, तुम्हारे गुरु और तुम्हारे गुरुभाई भगवान से दूर होने की कोशिश क्यों कर रहे हैं?

साधु : तुमसे किसने कहा?

इला : तुमने।

साधु : मैंने?

इला : हाँ। अभी तुमने कहा कि तुम्हें, तुम्हारे गुरु और तुम्हारे गुरुभाई को भोजन चाहिए। लेकिन भोजन खाने से नसों में रक्त दौड़ता है और शरीर में शक्ति आती है, इन्द्रियाँ जागकर काम करने लगती हैं और इन्सान उस दुनिया के बजाए इस दुनिया की बातें सोचने लगता है। भगवान को पाने के लिए तो तुम्हें भूखे रहना चाहिए।

साधु : लेकिन भूखा रहने से शरीर का अन्त हो जाता है।

इला : यही तो होना चाहिए। जितनी जल्दी तुम लोगों के शरीर का अन्त हो जाए, उतनी जल्दी भगवान मिल जाएगा।

माँ : (काँपकर) बहू! तू अपने पति को क्या कह रही है!

इला : पति को? नहीं, मैं तो साधुराम को कह रही हूँ जो सिर मुँड़वाकर मेरे जेवरों से खरीदा हुआ अन्न खाने आया है!

साधु : इला?

इला : मुझे इस नाम से न पुकारो। इस नाम से मुझे मेरा पति पुकारता था, लेकिन वह मर गया।

साधु : इला!

माँ : बहू!

इला : चीखने और चिल्लाने की जरूरत नहीं है आप लोगों को। [illegible] खिलाने से इनकार करने का हक इस इन्सान को हासिल है।

साधु : इला! तू होश में है?

इला : हाँ, बहुत दिनों कोशिश करने के बाद आज मैं होश में आयी हूँ।

माँ : तू अपने मुँह से अपने पति को मरा हुआ कह रही है?

इला : हाँ। और यह गलत नहीं है। पति कोई आदमी नहीं होता। पति तो एक रिश्ता होता है और यह रिश्ता इस तरह पैदा होता है कि एक मर्द एक औरत के जीवन की जिम्मेदारियाँ उठाने का वचन देता है; और उसके बदले औरत उसकी सेवा का जिम्मा लेती है। जिस दिन आदमी या औरत इस जिम्मेदारी को उठाने से इनकार कर देते हैं, उस दिन यह रिश्ता खत्म हो जाता है। और फिर पति एक पराया आदमी और पत्नी एक पराई औरत बनकर रह जाते हैं।

माँ : तू पति-पत्नी के रिश्ते को पैसे की तराजू में रखकर तोलती है? तेरे लिए पति इससे ज़्यादा कुछ नहीं?

इला : पति मेरे लिए इससे बहुत ज्यादा है। लेकिन वह कम-से-कम इतना जरूर होना चाहिए कि औरत की जरूरतें पूरी कर सके। अगर वह इतना भी नहीं कर सकता तो वह कुछ नहीं है। और अगर है तो एक श्राप है।

साधु : मैं तेरी जिन्दगी का श्राप हूँ?

इला : हाँ। अब तुम मेरी ज़िन्दगी का ही नहीं, मेरे बच्चे की ज़िन्दगी का भी श्राप हो। तुम अब जिन्दगी भर काम नहीं करोगे। तुम्हारे महात्मा और साधु घर का रहा-सहा चट कर जाएंगे। फिर मैं क्या करूँगी? क्या मैं भूखी रहूँगी? अगर भूखी नहीं रहूँगी तो क्या भीख माँगूंगी? और अगर मैं भीख माँगना भी मंजूर कर लूं तो मेरे बच्चे का क्या होगा? इसकी जरूरतें कौन पूरी करेगा? इसको कौन पढ़ाए-लिखाएगा? इसकी ज़िन्दगी कौन सँवारेगा? इसलिए मैंने फैसला किया है कि मैं तुम्हें उसकी जिन्दगी का श्राप न बनने दूंगी। मैं आज ही तुम्हें छोड़कर चली जाऊँगी।

साधु : कहाँ?

इला : जहाँ मेरा जी चाहेगा।

साधु : मगर आखिर कब तक के लिए?

इला : सदा के लिए।

माँ : तू सदा के लिए किस तरह जा सकती है? तू इसकी बहू है।

इला : मैं तलाक ले लूंगी।

साधु, माँ : (चौंककर) तलाक?

इला : हाँ। तुम एक औरत के पति और बच्चे के बाप बनने के काबिल नहीं रहे। तुम अब एक भगोड़े हो। इसलिए मैं भी तुम से आजादी ले सकती हूँ और लूंगी।

माँ : तू एक देवता, धर्मात्मा पति को छोड़ देगी? तलाक ले लेगी? यह धरती न फट जाएगी! यह आसमान न गिर जाएगा!

इला : ऐसा कुछ नहीं होगा। सिर्फ तुम्हारी, मेरी, मेरे बच्चे की और इनकी जिन्दगी और ज्यादा आसान हो जाएगी। दुनिया से कलह, क्लेश, खींचातानी, रोना-

पीटना कुछ कम हो जाएगा। मैं तुम्हारी हालत समझती हूँ। तुमने सारी ज़िन्दगी पति को देवता माना है। लेकिन देवता उसे कहते हैं जो दया रखता है, सुख देता है। अगर वह यह कुछ न दे तो राक्षस बन जाता है।

साधु : (गरजकर) मैं राक्षस हूँ ?

इला : अपने लिए न होगे, लेकिन मेरे लिए और मेरे बच्चे के लिए हो। इसलिए मैं तुमसे तलाक लूँगी।

माँ : लेकिन इससे तेरी नाक न कटेगी ? हमारे नाम को कालिख न लगेगी ?

इला : मैं नाक और नाम को देखूँ कि अपनी इस नन्ही-सी कोंपल को देखूँ। तुम्हारे यहाँ रहकर, तुम्हारे इस धर्म को निभाकर मैं इसके लिए कुछ नहीं कर सकती। यहाँ न इसे खाने को मिलेगा, न पहनने को। इसलिए तलाक लेने से मेरी नाक न कटेगी। सिर्फ मेरी ज़िन्दगी का वह हिस्सा कट जाएगा जिसमें पस पड़ गया है; जो मेरी और मेरे बेटे की ज़िन्दगी के लिए खतरा बन गया है। (विद्रोहपूर्वक अन्दर जाती है।)

माँ : लेकिन बहू··· !

[सास पुकारती रह जाती है। साधुराम हतबुद्धि-सा खड़ा रह जाता है। परदा गिर जाता है।]

१५
अपना घर

विमला लूथरा

श्रीमती विमला लूथरा का जन्म लाहौर में हुआ था। पंजाब विश्वविद्यालय से राजनीतिशास्त्र में एम० ए० करके हंसराज महिला महाविद्यालय में पांच वर्ष तक अध्यापन-कार्य किया। लखनऊ और उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद में भी आप कुछ समय के लिए प्राध्यापिका रहीं। छः महीने के लिए यूरोप-भ्रमण को गईं, वहाँ की महिलाओं के रहन-सहन और उनकी सामाजिक स्थिति का विशेष अध्ययन किया।

पहले केवल अंग्रेजी में लिखती रहीं, परन्तु शीघ्र ही हिन्दी की ओर रुचि हुई जो क्रमशः बढ़ती गई। आप विशेष रूप से एकांकी लिखती हैं जिनमें हास्य और व्यंग्य का सुन्दर समावेश होता है।

रचनाएँ

'पचपन का फेर', आदि।

रायसाहव ने पिछली लड़ाई में फौज को मिलावट के खाद्य-पदार्थ और रद्दी फरनीचर सप्लाई करके काफ़ी पैसा वना लिया था और अव वह अपना खुद का वंगला वनवाने की सोच रहे थे। इसके दो मुख्य कारण थे। एक तो उनके सभी धनवान परिचितों ने अपने मकान बनवा लिए थे, और दूसरे उन्होंने हिसाव लगाकर देखा था कि हर महीने किराया देने की अपेक्षा स्वयं मकान बनवा लेना वचत और आर्थिक दृष्टिकोण से अधिक लाभदायक है।

परदा उठने पर एक मैदान में ईंटें, सीमेंट और लकड़ी के ढेर लगे दिखाई देते हैं। पृष्ठभूमि में ज़मीन पर काफी ऊँची मिट्टी भी पड़ी है जिससे ज्ञात होता है कि नींव की खुदाई शुरू हो गई है। रायसाहव और उनके दोनों लड़के चहलकदमी कर रहे हैं और थोड़ी-थोड़ी देर में अपने माथे का पसीना पोंछ लेते हैं, क्योंकि मई का महीना है और सुवह से ही सख्त गरमी पड़ने लगी थी।

रायसाहव : पहले तो तुम्हारी माँ राज़ी हो गई थीं कि दो पोर्च हों तो अच्छा है। और अव जव नींव लगभग तैयार हो गई तो कहती हैं कि एक पोर्च के वजाए कमरा वनना चाहिए। वलिहारी है स्त्रियों की वुद्धि की भी!

बड़ा लड़का : (घड़ी देखते हुए) साढ़े नौ वज गए, आर्कीटेक्ट अभी तक नहीं आया।

छोटा लड़का : अगर मैं उसकी जगह होता तो कभी का इस काम को छोड़ चुका होता। उसने इतना अच्छा नक्शा वनाया था, लेकिन हम उसे वार-वार वदल देते हैं। उसे दुःख तो होता ही होगा। उसका इसमें क्या दोष है?

रायसाहव : (क्रोध में) यह तो उसका काम ही है, और पैसे किस वात के लेता है? अगर इतना नाज़ुक-मिज़ाज ही बनना है, तो यह काम ही क्यों करता है? उस जैसे तीन सौ पैंसठ फिरते हैं, जो ख़ुशी से नक्शा वनाने को तैयार हो जाएँगे।

छोटा लड़का : मुझे तो इस में शक है।

बड़ा लड़का : माँ और दोनों वहनें अव तक क्यों नहीं आयी? शॉपिग किसी और दिन भी की जा सकती थी।

छोटा लड़का : एक जोड़ी हेअरपिन खरीदने के लिए उन्होंने सारा चाँदनी [illegible] मारा होगा—यदि चाहतीं तो किसी भी फेरीवाले से [illegible] थीं। नहीं तो घंटाघर के पास चाट-पकौड़ी उड़ाई जा [illegible]

[पास के मोड़ पर कार मुड़ने और फिर रुकने की [illegible]

रायसाहव : लो, आ गईं।

[माँ और दो लड़कियाँ [illegible] हैं। माँ के [illegible]

मालूम होता है कि इनके पास पैसे की तो कमी नहीं है, पर अक्ल की अवश्य है। बड़ी लड़की शांत और गंभीर लगती है। छोटी लड़की सजी-धजी तितली के समान है, मानो हाल ही में 'लेडी डार्विन कॉलिज' से पढ़कर निकली हो।]

छोटी लड़की : ओह, डैडी, हमें बहुत देर हो गई; बड़ा अफ़सोस है।

छोटा लड़का : छोड़ो भी यह सब—काम की बातें करो! आर्कीटेक्ट आने ही वाला होगा। उसका दिल तोड़ने के लिए वैसे ही हम उसके नक्शे में काफ़ी परिवर्तन कर चुके हैं। अब यह सब नहीं चलेगा। जल्दी से फ़ैसला कर डालो और उसके आते ही आखिरी बार बता दो कि कोठी में क्या-क्या होना चाहिए। मैं तो इस सब से पागल होता जा रहा हूँ।

माँ : यह ठीक है। हम सब अपने सुझाव रायसाहब को दे दें, और वह जो ठीक समझें करें।

छोटा लड़का : और जब आर्कीटेक्ट को सब बातें बता दी जाएँ, तो हम सब दिल्ली छोड़कर चले जाएँ—कल सुबह ही और तभी लौटें जब कोठी पूरी बन जाने की सूचना मिले।

छोटी लड़की : मसूरी जाना ठीक रहेगा। मेरी सहेली कमला कह रही थी···

बड़ा लड़का : (बात काटते हुए) ठीक है, बाबा, ठीक है! इस मकान का तो फैसला कर लो पहले! तो मेरा खयाल है कि कोठी का मुँह सड़क की तरफ हो, तीन सोने के कमरे हों, पीछे की तरफ एक रसोई हो और एक गैरेज···

रायसाहब : मेरी बात मानो तो कोठी ऐसी होनी चाहिए कि अवसर पड़ने पर उसके दो स्वतंत्र भाग किए जा सकें। जब चाहें हम पूरी कोठी में रहें, और मौका हो तो आधी किराए पर दे दें। इसके माने हैं, दो गैरेज, दो पोर्च, चार सोने के कमरे···

माँ : घर में जवान लड़कियों के रहते कोई किराएदार नहीं रखा जाएगा।

छोटी लड़की : (जैसे किसी ने डंक मार दिया हो) हम अपनी परवाह अपने आप कर सकती हैं। ममी, तुम हमारी चिन्ता मत करो।

माँ : मुझे तो इसमें शक ही है। और फिर पड़ोसी हर वक्त कुछ-न-कुछ माँगते ही रहते हैं, कभी टी-सेट चाहिए, कभी सीने की मशीन, कभी ग्रामोफोन।

बड़ा लड़का : अगर सामने के लॉन के दो टुकड़े कर दिए गए, तो वे बहुत छोटे हो जाएँगे। और अगर नहीं किए गए, तो उसकी बड़ी दुर्दशा होगी। दोअमली हुकूमत की तरह कठिनाइयों का पार नहीं रहेगा। फिर हर महीने किराया उगाहना भी तो कम मुसीबत का काम नहीं है।

छोटी लड़की : हूँ! सामने का लॉन तो बड़ा ही होना चाहिए, दो दरवाज़े हों, चारों कोनों पर फूलों की क्यारियाँ हों, हरे रंग की बेंचें हों···

बड़ी लड़की : (व्यंग्य से) पके अँगूरों की बेलें हों, बादलों में से झाँकता हुआ चांद हो और बेंच पर बैठा उमर खैयाम मधुकरी का स्वाद ले रहा हो···

रायसाहब : (कुढ़कर) खैर, यदि तुम सबकी यही राय है, तो मैं अपनी योजना वापस लेता हूँ।

छोटा लड़का : वह तो तीन महीने पहले ही रद्द की जा चुकी थी।

रायसाहब : मैंने तो सोचा था, पुरी के बाबर रोड वाले मकान जैसा ही हम भी बनवा लें।

माँ : फिर भी उसमें दो गैरेज बनवाए जा सकते हैं। अगर हम दूसरी कार न लें, तो भी एक गैरेज में गाय बाँधी जा सकती है।

बड़ी लड़की : नई दिल्ली में गाय इस तरह नहीं रखी जा सकती, उसके लिए नियम हैं।

माँ : नियमों को तो रायसाहब कुछ दे-दिलाकर भुगत लेंगे। सरकारी आदमियों को तो रुपया चाहिए।

[एक और कार के आने की आवाज़]

छोटी लड़की : लो, आर्कीटेक्ट आ भी गया, और हम वहीं-के-वहीं हैं।

[आर्कीटेक्ट प्रवेश करता है। उसके बाल अवस्था से पहले ही सफ़ेद हो गए हैं। उसे चलने में कठिनाई होती है। इस बात पर विश्वास करना कठिन है कि इंजीनियरिंग कॉलेज की पढ़ाई समाप्त करने के समय वह बड़ा ही हँसमुख था और उसकी आँखें चमकती रहती थीं।]

आर्कीटेक्ट : नमस्ते, रायसाहब!

रायसाहब : नमस्ते! आज हमें सब बातें तय कर लेनी हैं। आपके आने से पहले हमने सोच लिया था कि आज के बाद नक्शे में और कोई अदल-बदल नहीं होगी।

आर्कीटेक्ट : (ऐसी बातें वह पहले भी सुन चुका है, इसलिए विश्वास नहीं करता) : तो ?

बड़ा लड़का : लगभग सभी बातें तय हो गई हैं। तीन सोने के कमरे, एक बैठने का कमरा, एक खाने का कमरा, दो पोर्च, दो गैरेज···

माँ : दो स्टोर और एक रसोई।

छोटी लड़की : और, ममी, पैंट्री ?

छोटा लड़का : तीन गुसलखाने।

छोटी लड़की : हाँ, ऊपर फुहारे लगे हों, नहाने के लिए टब हों, टाइल नीले और सफ़ेद हों। मुझे नीला और सफ़ेद रंग बहुत पसंद है।

रायसाहब : बस, ठीक है। अब आप नक्शा बना दीजिए।

आर्कीटेक्ट : नौकरों के क्वार्टरों का क्या रहा ?

माँ : एक शंकर रसोइए के लिए, दूसरा ब्रह्म के लिए—बस दो काफ़ी है

बड़ा लड़का : ड्राइवर, माली और चौकीदार का क्या होगा? पाँच क्वार्टर होने चाहिए।

माँ : पांच? आधी जगह तो इन्हीं में घिर जाएगी।

छोटा लड़का : लेकिन नौकर पेड़ों के नीचे तो सो नहीं सकते।

छोटी लड़की : डैडी, खाने के और वैठने के कमरे को मिलाकर एक क्यों न कर दें?

माँ : स्टोर और लॉन मिलाकर एक नहीं हो सकते?

छोटी लड़की : (दुःखी होकर) ममी, तुम तो हर समय मेरा मजाक उड़ाती हो।

आर्कीटेक्ट : (झगड़े की आशंका से) पहले नौकरों के क्वार्टरों के वारे में तय कर लें, तो अच्छा रहेगा। नीचे की मंजिल में दो क्वार्टर नौकरों के लिए वन सकते हैं। उनके आगे छोटे से वरामदे हों। इनमें विवाहित नौकर रह सकते हैं और उनके ऊपर कुंवारे नौकरों के लिए दो कमरे वन सकते हैं। एक या दो कमरे गैरेजों के ऊपर भी वन सकते हैं। क्या विचार है?

माँ : ठीक ही है, लेकिन नौकरों को वरामदों की क्या जरूरत है? फिर मैं चाहती हूँ कि रसोइए का घर रसोई से जितनी दूर हो सके अच्छा है, वरना वह सामान आसानी से उड़ा सकेगा।

छोटी लड़की : लेकिन ऐसा होगा कैसे? रसोई मुख्य इमारत से कुछ दूरी पर तो होगी ही। एक वारादरी, जिसकी छत लाल खपरैल की होगी, रसोई से खाने के कमरे तक जाएगी...

माँ : और मेज तक पहुँचते-पहुँचते हर चीज ठंडी हो जाया करेगी। मुझे तो इसमें कुछ अक़्लमंदी दिखाई नहीं देती। साहव लोगों का काम तो इससे चल सकता है, क्योंकि वे तो हर चीज़ ठंडी खाते हैं, लेकिन चपातियाँ तो गरम ही होनी चाहिए, वरना पचतीं नहीं।

रायसाहव : तो रसोई पैंट्री के पास वनवाएँ?

माँ : पैंट्री की जरूरत ही क्या है? रसोई में ही कुछ तख्ते लगा लेंगे।

आर्कीटेक्ट : (अपनी घड़ी देखकर) साढ़े ग्यारह वज गए, मुझे तो अव अपने दफ्तर जाना है। कल सुवह हम लोग फिर मिल सकते हैं, तव तक आप पक्का फैसला कर लें।

रायसाहव : साढ़े ग्यारह! मुझे तो खयाल ही नहीं रहा। मुझे ग्यारह वजे चेम्स-फोर्ड क्लव में एक इनकम टैक्स वाले से मिलना था।

[रायसाहव घवराए हुए भागते हैं। उनके पीछे-पीछे ही उनका परिवार भी चला जाता है। अकेला रह जाने पर आर्कीटेक्ट अपनी जेव से एक नक्शा निकालता है और उसके टुकड़े-टुकड़े कर हवा में उड़ा देता है। माथे का पसीना पोंछते हुए वह एक ओर को चल देता है। परदा गिरता है।

पंद्रह सेकंड वाद परदा फिर उठता है। छः महीने वीत चुके

हैं, लेकिन दृश्य में विशेष अंतर नहीं हुआ है, केवल एक दीवार लगभग चार फुट ऊँची बन गई है।

लगता है कि किसी कारण से दीवार को आगे बनाना बंद कर दिया गया है। मिस्तरी हुक्का पी रहा है। कुछ मज़दूर उनके चारों ओर बैठे हैं। उनके मुख से स्पष्ट है कि उनके सम्मुख कोई समस्या उपस्थित है।

आर्किटेक्ट प्रवेश करता है। अब तक उसके सारे बाल सफ़ेद हो गए हैं, चेहरे पर चिंता के कारण झुर्रियाँ पड़ गई हैं। उसकी दशा से लगता है कि वह चक्कर खाकर गिरने वाला है।]

आर्किटेक्ट : रायसाहब नहीं आए ?

मिस्तरी : नहीं, अभी नहीं आए, इंजीनियर साहब।

[मोड़ पर कार की आवाज़]

मिस्तरी : यह शायद उनकी कार है।

[आर्किटेक्ट रायसाहब के पुरखों के सम्मान में कुछ अनुचित शब्द बड़बड़ाता है, लेकिन सौभाग्यवश अगली पंक्ति में बैठे दर्शक भी सुन नहीं पाते। रायसाहब अपने परिवार-सहित प्रवेश करते हैं।]

रायसाहब : हमें फिर देर हो गई। सर्दी भी तो कड़ाके की पड़ रही है, दिसंबर में इतनी सर्दी दिल्ली में कभी नहीं पड़ी थी।

आर्किटेक्ट : कोने वाले कमरे के बारे में क्या निश्चय किया ?

रायसाहब : हाँ, वह बजाए वर्गाकार के षटकोण वाला होना चाहिए।

आर्किटेक्ट : इसके माने हैं दीवार फिर से गिराई जाए और नींव नई खोदी जाए।

बड़ा लड़का : जी !

आर्किटेक्ट : (मिस्तरी से) मजदूरों से अभी वह दीवार गिरवा दो—फ़ौरन ! (धीरे से) इससे पहले कि इनका विचार फिर न बदल जाए।

[शेष नाटक के दौरान में मिस्तरी और मजदूर दीवार तोड़ते रहते हैं।]

छोटी लड़की : क्यों डैडी, आपका क्या खयाल है—दीवारों का निचला भाग लाल पत्थर का होना चाहिए, जैसा सेक्रेटेरियट की इमारतों में है ?

आर्किटेक्ट : और रसोई की चिमनी छत से लगभग तीस फुट ऊँची हो, ऊपर की ओर पतली होती चली जाए, जैसे कुतुब मीनार।

रायसाहब : (व्यंग्य न समझकर) वाह, कितना सुन्दर विचार है ! हमें यह पहले से क्यों न सूझा ?

आर्किटेक्ट : और सामने का लॉन ऐसा ढालू हो, जैसा लाल किले में है ?

रायसाहब : बहुत अच्छे !

बड़ा लड़का : क्या मूर्खता है !

छोटा लड़का : क्यों पिताजी, जब हम खाने के कमरे के पास रसोई बनाकर पैंट्री खत्म कर रहे हैं, तो एक कमरा मेरे पढ़ने के लिए भी निकल सकता

है ?

आर्कीटेक्ट : रसोई के पास ?

छोटा लड़का : नहीं, गैलरी की बायीं ओर।

आर्कीटेक्ट : (घबराकर) कौन-सी गैलरी ?

छोटी लड़की : क्यों, क्या गैलरी नहीं होगी कोठी में ?

आर्कीटेक्ट : मैंने तो गैलरी का जिक्र पहली बार अभी ही सुना है, इससे पहले कभी नहीं। एक गैलरी जरूर बन सकती है—एक क्यों, दो, तीन, जितनी चाहें। सेक्रेटेरियट में तो असंख्य गैलरी हैं।

माँ : मुझे तो यहाँ खड़े-खड़े सर्दी लग रही है, मैं तो घर चलती हूँ। तुम लोग जो भी फैसला करो मुझे स्वीकार है, लेकिन मेरे कमरे का एक दरवाज़ा रसोई में अवश्य खुलना चाहिए, दूसरा स्टोर में, तीसरा बरामदे में और चौथा गुसलखाने में।

बड़ी लड़की : थोड़ी देर और ठहरो, माँ। हम भी चलते हैं।

रायसाहब : जो बातें पहले तय करनी चाहिए, उन्हें तो हम छोड़े दे रहे हैं। पहले हम यह तय कर लें कि कोठी में होना क्या-क्या चाहिए—दो गैरेज, चार नौकरों के क्वार्टर, तीन गुसलखाने, एक रसोई···

माँ : पैंट्री नहीं होगी ?

रायसाहब : हाँ, पैंट्री नहीं। एक छज्जा···

आर्कीटेक्ट : कौन-सा छज्जा ?

रायसाहब : क्यों, दूसरी मंज़िल पर छज्जा नहीं बनेगा ?

आर्कीटेक्ट : एक मेरे ऊपर भी बनवा लीजिए—दो हो जाएँगे।

रायसाहब : क्या फ़रमाया ?

आर्कीटेक्ट : (उसके पैर काँप रहे हैं, साँस लेना कठिन हो रहा है। वह अपना माथा थामकर बेहोशी की-सी हालत में कहता है) मैंने कहा, दो छज्जे !

छोटा लड़का : और एक गैलरी।

बड़ा लड़का : दो पोर्च।

आर्कीटेक्ट : (आत्मसंयम खो बैठता है।) दो पोर्च डबल !

माँ : क्या कह रहा है यह ?

आर्कीटेक्ट : साझी, बोलो, तुम्हारी क्या बोली है ?

रायसाहब : कौन साझी ?

आर्कीटेक्ट : रसोइयाँ तुरप चाल हैं। मैं कह रहा था, दो पैंट्रियाँ डबल···रीडबल, चार लाल किले···दो सेक्रेटेरियट। (चीखता है।) बाज़ी हो गई !

[आर्कीटेक्ट बेहोश होकर ज़मीन पर गिर पड़ता है। मिस्तरी दौड़कर आता है और उसके मुंह पर पानी डालता है और सिर ऊँचा करने के

लिए एक-दो ईंटों का तकिया लगा देता है।]

प्रसाहब : इसे जल्दी से अस्पताल पहुँचा दें। जल्दी करो!

[सब उसे उठाकर ले जाते हैं। नेपथ्य से कार चलने की आवाज़ आती है। मिस्तरी और मज़दूर काम छोड़कर हुक्का पीने बैठ जाते हैं, जैसे कुछ हुआ ही न हो। हुक्के की गुड़गुड़ाहट कुछ देर गूंजती है और परदा गिरता है।]

१६
रोटीवाली गली

ज्ञानदेव अग्निहोत्री

श्री ज्ञानदेव अग्निहोत्री का जन्म सन् १९३५ में कानपुर में हुआ। अंग्रेजी साहित्य और समाजशास्त्र में एम० ए०। कानपुर के ही एक कॉलेज में अंग्रेज़ी-भाषा तथा साहित्य के प्रवक्ता। हिन्दी और अब भारतीय रंगमंच में उल्लेखनीय; नाट्य-लेखन और प्रस्तुतीकरण में विख्यात; कानपुर अकादमी ऑफ ड्रामेटिक आर्ट्स एवं उत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध संस्था 'नाट्य भारती' में निर्देशक।

अब तक कई नाटक प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें 'नेफा की एक शाम' बहुत लोकप्रिय है। पाँच राज्य-पुरस्कार तथा केन्द्रीय सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के विशेष पुरस्कार द्वारा सम्मानित इस नाटक के सारे भारत में पन्द्रह सौ से भी अधिक प्रदर्शन हो चुके हैं। कई भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद हुआ है, इस पर फ़िल्म भी बन रही है। आपका 'शुतुरमुर्ग' नाटक भी काफी चर्चित और प्रशंसित हुआ है।

रचनाएँ

नेफा की एक शाम, माटी जागी रे, वतन इतवार जिन्दाबाद, चिराग़ जल उठा, पुकार चौथा कोण, शुतुरमुर्ग।

पात्र

बीवी : अवस्था लगभग पचास वर्ष
शन्नो : अवस्था लगभग बीस वर्ष
बाली : अवस्था सोलह् वर्ष
मेहता : अवस्था लगभग तीस वर्ष
मिर्जा : अवस्था लगभग पचपन वर्ष
ठाकुर साहब : अवस्था लगभग पचास वर्ष

स्थान : बीबी का ड्राइंग रूम
समय : संध्या से पहले

एक असाधारण रूप से सजा हुआ कमरा। कमरे की दीवारें हलके नीले रंग से पुती हैं। बीच में एक छोटा सोफासेट है जिसके पास ही रखी तिपाई पर फोन रखा है। सोफे पर बीबी बैठी एक सस्ते किस्म की फिल्मी पत्रिका के पन्ने उलट रही है। बीबी अधेड़ उम्र की एक मोटी-सी औरत है। उसकी आवाज़ कर्कश है। पहले उसका मकान रोटीवाली गली में था, पर सरकारी कानून बन जाने की वजह से उसे अपना मकान छोड़ना पड़ा और अब उसने न्यू-कॉलोनी में एक अच्छा-सा मकान किराये पर ले लिया है जहाँ वह अपनी दो बेटियों के साथ रहती है। उसकी बड़ी बेटी शन्नो एक पूर्व-रूपाजीवा की पुत्री होते हुए भी कॉलिज में पढ़ती है। उसे कॉलिज में पढ़ाने में बीबी के अपने अलग कारण हैं। दूसरी बेटी बाली है जो मुश्किल से सोलह वर्ष की होगी। सेहत की खराबी की वजह से बीबी ने उसे पहाड़ों पर बहुत-सा रुपया खर्च करके भेज दिया था, अब वह आंखों में चमक और गालों पर सुर्खी लिए कल ही लौटी है। पर्दा उठता है।

बीबी : (ज़ोर से आवाज़ देकर) बाली···अरी ओ बाली! जरा एक गिलास पानी तो ले आ।

बाली : (नेपथ्य से) आयी, बीबी···

बीबी : (बड़बड़ाते हुए) यह मुई शन्नो तो बस जहाँ गई वहीं की हो रही। कितनी बार कहा कि वक्त पर घर आ जाया कर।

बाली : (पानी लिए हुए प्रवेश, मेज़ पर रखकर) लो, बीबी!

बीबी : (एक सांस में सारा पानी पीकर) अरे, जरा छज्जे से देख तो बाली, यह शन्नो कहाँ रह गई! मेहता के आने का वक्त हो रहा है और यह नासपीटी नदारद है।

बाली : (डरते-डरते) मेहता अभी भी आता है, बीबी?

बीबी : (हाथ नचाकर) आय-हाय, बड़ी भोली है मेरी मुन्नी। अरे हरामजादी, तेरे पहाड़ भेजने का खर्च क्या आसमान से टपक पड़ा था! यह जो तेरे गालों पर अब सुर्खानियाँ फूट रही हैं सो क्या जादू-मंतर से!

बाली : लेकिन···लेकिन बीबी, मैं तो समझती थी···

बीबी : तेरी समझ पर मैं कुर्बान जाऊँ लाडो, तू तो यह समझती थी कि रुपये पेड़ों पर लगते हैं!

बाली : नहीं, बीबी···मैं समझती थी कि शन्नो बाजी ने नौकरी कर ली है। उसने मुझे खत लिखा था।

बीबी : अरी खसमखानी, तेरी खोपड़ी में तो निरा गोबर भरा है, गोबर। कौन समझाए तुझे कि रोटीवाली गली के बाशिंदों को नौकरी नहीं मिलती।

बाली : क्यों, बीबी ?

बीबी : मुंहजली, आज ही सारे सवाल पूछकर रहेगी क्या ! चल, जरा बगल के मकान से पता कर शन्नो वहाँ तो नहीं बैठी है।

बाली : वह शायद मास्टरजी के यहाँ गई है।

बीबी : मास्टरजी के यहाँ ? किस से पूछकर ? आने दो हरामखोर को, खाल खींचकर रख दूंगी। (गुस्से से बिफरते हुए टहलने लगती है।)

बाली : (डरते-डरते) बीबी, यह मास्टरजी कौन है ?

बीबी : तेरा खसम है ! न जाने कहाँ से मैंने उसे अंग्रेजी पढ़ाने को रख लिया और रख क्या लिया मैं तो उस कमीनी की बातों में फंस गई। कहने लगी—बीबी, ऊँची जगहों पर शिकार खेलने के लिये अंग्रेजी जानना निहायत जरूरी है। अब यह मुआ मास्टर मेरे ही घर में डोरे डालने लगा। आने दो कलमुँही को !

[फोन की घंटी बजती है। बीबी लपककर उठाती है।]

बीबी : हलो, मैं बोल रही हूं बीबी। कौन, मेहता साहब···सलाम, हुजूर ! जी, अभी तो घर पर नहीं है, पर आती होगी, किसी सहेली के यहाँ गई है। जी, क्या कहा ? शन्नो को कश्मीर ले जाना चाहते हैं···कब ? जी, आज ही रात को ? शौक से ले जाइये। पर छोटे सरकार, सौदा दो हजार से कम पर न होगा···जी, शुक्रिया··· हाँ-हाँ, आ जाइये··· क्या ? जयपुर की जूतियाँ लाए हैं, बड़ी किस्मतवाली है शन्नो जो हुजूर अपने हाथों से पहनाने को कह रहे हैं। एक अर्ज है, मेरी छोटी बेटी बाली कल ही कई सालों के बाद पहाड़ से लौटी है। आज उसकी सोलहवीं सालगिरह है। (दबी जबान से) अगर ठीक समझें तो कोई छोटा-मोटा तोहफा···जी, बहुत बेहतर, हाँ-हाँ···आ जाइये। (फोन रख देती है। फिर दोनों हाथों से अपना सिर पकड़कर बैठ जाती है और बड़बड़ाने लगती है।) अब देखो इस कमीनी की हरकतें, यहाँ कुछ देर में ही मेहता आ जायेगा और वह उस मास्टर के बच्चे के साथ गुलछर्रे उड़ा रही है !···हाय अल्ला, मेरे तो सिर में पीर उठ आयी है। बाली, जरा दो हाथ लगा दे।

[बाली बीबी के पीछे खड़ी होकर सिर दबाती है।]

बाली : मेहता शन्नो को कश्मीर क्यों ले जाना चाहता है, बीबी···?

बीबी : अरे, चुप रह !···सिर दाब···

[कुछ क्षणों तक बाली सिर दबाती रहती है।]

बाली : बीबी···

बीबी : क्या है, री ?

बाली : मेहता शन्नो को कश्मीर क्यों ले जाना चाहता है ?

बीबी : अरे, समझ लेगी तू भी, वक्त आने दे।

बाली : साफ़-साफ़ कहो न, बीबी।

बीबी : (झल्लाकर) शन्नो का शरबत बनाकर पियेगा।

[बाली के हाथ अचानक बीबी के खुले बालों पर रुक जाते हैं, वह चिंतित हो उठती है।]

बीबी : (अजीब-सी हँसी-हँसकर) अरे, तू काहे घबराती है बन्नो···वक्त आने दे, तेरा भी कोई शरबत बनाकर पियेगा !

बाली : (घबराकर) बीबी···!

बीबी : हाँ री, यही तो जिन्दगी है ! किसी की जेब का शरबत हम बनाएँ, हमारे जिस्म का शरबत कोई बनाए···अभी तू बहुत कुछ नहीं समझती पर मैं चाहती हूँ कि अब तू सब कुछ समझ ले।

बाली : (घबराए स्वर में) बीबी, मुझे तुम्हारी बातें सुनकर डर लग रहा है।

बीबी : जब मैं तेरी उमर पर थी, तब मुझे भी डर लगता था, पर अब नहीं लगता। ऐसे ही तुझे भी नहीं लगेगा···सब ठीक हो जायेगा।

[बाली तेजी से अंदर चली जाती है। बीबी हँसती है। बाहर के द्वार से उस्ताद मिर्ज़ा का प्रवेश।]

उस्ताद : मैंने कहा आज तो कहकहे लग रहे हैं, बड़ी बी ! खैरियत तो है ?

बीबी : (अचानक उठकर) तुम्हें यहाँ किसी ने आते तो नहीं देखा, उस्ताद जी ! बात दरअसल यह है कि मोहल्लेवाले···

उस्ताद : (बात काटकर, व्यंग्य से) किसी उस्ताद-वुस्ताद का भले घरों में आना ठीक नहीं समझते। (हँसकर) भई, ठीक भी है। लाल बत्ती वाले इलाके के बाशिंदों का सफेद बत्ती वाले इलाके में क्या काम। पर वाह, बड़ी बी, रोटीवाली गली क्या छोड़ी तुमने तो केंचुल ही बदल डाली।

बीबी : (अनसुनी करके) बैठो···यह सारंगी···

उस्ताद : बाजार में नई बनने को दी थी। लेकर चला तो तुम्हारी याद आ गई। सोचा, मिलना चलूं। अब तो हम दूर-दूर से हैं। (कुछ रुककर) लड़कियाँ कहाँ हैं ?

बीबी : शन्नो तो बाहर गई है···सहेली के यहाँ। बाली अन्दर है···तभी ही पहाड़ से लौटी है।

उस्ताद : अरे हाँ, भई, तुमने तो उसे कई साल पहाड़ों पर रखा है। काफी पैसा लगा होगा ?

बीबी : पाई-पाई वसूल लूंगी···बड़ा चोखा माल निकला है, बिलकुल रसभरी खुबानी की तरह पक गई है।

उस्ताद : (कुटिल मुसकान से) अरे, क्यों नहीं, बड़ी बी···तुम खुद किस्से हुए

से कम थीं क्या ! मैंने तो तुम्हारा वह जमाना देखा है जब बड़े-बड़े रईस तुम्हारे एक जलवे के लिए बेताब रहते थे। याद है जब मेरी सारंगी पर तुम्हारे पैर थिरकते थे तो किस कदर उन तंजेबी कुरते वालों की सुरमयी आँखें झूमती थीं···(एक ठंडी साँस लेकर) पर अब तो सब गुजरी बातें हैं···दिल की हरकतों में मिटती हुई गूँज की तरह···!

बीबी : उन दिनों की भी क्या बात थी, उस्तादजी, रोटीवाली गली के उस मकान की एक-एक ईंट हज़ार-हज़ार अफसाने अपने दामन में छुपाये है। (अचानक ठठाकर हँस पड़ती है।) याद है उस्ताद, उस सेठ कापड़िया ने एक बार शराब के नशे में धुत्त होकर किस अदा से अपने डबल बोस्की के कुरते को तार-तार कर दिया था···!

उस्ताद : (झोले से पान की गिलौरी मुँह में दबाकर) सब कुछ याद है, बड़ी बी, सब कुछ।

बीबी : (जैसे उसकी आँखों में स्मृतियाँ जाग रही हों) और फिर अचानक एक दिन रोटीवाली गली की तंग बदबूदार गली में सीटियों की आवाज़ गूँज उठी, भारी-भरकम बूटों की खड़-खड़ हुई, दरवाज़ों के अन्दर बंद सैलानियों की खातिर में मदहोश कोठेवालियों की हलकी चीखें सुन पड़ीं···और···और थरथराते लबों तक जामे-मोहब्बत ले जाने वाले हाथ कानून की जंजीर में घिर गए, पारे की बूँद की तरह बिखर गया वह सतरंगी वक्त जो दिलजलों के लिए रुक-रुक-सा जाता था···(एक ठंडी साँस लेकर) बदलते हुए ज़माने ने हम सबको बदल डाला है उस्ताद, और सच पूछो तो रोटीवाली गली छोड़कर मैं खुश ही हूँ।

उस्ताद : सही कहती हो बीबी, फरक ही क्या पड़ा, कोठे टूटे तो कोठियाँ आबाद हो गईं।

बीबी : (पूरी तरह होश में आकर) जब तक इन मुओं की जेबें गरम हैं, और दिल में रंगीन हविसें हैं तब तक फर्क पड़ भी नहीं सकता, जादू तो सिर पर चढ़कर बोलेगा।

[दोनो हँसते हैं।]

उस्ताद : (हँसकर) और आजकल तो तुम्हारा जादू मेहता के सिर चढ़कर बोल रहा है, बड़ी बी !

बीबी : अरे, मेरा जादू क्यों, वह मुआ तो शन्नो का दीवाना है। (मुसकराकर) उसे कश्मीर ले जाना चाहता है—दो महीने के लिए।

उस्ताद : (एक आँख दबाकर) तब तो भरपूर रकम मारोगी।

बीबी : यही तो मौके होते हैं। मैंने साफ कह दिया, दो हज़ार से एक कानी कौड़ी भी कम न लूँगी।

उस्ताद : (बैठकर) खूब···और यह मकान भी तो उसी का है।

वीवी : अभी तो उसके वाप का है···पर कह रहा था, अगर शन्नो ने मुझे खुश कर दिया तो उसी के नाम लिख दूँगा।

उस्ताद : (चारों तरफ देखकर) वहुत वढ़िया फिलैट है।

वीवी : पूरे दो सौ किराया है, पर यहाँ क्या···वेटे से ले वाप को दे।

[शन्नो का वाहर के दरवाज़े से प्रवेश—वह दुवले-पतले शरीर की एक सुन्दर युवती है···उसके चेहरे-मोहरे से विलकुल पता नहीं लगता कि वह किसी रूपाजीवा की औलाद है।]

वीवी : (व्यंग्य से) आहा ! आ गई राजकुमारी जी ! उस मुए निठल्ले से मिल-कर···

[शन्नो कोई उत्तर दिये विना ही अन्दर जाने लगती है।]

वीवी : जा, जल्दी से हाथ-मुँह धोकर तैयार हो जा···मेहता आता ही होगा।

[शन्नो द्वार के पास ठिठककर खड़ी हो जाती है।]

वीवी : अरी, मैं तुझी से कह रही हूँ !

[शन्नो चुपचाप अन्दर चली जाती है।]

उस्ताद : (खड़ा होकर) अच्छा··· (भेदभरी मुसकान के साथ) अव मैं चलूँ··· (धीरे-धीरे प्रस्थान)।

[वीवी अपने विखरे वाल सँवारती है, फिर अन्दर के द्वार के पास जाकर झाँकती है।]

वीवी : (चीखकर) अरे हरामजादियो, यह खुसर-पुसर क्या लगा रखी है···? वाली, तू यहां आ और सुन···ज़रा वह खुशवूदार तेल भी लेती आइयो, सिर धमक रहा है।

[वीवी वाहर वाले दरवाज़े के पास आकर झाँकती है, फिर दीवारघड़ी पर निगाह डालकर सोफे पर आ वैठती है। कुछ देर वाद वाली तेल की शीशी लेकर आती है। वह गम्भीर है। उसकी आँखें सूजी हैं, मानो अन्दर रोयी है। चुपचाप तेल डालकर वीवी के सिर में मालिश करने लगती है।]

वीवी : क्यों री, यह मुँह क्यों फुला रखा है तूने ? यह मुर्दनी मुझे फूटी आँखों नहीं भाती। (उसकी ठोड़ी पर उँगली रखकर) तेरी उमर की लड़-कियों के होंठों पर तो हमेशा मुसकराहटें फूटनी चाहिए।

[वाली चुपचाप मालिश कर रही है।]

वीवी : और देख, अव तुझे और भी वहुत-सी वातें सीखनी हैं। थोड़ी माशूकी अदाओं के साथ लरजना सीख। आँखों में शरारत पैदा कर, मासूम अदाओं से विजलियाँ गिराना सीख।

वाली : यह सव किसलिये, वीवी ?

वीवी : आय-हाय री मेरी भोली चिड़िया, कुरवान जाऊँ तुझ पर ! अरी वन्नो, यही सव तो औरत के हथियार हैं। इन्हीं सव हथियारों से ही तू मोटी

जेवों का शरबत बना सकेगी।

बाली : (घबराहट भरी आवाज़ में) लेकिन मुझे डर लगता है, बीबी...यह सब कैसे होगा मुझसे...?

बीबी : (खड़ी होकर क्रुद्ध स्वर में) क्या कहा तूने ? फिर ऐसी बात जबान पर लायी तो बाहर खींच लूँगी...कमीनी...कुतिया...!

बाली : (भरे गले से) बीबी...!

[बाली तेजी से अन्दर भाग जाती है।]

बीबी : (पानदान खोलकर, एक पान लगाते हुए बड़बड़ाती है।) सुभान अल्लाह, मुफ्त का खाकर हरामजादियों को मुटाई चढ़ रही है।

[शन्नो का प्रवेश। वह एक साधारण-सी साड़ी पहने है।]

शन्नो : (धीमे स्वर में) बाली से तुमने कुछ कह दिया, बीबी...?

बीबी : हाँ-हाँ, कह दिया...क्यों ?

शन्नो : वह अन्दर रो रही है। क्या तुमने उसे मारा भी है ?

बीबी : हाँ...हाँ, बोल, क्या कहना है तुझे ?

शन्नो : अभी कल ही तो बेचारी आयी है और आज से ही...

बीबी : आय-हाय...बड़ी चोट लग गई तेरे जो तरफदारी करने आयी है ! च अन्दर और नॉयलन वाली साड़ी पहनकर तैयार हो जा, मीराबा बनी खड़ी है।

शन्नो : मैं आज यही साड़ी पहनूंगी, बीबी।

बीबी : अरे हरामजादी, जो मैं कहती हूँ वह होगा या जो तू चाहती है वह खड़ी है जोगिन का वेश धारे। उधर मेहता आने वाला है...यह स ऐसे ही चलेगा क्या...?

शन्नो : (प्रतिवाद के स्वर मे) यह सब कैसे चलेगा, इसकी फिक्र तुम्हें होगी (अन्दर वाले द्वार की ओर बढ़ती है।)

बीबी : अरे, सुन-सुन, कहाँ चल दी मटककर ?

[शन्नो रुक जाती है।]

बीबी : (शन्नो के निकट आकर) देख शन्नो, अब तेरी हरकतें बहुत बिग गई हैं। तू उस मास्टर के चक्कर में अपने को बरबाद कर रही है कान खोलकर सुन ले, मैं चाहती हूँ तू उस नामुराद से बिलकुल किना कर ले और इसलिए मैंने तुझे कश्मीर भेजने का फैसला किया है।

शन्नो : कश्मीर...?

बीबी : हाँ। तेरे साथ मेहता भी जायेगा। आज रात को ही तुम दोनों क चल देना है। मेहता आता ही होगा।

शन्नो : मेहता...?

बीबी : (बनावटी स्वर में) तेरे सिर की कसम, जान देता है तुझ पर।

शन्नो : मेहता मुझ पर कितनी जान देता है—यह मुझे खूब मालूम है बीब

श्रौर एक बात मैं तुम्हें भी बतला देना चाहती हूँ साफ-साफ···(एक-एक शब्द पर ज़ोर देकर) मैं मेहता के साथ कश्मीर नहीं जा रही हूँ।

बीबी : तू जानती है क्या कह रही है ?

शन्नो : (दृढ़ता के साथ) खूब अच्छी तरह।

बीबी : (गुस्से से पागल होकर) हरामजादी, कुतिया ! मेरा ही खाती है श्रौर मुझी को श्राँखें दिखाती है···याद रख, श्रगर तूने किसी तरह की टालमटोल की तो तेरा खून पी लूँगी !

शन्नो : खून पीने में तुमने कभी कोई कसर तो छोड़ी नहीं, पर अब श्रासानी से तुम खून नहीं पी पाश्रोगी।

बीबी : (चीखकर) शन्नो···!

शन्नो : क्योंकि यह नया खून है :

[बीबी गुस्से में बिफरती हुई शन्नो की श्रोर बढ़ती है। शन्नो धीरे-धीरे पीछे हटती है।]

बीबी : हरामजादी···कुतिया !

शन्नो : (पीछे हटते हुए) खबरदार जो तुम मेरे करीब श्रायीं, बीबी ! मुझसे··· मुझसे यह सब न होगा···श्राज तक मैं तुम्हारा कहना मानती रही—कॉलेज में भर्ती हुई ताकि रईस घराने के लड़कों को फंसाकर तुम्हारी जेबें गर्म करूँ···(बीबी रुक जाती है। शन्नो उसकी श्रोर धीरे से बढ़ती है, उसकी श्रावाज में दर्द है।) कभी इसका, कभी उसका दिल बहलाती रही···पर अब मुझसे यह सब न होगा···(चीखकर) किसी कीमत पर नहीं !

बीबी : (श्रजीब-सी ठण्डी श्रावाज में) तो क्या करेगी मेरी रानी, कारूँ का खजाना मिल गया है क्या जो इतनी ऐंठ दिखला रही है ! किस बित्ते पर उछल रही है लाडो जरा मैं भी तो सुनूं !

शन्नो : जानना चाहती हो तो सुनो, श्राज मुझे मास्टरजी के स्कूल में नौकरी मिल गई।

बीबी : (श्रजीब-सी हँसी हँसती है।) परे हट मुरदार···मैं तेरे झाँसे में श्राने वाली नहीं···रोटीवाली गली में पैदा होकर तुझे नौकरी मिलेगी··· नामुमकिन !

शन्नो : रोटीवाली गली टूट चुकी है, बीबी···उसकी दीवारें सिर्फ इस नरक में श्रौर तुम्हारे दिल के श्रन्दर बाकी हैं···श्रौर मैंने इन श्राख़िरी दीवारों को भी तोड़ने का फैसला कर लिया है।

बीबी : श्रौर उसके बाद किस जन्नत में जाकर बसेगी···?

शन्नो : एक छोटे-से मामूली घर में।

बीबी : (व्यंग्य से) श्रौर शायद उस जन्नत का फरिश्ता होगा वह मुश्रा मास्टर !

शन्नो : यह भी सच है, बीबी।

बीबी : तो तू भी कान खोलकर सुन ले, अगर तूने ऐसी हरकत की तो मैं उस नए मोहल्ले में आकर तेरी औकात का पर्दाफाश करूँगी, मैं ढिंढोरा पीट-पीटकर बतलाऊँगी कि तू रोटीवाली गली की औलाद है। तब उस मोहल्लेवाले भी तुझे हिकारत की निगाहों से देखेंगे···तुझ पर थूकेंगे···तंग आकर वह कमीना मास्टर भी तुझे छोड़ देगा···दर-दर की मोहताज होकर तू फिर मेरे पास आयेगी। समझ ले।

शन्नो : (दृढ़ता से) समझ लिया है। और मैं चाहती हूँ तुम भी एक बात समझ लो। अब नए मोहल्ले वाले वे नहीं हैं जो पहले थे। अब उनके पास देखनेवाली आँखें हैं, समझनेवाला दिमाग है, मदद करनेवाले हाथ हैं।

बीबी : (चुनौती देकर) तो यह तेरा आखिरी फैसला है ?

शन्नो : हाँ, बीबी।

[बीबी गुस्से से काँपती हुई, कोने में रखी एक खूबसूरत मूँठदार बेंत उठाकर शन्नो की ओर झपटती है।]

बीबी : (दाँत पीसकर) इसके पहले कि तू यह सब करे, मैं तेरी खाल खींच लूंगी···नीच !···कमीनी !

[बीबी बेंत मारने के लिए हाथ उठाती है, तभी अन्दर के द्वार से बाली तेजी के साथ आती है।]

बाली : (चीखकर) बीबी···!

[ठीक इसी समय बाहर से कार के हॉर्न और दरवाजा बन्द होने की आवाज सुनाई पड़ती है।]

मेहता : (बाहर से) क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?

[शन्नो एक सरसरी नजर डालकर तेज़ी से अन्दर चली जाती है। बीबी बेंत एक कोने में रखकर अपने बिखरे बाल ठीक करती है, फिर चेहरे पर बलात मुसकराहट लाकर दरवाजे की ओर बढ़ती है।]

बीबी : आ जाइये न छोटे सरकार, अपने घर में भी पूछताछ की ज़रूरत है क्या ?

[बाहर के द्वार से मेहता का मुसकराते हुए प्रवेश। वह तीस साल के लगभग है। शरीर थुलथुला है। काली शेरवानी और चिपका हुआ सफेद पाजामा पहने है। उसके हाथ में एक डिब्बा है।]

बीबी : तशरीफ रखिये छोटे सरकार, बड़ी देर कर दी आपने। शन्नो और बाली कब से आपकी राह देख रही हैं।

मेहता : (बाली को ऊपर से नीचे तक देखकर) ओह···तो यह बाली है !

बीबी : (बाली से) सलाम कर छोटे सरकार को।

[बाली सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रहती है।]

बीबी : (डाँटकर) तूने सुना नहीं ?

मेहता : (वीवी से) अरे, रहने भी दो वड़ी वी, इसकी क्या जरूरत है ? (वाली से) वैठो ।

[मेहता मेज पर डिव्वा रखकर कोच पर वैठ जाता है। वीवी भी वैठती है । वाली पूर्ववत् खड़ी है ।]

वीवी : (चापलूसी करते हुए) कुछ थके मालूम पड़ते हैं छोटे सरकार ?

मेहता : (वाली को घूरते हुए) कश्मीर जाने की तैयारियों में लगा रहा । लम्वा रास्ता है···फिर दो महीने ठहरना है, काफी कुछ करना पड़ा ।

वीवी : (नकली हँसी हँसकर) क्यों नहीं···क्यों नहीं···(कुछ रुककर) कुछ ठंडा-गर्म लेंगे ?

मेहता : (वेतकल्लुफी से) हाँ-हाँ, ले लूंगा । पर कुछ ठंडा ही···(हौले से हँस-कर) स्पेशल ठंडा···

वीवी : (हँसकर) ओह, समझी !···वाली, जरा अन्दर चली जा—और उस काली अलमारी से एक वोतल ले आ । (वाली जाने लगती है ।) और सुन···शन्नो को भेज दे···कह दे छोटे सरकार आए हैं ।

[वाली जाती है ।]

मेहता : (जेव से नोटों की गड्डी निकालकर) यह लो, वीवी···नजराना ।

वीवी : (लेकर मुसकराते हुए) सिर-आँखों पर, हुजूर ।

[मेहता मेज़ पर रखे डिव्वे से जयपुरी जूतियों को निकालता है ।]

मेहता : और यह देखो वड़ी वी, जयपुर की मशहूर जूतियां,मैं ने खास ऑर्डर पर वनवाई हैं । असली सोने का काम है ।

वीवी : अल्ला रे ! कितनी खूवसूरत हैं !···शन्नो के पैरों में खिल उठेंगी··· वड़ी किस्मत वाली है ।

मेहता : (वीवी की आँखों में झाँककर) यह जूतियाँ वाली के पैरों में कैसी लगेंगी ?

वीवी : जी···! अच्छी लगेंगी । क्यों···?

मेहता : मेरा मतलव है कि यह जूतियाँ मैं उसे पहनाना चाहता हूँ ।

वीवी : पर हुजूर, अभी कमसिन है···नादान और नासमझ भी ।

मेहता : (अचानक वातों का रुख वदलकर) हाँ, आज तो तुमने फोन पर कहा था कि उसकी सोलहवीं सालगिरह है । माफ करना वड़ी वी, तोहफ़ेवाली वात तो जल्दी-जल्दी में दिमाग से विलकुल उतर गई ।

वीवी : हुजूर की नजरे-इनायत रहे···तोहफों की क्या कमी है ?

[वाली का प्रवेश । उसके हाथ में वोतल और गिलास हैं ।]

वीवी : (मेहता के सामने वाली मेज की ओर इशारा करके) यहाँ रख दे··· और सुन, छोटे सरकार को अपनी सालगिरह की खुशी में एक जाम पिला ।

[वाली घवराती है । काँपते हाथों और नीची निगाहों से वह वीवी को

आज्ञा का पालन करने लगती है ।]

मेहता : (गिलास लेकर) हमारे साथ कश्मीर चलोगी, बाली ?

बाली : (घबराकर) जी···!

मेहता : तुम तो पहाड़ों पर काफी रही हो । अच्छी तरह जानती हो कि पहाड़ों की जिन्दगी कितनी दिलकश होती है । (प्याला लेकर पीता है ।) और फिर कश्मीर की जिन्दगी—जहाँ हर गुलाबी सुबह एक नई मस्ती अँगड़ाई लेती है···डल झील के गहरे नीले पानी में तैरती किश्तियाँ ! किश्तियों पर मदहोश खोये-से लोग ! दूर किनारे की झिलमिलाती बत्तियाँ, और बहुत दूर से माँझियों के गीत की आती हुई भीनी आवाज़ें ! (एक प्याला लेकर और पीता है ।) मैं चाहता हूँ बाली, कि तुम अपनी सोलहवीं सालगिरह वहीं, उस नीली झील की खामोश तनहाइयों में मनाओ, जहाँ कुदरत की मुसकानों की तरह कमल के फूल खिलते हैं और रसभरी खुबानियाँ कौड़ियों के मोल बिकती हैं । क्यों, ठीक है न ?

बाली : (बीबी की ओर घबराहट से देखकर) बीबी···!

बीबी : ठीक ही तो कहते हैं छोटे सरकार, इन गरम मैदानों में रखा ही क्या है ! चल, जाने की तैयारी कर ले ।

[बीबी जान-बूझकर बोतल उठाकर कमरे के बाहर चली जाती है ।]

बाली : (बीबी को जाता देखकर) लेकिन···लेकिन मुझे डर लगता है, बीबी !

मेहता : (हौले से हँसकर) यह तो और भी अच्छी बात है । डर लगने से ज़िन्दगी के लुत्फ़ और भी बढ़ जाते हैं । (जूतियाँ मेज से उठाकर बाली की ओर बढ़ाता है ।) जरा इन्हें पहनकर देखो, शहजादी लगोगी···पहनो ।

[बाली बेमन जूतियाँ लेती है—पहनने में हिचकिचाती है ।]

मेहता : अगर यहां पहनने में डर लगता है तो अन्दर जाकर पहन लो । ···और देखो, ज्यादा कुछ भी ले चलने की जरूरत नहीं है, सब हो जायेगा । जाओ-जाओ !

[बाली जूतियां लेकर सिर झुकाये अन्दर चली जाती है ।]

बीबी : (अन्दर के द्वार से प्रवेश) अभी पहला कदम है बाली का, खयाल रखियेगा, हुजूर ।

मेहता : तुम बेफ़िक्र रहो, बीबी । (सिगरेट सुलगाकर) और हाँ, मैं सोचता हूँ बाली की सालगिरह का तोहफ़ा तो ला दूँ ।

बीबी : रहने दीजिये, क्यों तकलीफ करते हैं ?

मेहता : नहीं, बीबी···सालगिरह और पहली मुलाकात के इस मौके पर बाली को कोई नायाब तोहफा मिलना ही चाहिए । मैं अभी दो मिनट में आया, ज्वेलरी की दुकान बगल में ही तो है । (जाता है ।)

[अन्दर से शन्नो का तेजी के साथ प्रवेश ।]

शन्नो : बीबी ! तुम बाली को मेहता के साथ कश्मीर भेज रही हो ?
बीबी : क्यों ? तुझे क्यों मिरचें लग रही हैं ?
शन्नो : मिरचें लगें उस भेड़िये को जिसके हाथों इस दूध से नरम छोकरी का तुम सौदा कर रही हो !
बीबी : (चीखकर) चुप रह ! खबरदार, जो मेरे और बाली के बीच में पड़ी···! तू तो बच गई कश्मीर जाने से। अब उड़ा गुलछर्रे उस उठाईगीरे के साथ !
शन्नो : अगर तुम्हें रुपयों का इतना ही लोभ है बीबी, तो तुम खुद क्यों नहीं चली जातीं मेहता के साथ !
बीबी : (क्रोध में पागल होकर) हाय-हाय···तेरे कीड़े पड़ें, लुच्ची ! कमीनी ! कुतिया ! अपनी माँ के लिए ऐसी बात निकालते तेरी जबान न गली !
शन्नो : क्यों ? जो कड़वा ज़हर तुम बाली को पिलाना चाहती हो उसकी एक ही खुराक़ से तुम्हारा खून खौल उठा !
बीबी : (चिल्लाकर) मैं कहती हूँ तू मेरी निगाहों के सामने से दूर हट जा··· नहीं तो तुझे मारकर मैं खुद भी फाँसी पर लटक जाऊँगी।
शन्नो : तुम क्यों फाँसी पर लटकोगी ! तुम्हें तो अभी राज करना है बाली की कमाई पर··· (आँखों में आँसू भरकर) बीबी, मैंने सुना था नागिनें अपने अंडों को एक-एक करके खा जाती हैं···पर तुम···(भर कंठ से) तुम हम दोनों की जिन्दा लाशों को नोंच-नोंचकर खाना चाहती हो।
बीबी : (चीखकर) चुप रह, हरामजादी !
शन्नो : जब चुप रहती थी तो तुम कहती थीं बोलो···जैसे आज तुम बाली को सिखा रही थीं, अब बोलती हूँ तो तुम कहती हो चुप रहो। पर अब मैं चुप नहीं रह सकती।
[बीबी उसकी ओर बढ़ती है। शन्नो पीछे हटती है।]
शन्नो : मुझे मारो—चाहे मार डालो, मगर मैं चुप नहीं रह सकती। (दरवाज़े के पास आकर चीखती है।) बाली मेहता के साथ कश्मीर नहीं जायेगी। नहीं जायेगी !
[शन्नो मुड़कर तेजी से अन्दर चली जाती है। बीबी शिथिल-सी कोच पर धम्म से बैठ जाती है। बाहर के द्वार से ठाकुर साहब का प्रवेश। वह बीबी की ही उम्र के हैं। चेहरे पर शानदार मूँछें और बिगड़े रईसों जैसी वेशभूषा।]
बीबी : (साश्चर्य) आप···? (नोटों की गड्डियों को फिल्मी पत्रिका से ढंक देती है। फिर उठकर खड़ी हो जाती है।) आप···?
ठाकुर : बहुत ताज्जुब हो रहा होगा तुम्हें···(कोच पर बैठकर) मुझे भी है।
बीबी : क्यों ?
ठाकुर : रोटीवाली गली टूटने के बाद मैंने सोचा था कि तुम्हारी हालत में

जरूर कोई तब्दीली आएगी। पर यह बात झूठ निकली। तुमने तो (इधर उधर देखकर) पहले से भी ज्यादा तरक्की कर ली है। सुना है पिछली ज़िन्दगी से भी ज्यादा गुलजार है तुम्हारा चमन।

बीबी : (बेरुखी से) मुझे पिछली ज़िन्दगी में कोई दिलचस्पी नहीं।

ठाकुर : पर मुझे है। तभी तो इतने अरसे के बाद यहाँ आया हूं।

बीबी : चाय पियेंगे ?

ठाकुर : नहीं। सिर्फ एक बात पूछनी है—वह कैसी है ?

बीबी : अच्छी है।

ठाकुर : क्या मैं उसे देख सकता हूँ ?

बीबी : (कुछ हकलाते हुए) यहाँ···यहाँ नहीं है, पहाड़ों पर है।

ठाकुर : पहाड़ों पर है। क्यों ?

बीबी : उसकी सेहत ठीक नहीं है।

ठाकुर : (एक पल तक बीबी को गौर से देखकर) सिर्फ सेहत की वजह से तुमने बाली को पहाड़ों पर भेजा है···(कुछ रुककर) यह मानने को जी नहीं चाहता।

बीबी : तो न मानिये !

[ठाकुर साहब उठकर खड़े हो जाते हैं—दीवार पर लगी एक पेंटिंग को ध्यान से देखते हैं।]

ठाकुर : तुमने कभी उन तेज हाथों को देखा है बीबी, जो चाक पर मिट्टी के लोंदों में जिन्दगी फूंक देते हैं। जब मूरत बन जाती है तो उसे आग में पकाया जाता है और सुर्ख होने के बाद उसे रंगों से सजाकर-गाहक के हवाले कर दिया जाता है।

बीबी : (तेजी से) ठाकुर साहब !

ठाकुर : ठीक यही हालत तुम्हारी भी है, बीबी।

बीबी : आपको इन मामलों में दखल देने का कोई हक नहीं !

ठाकुर : कितने ताज्जुब की बात है कि मुझे—बाली के बाप को उसकी ज़िन्दगी में दखल देने का कोई हक नहीं। (कुछ गिरे स्वर में) और हो भी क्यों ? तुमने इसकी नौबत ही कहाँ आने दी ! (कुछ रुककर) शन्नो ! वह कहाँ है ?

बीबी : वह तो आपकी बेटी नहीं है !

ठाकुर : बेटी-जैसी तो है। कैसी है वह ?

बीबी : ठीक है।

ठाकुर : जरूर ठीक होगी। तुमने उसे ठीक कर दिया होगा अब तक।

[बीबी ठाकुर साहब को घूरकर देखती है।]

ठाकुर : (गम्भीरता से) कितनी बार मैंने सोचा कि यह जान लूँ कि तुम किस धातु से बनी हो। पर मैं हार मानता हूँ। इसलिए नहीं कि तुम्हें

समझ नहीं सका बल्कि इसलिए कि तुम्हें समझा नहीं सका। कभी-कभी लगता है कि दुनिया की जितनी कालिख और बुराई है—वह सब एक जगह इकट्ठी हो गई है।

बीबी : ठाकुर साहब···!

ठाकुर : हाँ, यह सच है। तुम्हीं हो वह। अगर ऐसा न होता तो जब शन्नो दूध-पीती बच्ची थी, उन्हीं दिनों तुम मेरी हो गई होतीं और इज्जत की जिन्दगी गुजारतीं। पर नहीं, तुमने ऐसा नहीं किया। तुमने कहा था—लोग मुझे स्वीकार नहीं करेंगे। मैंने कहा था—मुझे कोई परवाह नहीं।

बीबी : ये सड़ी-गली बातें कितनी बार आप और कहेंगे!

ठाकुर : बस, यह आखिरी बार है। एक हूक-सी उठी थी बाली को देखने की, चला आया। पर तुम कहती हो वह पहाड़ों पर है। यह किसी नए कारनामे के शीर्षक जैसी बात है। तुम क्या कहो और क्या करो, कौन जाने? शन्नो के बाप को छोड़कर तुमने मुझे घेरा था। मुझे छोड़कर तुम किसी और शिकार को जरूर दबोचतीं अगर तुम्हारी बढ़ती उमर ने तुम्हें दगा न दी होती। पर इसका बदला तुम लड़कियों से लोगी जरूर। मैं अच्छी तरह जानता हूँ यह बात।

बीबी : मैं सिर्फ एक बात जानती हूँ ठाकुर साहब, और वह यह कि मैं अपनी पसन्द की जिन्दगी जीना चाहती हूँ।

ठाकुर : (व्यंग्य से) जाहिर है कि लड़कियों को भी तुम्हारी पसन्द के आगे झुकना पड़ेगा। (बीबी बार-बार बेचैनी से बाहर वाले द्वार की ओर देखती है।) तुम कुछ परेशान-सी हो! मालूम देता है किसी गाहक का इन्तजार है। ईश्वर करे तुम्हारी यह खरीद-फरोख्त यूँ ही चलती रहे। उस वक्त तक चलती रहे जब तक तुम्हारी जवान बेटियों की आँखें काले गड्ढों में चली जाएं; और उनके सुर्ख होंठों और गालों से वह सड़ांध आने लगे जो गटर से आती है। (द्वार के पास आकर) अगर कभी ऐसा हुआ, जो कि जरूर होगा तो सोचना मेरी बात। पर मैं जानता हूँ, तुम नहीं सोचोगी। क्योंकि···क्योंकि दम तोड़ती हुई हिचकियों और लगातार बहने वाले आँसुओं के बीच तुम ऐसी कोई बात नहीं सोच सकोगी। मुबारक रहे तुम्हें तुम्हारी जिन्दगी! बदबू, घुटन, कसक और बेइज्जती से भरी जिन्दगी! मुबारक रहे तुम्हें वह खाली जगह जिसे तुम्हारे बाद शन्नो और शन्नो के बाद बाली भरेगी! नहीं जानता बाली के बाद क्या होगा? पर मुबारक रहें वे दोनों लड़कियां जिनमें अपने मरने के बाद भी तुम जिन्दा रहोगी!

[ठाकुर साहब तेजी से मुड़कर बाहर चले जाते हैं।]

बीबी : (द्वार की ओर बढ़कर, कुछ आर्त स्वर में) ठाकुर साहब!

[अचानक तेज़ हवाएँ चलने लगती हैं। कमरे के पर्दे इधर-उधर उड़ते हैं। खिड़कियों के दरवाज़े हवा के झोंकों से खुलते और बन्द होते हैं। बीबी परेशान-सी कोच पर जा बैठती है। अन्दर से बाली का प्रवेश। उसके हाथ में एक छोटी-सी अटैची है। वह बहुत धीरे-धीरे बीबी के पास आती है और अटैची ज़मीन पर रखकर चुपचाप खड़ी हो जाती है।]

बीबी : (सिर झुकाकर भारी कंठ से) मैं तैयार हूँ, बीबी।

[बीबी उसकी आवाज़ सुनकर चौंक पड़ती है। अचानक दरवाज़ा खुलता है, शन्नो तेज़ी से अन्दर आती है।]

शन्नो : (दृढ़ता से) बाली! मैं अपने जीते-जी तुझे मौत और बरबादी के मुँह में नहीं जाने दे सकती। समझी! (बीबी से) बीबी, मैं फिर कहती हूँ बाली कश्मीर नहीं जायेगी।

[बीबी शन्नो को घूरकर देखती है।]

शन्नो : (बीबी के करीब आकर) अगर बिना खून पिये तुम्हारा दिल नहीं मानता···तो···तो बाली की जगह मुझे भेज दो कश्मीर।

बाली : (खोयी-खोयी आवाज़ में) यह नहीं हो सकता, बाजी। मेहता ने मुझे चुना है। मैं जाऊँगी उसके साथ।

शन्नो : (रोते हुए) बाली···तुझे क्या हो गया है! तू मेमने की तरह भोली है। वह भेड़िया तुझे जिन्दा निगल जायेगा!

बाली : (शून्य में देखते हुए) मेरी किस्मत की चट्टान पर मौत और बरबादी की जो लकीरें बीबी लिखने जा रही है उन्हें तुम हरगिज़ नहीं मेट सकतीं, शन्नो बाजी! हट जाओ मेरे रास्ते से। अगर बीबी यही चाहती है (दाँत पीसकर) तो यही होगा।

[शन्नो लपककर बीबी के पैर पकड़ लेती है।]

शन्नो : बीबी, मेरी अच्छी माँ! बाली पर रहम खाओ। उसकी ज़िन्दगी में अभी अंकुर फूटे हैं। इससे अच्छा तो यह होगा कि तुम उसकी बोटी-बोटी काटकर फेंक दो। पर उसे उन मौत की पहाड़ियों पर मत भेजो बीबी, जहाँ से लौटकर वह अपने दिल में एक रोटीवाली गली बसा लेगी। और लाल बत्तियाँ जलती रहेंगी।

[बीबी खामोश है। हवा के झोंके तेज़ होते हैं।]

शन्नो : (रोकर) अगर तुम्हारा कलेजा ऐसे ठण्डा नहीं होता···तो···तो मुझे भेज दो उसकी जगह।

बाली : (अजीब-सी आवाज़ में) तुम क्यों परेशान हो, बाजी! मैं मेहता के साथ ज़रूर जाऊँगी···किमखाब से जड़ी सुनहरी जूतियाँ पहनकर जब मैं शिकरे से नीले पानी में झाँकूँगी···तो निचली गहराइयों में मुझे एक मटमैला-सा चेहरा दिखलाई पड़ा करेगा। (एक ओर

अपलक देखते हुए) उस चेहरे को मैं अभी देख सकती हूँ···बड़े-बड़े दाँत···खौफनाक झुर्रियाँ···नोटों-सी नाक, मशाल की तरह जलती लाल खूनी आँखें···

[शन्नो अचानक बाली से लिपट जाती है। दोनों कुछ देर उसी प्रकार खड़ी रहती हैं। फिर बाली शन्नो को अपने से अलग करती है।]

बाली : (भर्राई आवाज़ में) और बाजी! जानती हो वह किस डायन की शकल होगी?

शन्नो : बाली···!

बाली : वह शकल होगी बीबी की···(चीखकर) मेरी माँ की···रोटीवाली गली की! (रोते हुए अन्दर भाग जाती है।)

शन्नो : (नोटों की गड्डियाँ हाथ में लेकर) यह जो कागज़ के रेंगते हुए बिच्छू हैं···इन्हें लौटा दो, माँ! मैं स्कूल में पढ़ाऊँगी···छोटी-मोटी तनखाह में हम तीनों माँ-बेटी गुज़ारा कर लेंगे···हम दोनों को नई जिन्दगी जीने का मौका दो, माँ!

बीबी : (शिथिल-सी आवाज़ में) बस···बस···(हाँफती-सी) आह! हाय अल्ला!···मेरे सिर में फिर तड़कन शुरू हो रही है···आह! लगता है फट जायेगा।

[बीबी लड़खड़ाते हुए अन्दर वाले दरवाज़े की ओर बढ़ती है। दरवाज़े के करीब वह गिरने-सी लगती है, शन्नो चीखकर दौड़ती है। बीबी शन्नो के कंधों पर हाथ रखकर अन्दर जाती है।) क्षण-भर बाद बाहर के द्वार से मेहता का प्रवेश। उसकी चाल और आवाज़ में मस्ती भरी है। वह गुनगुनाते हुए अन्दर आता है। उसके दाहिने हाथ में एक छोटी-सी मखमली डिबिया है।]

मेहता : (ज़ोर से आवाज़ देकर) बीबी! अरे, कहाँ हो? देखो तो मैं बाली के लिए कितनी खूबसूरत नथ लाया हूँ। बिलकुल नई दुलहिन लगेगी।

[मेहता धम्म-से कोच पर बैठ जाता है, नथ निकालकर एकटक देखता है।]

मेहता : (हौले से हँसकर) मोती पर मोती ही खिलता है। (ज़ोर से) बाली!

[अनावश्यक विराम—अन्दर से कोई उत्तर नहीं मिलता।]

मेहता : (और ज़ोर से) बाली···!

बाली : (अन्दर से) आयी, छोटे सरकार!

मेहता : (खड़ा होकर) आह, जैसे शहद उंडेलती शहनाई के सुर हों। देखो तो, बाली, मैं तुम्हारे लिए क्या लाया हूँ।

[बाली सिर झुकाये हुए शरमाती-सी अन्दर आती है। उसके हाथ में एक छोटा-सा थाल है जिस पर रेशमी रूमाल ढंका है। वह धीरे-धीरे मेहता की ओर बढ़ती है।]

मेहता : हम तुम्हारे लिए एक बड़ी उम्दा चीज़ लाये हैं, बाली। (नथवाला हाथ ऊँचा करता है।) यह देखो, पर एक शर्त है। इसे पहनायेंगे हम अपने ही हाथों से, क्योंकि···(और करीब आकर) क्योंकि यह हमारा पहला तोहफा है।

बाली : (दोनों हाथों से थाल बढ़ाकर) और यह तोहफा मेरी सोलहवीं सालगिरह की खुशी में बीवी की ओर से आपको मुबारक रहे।

मेहता : (हँसते हुए थाल ले लेता है।) भई, इस तकल्लुफ की क्या जरूरत थी···?

[मेहता हँसते हुए थाल से रूमाल हटाता है। थाल में मेहता वाले रुपयों की गड्डी पर दोनों जयपुरी जूतियाँ सजाकर रखी गई हैं। मेहता का चेहरा क्रोध से भर जाता है।]

मेहता : (चीखकर) यह क्या बदतमीजी है! (जोर से) बीवी!

[बीवी शन्नो के कंधों पर झुकी हुई अन्दर आती है।]

बीवी : (कठोर स्वर में) यह बदतमीजी नहीं, बाली की सोलहवीं सालगिरह का तोहफा है, छोटे सरकार!

मेहता : (बुरी तरह चीखकर) बीवी!

बीवी : (दाँत पीसकर) निकल जाओ यहाँ से! (पागलों की तरह चीखकर) निकल जाओ!

[मेहता क्रोध, घृणा और निराशा से बाहर वाले दरवाज़े की ओर मुड़कर तेज़ी से बाहर चला जाता है।]

बाली : (बीवी की ओर हाथ फैलाकर दौड़ते हुए) माँ—मेरी माँ!

बीवी : (रोती हुई—बाली को अपनी बाँहों में समेट लेती है) बेटी···मेरी बच्ची!

[बीवी, शन्नो और बाली को सीने से लगाए रोती रहती है। ऊँचे उठते हुए सुखद संगीत के साथ धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।]

१७

सत्य किरण

कृष्णकिशोर श्रीवास्तव

श्री कृष्णकिशोर श्रीवास्तव का जन्म सन् १९२५ में हुआ था। आप भौतिकशास्त्र में एम० एस-सी० हैं। 'शेष' उपनाम से आपने गणित के सिद्धान्तों पर अनेक कहानियाँ लिखी हैं। आपके नाटक प्रायः हास्य-व्यंग्यपूर्ण होते हैं जो रेडियो और रंगमंच, दोनों पर समान रूप से लोकप्रिय हुए हैं। आपने 'हिन्दी साहित्य पर भौतिक-विज्ञान का प्रभाव' विषय पर अनुसंधान भी किया है।

रचनाएँ

'रेखाएँ', 'रास्ते, मोड़ और पगडंडी', 'नाटक का नाटक', 'मछली के आँसू', 'आस्तीन के सांप', आदि।

पात्र

डाक्टर आचार्य : वैज्ञानिक
मिट्ठूलाल : आचार्य का सहकारी
खगेश : एक साहित्यिक
जीरासिंह : रिटायर्ड पुलिस-अधिकारी
रामगरीब : नेता
करुणादेवी : समाज-सेविका

डाक्टर आचार्य की प्रयोगशाला का बाहरी कमरा। कमरे में दो दरवाज़े हैं। दोनों दरवाज़ों पर रंगीन पर्दे पड़े हैं। दरवाज़ों के बीच दीवार में एक खिड़की है। इस खिड़की से एक काँच का गोला दिखायी देता है। यह गोला कांच की नली से जुड़ा है। कांच का गोला तथा उससे जुड़ी नली के अतिरिक्त खिड़की से और कुछ नहीं दिखायी देता। एक काला पर्दा इस रहस्यात्मकता का कारण है, जो इन कांच की चीज़ों के पीछे लगा दिखायी देता है। कमरे की दीवारों पर विभिन्न तत्त्वों का सप्तरंजन (Spectrum) बतलाने वाले बड़े-बड़े चित्र लगे हैं। खिड़की से हटकर कमरे के बीच पाँच-छः कुर्सियाँ पड़ी हैं। एक कुर्सी पर रामगरीब, दूसरी पर खगेश बैठे हैं, तीसरी कुर्सी खाली है और चौथी पर कल्याणदेवी हैं। अन्य कुर्सियाँ भी खाली हैं। जीरासिंह दीवारों पर लगे चित्रों को घूम-घूमकर देख रहे हैं। कल्याणदेवी की कुर्सी पकड़े डा० आचार्य खड़े हैं। रामगरीब की ओर कुछ हटकर मिट्ठूलाल डाक्टर आचार्य के आदेशों के लिए उत्सुक खड़ा है।

आचार्य : (गम्भीरता से) आज मैंने आप लोगों को यहाँ एक विशेष कारणवश निमंत्रण दिया है। यों तो मैं लोगों से बहुत कम मिलता-बोलता हूँ क्योंकि इसमें भी समय और शक्ति लगती है। (रुककर) मैं अपना सारा समय, सारी शक्ति अपने प्रयोग को ही देना चाहता हूँ। पर आज···

खगेश : (बीच में) अहा, अलौकिक है आपकी लगन! यह लगन एक महान और अनूठा पागलपन है। मैं इस अनूठे पागलपन की महानता स्वीकार करता हूँ। (रुककर) वास्तव में साहित्य भी एक विशिष्ट पागलपन का उद्गार मात्र है।

रामगरीब : (तेजी से) होगा। पर राजनीति चीज़ ही और है। हर कदम सोच-समझकर रखना होता है। साहब, एक कदम भी डगमगाया तो दुनिया डगमगा जाती है। खगेशजी, साहित्य में पागलपन ज्यों-का-त्यों चल सकता है, पर राजनीति में तो पागलपन को समझदारी मानकर अपनाया जाता है।

मिट्ठू : (आचार्य की मुद्रा देखकर) आप लोग पहले डाक्टर साहब को अपनी बात कह लेने दीजिए।

कल्याणा : (मिट्ठू की बात अनसुनी कर) रामगरीबजी, यदि दिमाग से तोलकर देखें तो आपको मालूम होगा कि राजनीति और साहित्य से बड़ी चीज़ है

समाज-सेवा । सेवा चाहे पागलपन में ही क्यों न की जाय, है वह सेवा ही। (घूमकर) क्यों सिंह साहब, आपकी क्या राय है ?

सिंह : (चित्रों की ओर से घूमते हुए, कुछ कड़े स्वर में) देवीजी, पहले डाक्टर साहब को अपनी बात कहने दीजिए। डाक्टर साहब, आप अपनी बात कहिए !

आचार्य : जी, मेरी बात ही आप लोगों को सुननी चाहिए।

सिंह : (फिर चित्रों की ओर घूमते हुए) आप अपनी बात शुरू कीजिए !

करुणा : (बात सम्हालते हुए) जरूर शुरू कीजिए। (खगेशजी की ओर झुककर) खगेशजी, हमें आचार्यजी की नयी खोज में जनहित खोजना है।

आचार्य : मिट्ठूलाल मेरी बात कहेगा। मिट्ठूलाल, समझाना शुरू करो।

मिट्ठू : (आस्तीन सम्हालकर खिड़की के पास आते हुए) आज डाक्टर साहब अपनी नयी और युगान्तरकारी खोज 'सत्य किरण' से आप लोगों का परिचय करायेंगे। सत्य किरण...

आचार्य : (बीच में) आप लोग इसे 'ट्रुथ-रे' भी कह सकते हैं।

खगेश : (भावुकता का अभिनय करते हुए) सत्य किरण ! क्या तात्पर्य है ?

सिंह : (चित्रों की ओर मुँह किये) ज़रा-सी चीज़ है। सत्य किरण...या जो सच में किरण हो।

मिट्ठू : जी...मैं समझाता हूँ। जब आदमी का शरीर एक्स-रे के सामने रखा जाता है तो उसका सारा दिखावा गायब हो जाता है और हमें उसका अस्थिपिंजर दिखायी देने लगता है। (आचार्य की ओर देखता है। आचार्य सिर हिलाकर स्वीकृति देते हैं।) तो इसी प्रकार एक अलौकिक शक्ति इस सत्य किरण में है...

करुणा : कौन-सी शक्ति है इसमें ? सिंह साहब, सुनिये !

रामगरीब : (विरोध करते हुए) पर डाक्टर साहब, आपको ये चीज़ें तो प्रेस कांफ्रेंस में बतलानी चाहिए।

सिंह : (घूमते हुए) हम लोग किसी प्रेसवाले से कम हैं ! (बैठकर) हमें बुलाकर आपने ठीक ही किया है।

आचार्य : रामगरीबजी, मैं प्रेस कांफ्रेंस को मामूली चीज़ें समझता हूँ। प्रेस में झूठ को सच और सच को झूठ बताने के लिए ही मशीनें चलती हैं। यही नहीं, आजकल प्रेस-रिपोर्टर वे बनते हैं, जिन्हें और कोई काम नहीं मिलता। यही सब सोचकर मैंने आप लोगों को बुलाना ठीक समझा।

खगेश : (गद्‌गद् होकर) आचार्यजी, आप वास्तव में धन्य हैं। आपने हम लोगों को बुलाकर अपनी अपूर्व बुद्धि का परिचय दिया है। रामगरीबजी, आचार्य दूरदर्शी हैं। (डाक्टर की ओर झुककर) आचार्य, आप अपनी बात कहिये।

आचार्य : मिट्ठू, कंटीन्यू।

कर सकता है।

आचार्य : फिर तो आप लोगों को अपनी खोज का प्रमाण बताकर मुझे खुशी होगी। (रुककर) मिट्ठू, प्रोसीड···

मिट्ठू : सत्य किरण की सत्यता परखने के लिए उसका प्रयोग कई प्राणियों पर किया गया। उन प्राणियों के हाव-भाव बतला रहे थे कि वे भी अपने जीवन का सत्य कहना चाहते हैं, पर न बोल सकने के कारण हमें वे कुछ संतोष न दे सके। प्रयोगों में जो दूसरी महत्त्वपूर्ण बात देखी गयी, वह यह थी कि उनके शरीर पर सत्य किरण का कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ा।

आचार्य : आप लोगों को डरना नहीं चाहिए। मिट्ठू···

मिट्ठू : जी, यही मैं कह रहा था।

रामगरीब : (उत्सुकता से) इसका असर कितनी देर रहता है ?

मिट्ठू : जितनी देर आपका मस्तिष्क इसके मार्ग में रहेगा...बस उतनी ही देर।

खगेश : यह अत्यन्त सुन्दर है, अन्यथा इसके प्रभाव से जीवन बड़ा व्यथित हो जाता। (रुककर) करुणादेवी, आपको सहमत होना पड़ेगा कि हरेक के जीवन में कुछ ऐसे रहस्यमय क्षण होते हैं, जिनका उद्घाटन करने के बदले वह प्राण त्यागना उचित समझता है।

सिंह : (बीच में) जरूर होते हैं। पुलिसवालों की ज़िन्दगी में तो राज़ ही राज होते हैं।

करुणा : सभी के जीवन में ऐसे क्षण होते हैं। (रुककर) मेरे ऐसे बहुत से रहस्य हैं जिन्हें करुणेशजी भी नहीं जानते।

आचार्य : करुणेश कौन ?

रामगरीब : (शीघ्रता से) करुणादेवी के पति। बहुत बड़े व्यापारी हैं। (हँसकर) इनके पति होने के साथ-साथ वे करोड़पति भी हैं।

खगेश : (गद्गद् होकर) अहा ! रामगरीबजी, यही पति का नया और मौलिक प्रयोग है।

आचार्य : (हँसने की कोशिश करते हुए) जोड़ी के नाम खूब मिलते हैं।

करुणा : जी, बात ऐसी नहीं है। मेरा नाम करुणा है, इसलिए मुझसे विवाह करने के बाद उन्होंने अपना नाम बदलकर करुणेश कर लिया। (शरमा-कर) मुझे बहुत प्यार करते हैं।

मिट्ठू : (गर्व से) डाक्टर साहब अपनी प्रयोगशाला को भी ऐसा ही प्यार करते हैं।

खगेश : अत्यन्त मनोसुखकारी ! आचार्य, आपकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी ही कम है। अतएव अब मैं आपकी प्रशंसा नहीं करूँगा।

आचार्य : (कुछ चिढ़कर) मिट्ठूलाल···

मिट्ठू : (खिड़की की ओर इशारा कर) आप लोग इधर देखिए। मैं पहले आप

लोगों को सत्य किरण के महान यंत्र के विषय में कुछ बता देना चाहता हूँ।

[रामगरीब, करुणादेवी और खगेश अपनी-अपनी कुर्सी सरकाकर खिड़की की ओर देखने लगते हैं। जोरासिंह अपनी कुर्सी से उठकर खिड़की के पास आ जाते हैं। डाक्टर अपना सिर हिलाकर मिट्ठू को इशारा करते हैं।]

मैं आप लोगों को इस यन्त्र की प्रधान बातें बताऊँगा।

खगेश : क्यों? विस्तारपूर्वक क्यों नहीं?

आचार्य : यह मेरी आज्ञा है। क्योंकि···

सिंह : हिन्दुस्तान के कवियों में न जाने कब सब्र आयेगा!

रामगरीब : करुणादेवी, साहित्यिकों की आदत होती है बीच-बीच में बोलने की। मुझे देखिये, मैं चुप हूँ।

करुणा : (हँसकर) राजनीतिज्ञों की चुप बड़ी भयानक होती है। बोलने पर तो उनके मन का पता चल जाता है।

सिंह : करुणादेवी, मैं तो सूरत देखकर ही आदमी के मन का पता पा लेता हूँ। डाक्टर साहब, आप अपनी बात कहिए।

आचार्य : मैं आप लोगों के सामने उतनी ही बातें कहूँगा जितनी आप समझ जायँ। आप जानते हैं यह विज्ञान का विषय है। विज्ञान पढ़ना और समझना हरएक के वश की बात नहीं। यदि मैं इसकी वैज्ञानिकता पर बोलने लगूँगा तो आप लोग घबरा जायेंगे।

सिंह : डाक्टर साहब, अच्छे-अच्छे चोर-लुटेरों का सामना किया है मैंने। घबराने की बात आप इन लोगों से कहिए।

रामगरीब : (हँसी रोकने की कोशिश करते हुए) हम जानते हैं कि आप नहीं घबरायेंगे पर आपको हमारी घबराहट का खयाल तो रखना ही होगा। डाक्टर साहब, आप आगे बढ़िये।

आचार्य : आप लोग संक्षेप में इतना समझ लीजिए कि (खिड़की की ओर इशारा कर) इसके पीछे दो प्रधान कांच की नलियाँ हैं। एक नली में एक्स-रे बनती हैं और दूसरी में गामा-रे।

खगेश : (चौंककर) जी, गामा···

आचार्य : जी हाँ, गामा-रे। दोनों ही दो प्रकार की किरणें हैं। ये दोनों किरणें फिर एक तीसरी नली में आती हैं। यहाँ विद्युत् की सहायता से उनमें एक रासायनिक क्रिया होती है।

करुणा : कौन-सी क्रिया?

आचार्य : यह मैं नहीं बताऊँगा। यह मेरे इस प्रयोग का रहस्य है।

मिट्ठू : और यदि आप बतायेंगे भी तो ये लोग नहीं समझेंगे।

आचार्य : (डाँटकर) मिट्ठू! (रुककर) एक्स-रे और गामा-रे की रासायनिक क्रिया के बाद सत्य किरण बनती है और इस कांच के गोले से बाहर निकलती

है। मिट्ठू, तुम अन्दर स्विचबोर्ड के पास जाओ, जब मैं कहूँ तो ऑन करना। (मिट्ठू का प्रस्थान) अब मैं आप लोगों को सत्य किरण से परिचित कराऊँगा।

खगेश : (डरे स्वर में) तो···तो···क्या सत्य किरण के प्रभाव से मैं···मैं सत्य बोल जाऊँगा ?

रामगरीब : (सम्हलते हुए) खगेशजी, सत्य बोल जायेंगे हम लोग ? करुणादेवी, आपके जीवन का रहस्य और सत्य···

करुणा : (चौंककर) मेरे जीवन का सत्य ! (रुककर) सिंह साहब, आप तो पुलिस की नौकरी करते रहे हैं। आपके जीवन के सारे रहस्य···

सिंह : (अटकते हुए) रहस्य···नहीं···नहीं···! रहस्य था ही क्या ? पुलिसवालों की बातें तो सभी जानते हैं। फिर भी···उसे दोहराना क्या····

आचार्य : आप लोग डरिए नहीं। किसी के जीवन का सत्य इस प्रयोगशाला के बाहर नहीं जायेगा। (रुककर) आप शायद नहीं जानते कि वैज्ञानिक अपने प्रयोग के फल पहले गुप्त ही रखते हैं।

करुणा : पहले गुप्त रखते हैं और बाद में···

आचार्य : (हँसकर) कुछ फल हमेशा गुप्त रखे जाते हैं। लोगों के सामने तो प्रयोग की सफलता और विशेषता की बातें ही आती हैं। अच्छा, अब आप लोग तैयार हो जाइए। इस गोले में प्रकाश होते ही सत्य किरण इस ओर आने लगेगी और (कुर्सियों के आस-पास संकेत कर) यह सारी जगह उससे प्रभावित हो जायेगी। (रुककर) तैयार ! (पुकारकर) मिट्ठू, स्विच ऑन करो ! (भीतर किसी मशीन के चलने की आवाज़ आती है। कुछ क्षणों बाद काँच के गोले में प्रकाश दिखायी देता है। आचार्य खिड़की के पास से हटकर दूर खड़े हो जाते हैं।) यह देखिए आ गयी सत्य किरण। (घड़ी को कुछ क्षण देखकर) बस अब आप लोगों पर इसका प्रभाव हो गया। आप लोग अब केवल सच बोलेंगे !

रामगरीब : डाक्टर साहब, आप भी इधर आइए न। हम लोगों में शामिल हो जाइए। हम लोग भी आपके जीवन का सत्य जान जायेंगे। आज की दुनिया में वैज्ञानिक भी बहुत बड़े आदमी माने जाते हैं।

आचार्य : (कुछ घबराकर) कुछ देर ठहर जाइए। अभी मुझे अपने यंत्रों का भी ध्यान रखना है।

सिंह : (हँसकर) डाक्टर साहब, आप उड़ रहे हैं। मैंने पुलिस में पैंतीस साल नौकर की है। मिल-जुलकर सब-इन्स्पेक्टर हुआ था। पर फिर अपनी ही चालाकी से डी० एस० पी० होकर रिटायर हुआ हूँ। मुझसे आप नहीं उड़ पायेंगे।

खगेश : आचार्य, आपका सहयोगी मिट्ठूलाल पर्याप्त निपुण है। हम लोगों को उस पर विश्वास है।

रामगरीब : किस प्रकार ?

आचार्य : मैं भी इतनी देर से चुप था, पर मैं भी उत्सुक हो गया हूँ।

सिंह : (हँसने की कोशिश करते हुए) आपकी बातें विचित्र लग रही हैं। आगे कहिए !

करुणा : धनी सेठ की पत्नी हूँ, इसलिए जहाँ जाती हूँ लोग सिर-आँखों पर बैठाते हैं। (मुसकराते हुए) समाज-सेवा का काम भी मैंने अपना मतलब सिद्ध करने के लिए लिया है।

रामगरीब : समाज-सेवा से कौन-सा मतलब सिद्ध होता है ?

करुणा : समाज-सेवा के बहाने घूमने-फिरने और मिलने-जुलने की स्वतंत्रता रहती है। (रुककर) खगेश जी, आपने पिछले दिनों मेरी प्रशंसा में जो कविता लिखी थी, वास्तव में उसमें सब कुछ झूठ था।

खगेश : (शीघ्रता से) वह कविता मेरे नाम से छपी अवश्य थी, पर उसका रचयिता मैं नहीं हूँ। एक निर्धन पड़ोसी है मेरा, उसे दो रुपये देकर वे दो दर्जन पंक्तियाँ मैंने उससे ही लिखवायी थीं। (रुककर) देवी जी, वह बड़ा विद्वान् है।

रामगरीब : विद्वान् गरीब तो होते ही हैं। लोग मुझे भी विद्वान् समझते हैं, पर डाक्टर साहब, सच मानिए यदि मैं विद्वान् होता तो शायद शहर की हवेलियाँ मेरी न होतीं।

सिंह : रामगरीब जी, आजकल पैसा और कुर्सी देखकर आदमी को समझदार या बेवकूफ़ कहा जाता है। मेरी ही मिसाल लीजिए। जब तक सब-इन्स्पेक्टर था, सभी आफ़िसर बेवकूफ़ समझते थे। जिस दिन कप्तान हुआ, होशियारी का ठप्पा लग गया।

खगेश : जीरासिंह जी, आप सत्य कह रहे हैं। एक समय था जब कोई मुझसे बात तक नहीं करता था। पर जहाँ मेरी तीन-चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं कि लोगों ने पलकों के पालने में बैठा लिया।

करुणा : खगेश जी, आपकी वे पुस्तकें कैसे निकली हैं ? उनमें तो कई कविताएँ होंगी।

खगेश : सब कविताओं के विषय में वही एक सत्य है। वही मेरे जीवन का सत्य भी है। (रुककर) पर मुझ में एक मौलिकता भी है। प्राचीनतम, अप्राप्य पांडुलिपियों तथा पत्र-पत्रिकाओं का मैंने संग्रह किया है। भिन्न-भिन्न पांडुलिपियों और पत्रिकाओं की भिन्न-भिन्न पंक्तियाँ मेरे प्रयत्न से एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं। ये एक स्थान पर जड़ी पंक्तियाँ एक नयी और मौलिक कविता का रूप ले लेती हैं।

आचार्य : कई पत्रों ने भी आपकी बड़ी तारीफ़ की है।

खगेश : मैंने अपनी चतुराई और चाटुकारी की सहायता से सम्पादकों से परिचय कर लिया है। एक सम्पादक के पुत्र का मैं अवैतनिक शिक्षक हूँ। दूसरे

की पत्नी से राखी बँधवाकर मैंने उसे अपनी भगिनी बना लिया है। (रुककर) आचार्य, वे समस्त लेख मैंने स्वयं लिखवाये थे।

करुणा : अच्छा ! यह मुझे नहीं मालूम था।

सिंह : तो अब नोट कर लीजिए।

रामगरीब : खगेश जी, आपकी एक पुस्तक प्रकाशित भी तो बड़ी सज-धज से हुई थी।

खगेश : रामगरीब जी, उस पुस्तक के प्रकाशक मेरे ससुर हैं। अपने विवाह के समय दहेज के रूप में मैंने उस पुस्तक का प्रकाशन ही मांगा था। (कुछ झेंपकर) करुणादेवी, इस सत्य के कारण मैं अपनी पत्नी पर अपने कवित्व का प्रभुत्व नहीं जमा पाता।

रामगरीब : पत्नी पर प्रभुत्व किस प्रकार जमाया जाये यह मुझसे पूछिए।

सिंह : (कुछ दुख से) बड़ी देर से बताया आपने। मेरी पत्नी तो मुझ पर अपना रौब जमाकर दुनिया से चली गयी।

आचार्य : रामगरीब जी, फिर भी आप सुना डालिए। हम लोगों के काम आयेगा।

रामगरीब : आप भी कुछ सुनाइए न।

आचार्य : आपके बाद सुनाऊँगा। (मुसकराकर) मैं नागरिक हूँ, नेता के पीछे रहूँगा।

रामगरीब : (गला साफ कर) पत्नी पर प्रभुत्व जमाने के लिए एक ही मूलमंत्र है—सदा उससे झूठ बोलना। (गम्भीरता से) पर झूठ भी हिम्मत से बोलना चाहिए। घबराये कि बात डगमगा गयी। (रुककर) मैं उसे मूर्ख समझता हूँ जो पत्नी से सच बोलता है। डाक्टर साहब, बिना झूठ बोले कोई भी अपनी पत्नी पर प्रभुत्व जमा ही नहीं पाता।

खगेश : रामगरीबजी, क्या जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी आप असत्य का आधार लेते हैं ?

रामगरीब : जी हां ! मेरा सारा कैरियर ही झूठ पर बना है। मैंने अभी कहा न कि मैं झूठ हिम्मत से बोलता हूँ। ऐसी हिम्मत से मैं झूठ बोलता हूँ कि दूसरा आदमी सच भी उस हिम्मत से नहीं बोल सकता।

आचार्य : हिम्मत तो बड़ी चीज है। पर आप अपनी हिम्मत का कोई सबूत तो दीजिए।

रामगरीब : मेरी हिम्मत का सबसे बड़ा सबूत तो मेरे कपड़े और मेरे विचार हैं। सच मानिए, मैंने न जाने कितनी पार्टियां ज्वाइन कीं और छोड़ीं। उन पार्टियों के अनुसार कपड़े और विचार बदले। (रुककर, ऊँचे स्वर में) हिम्मत की बात तो यह कि एक पार्टी को छोड़ते ही, चौराहे पर खड़े होकर उसे जी भर गालियां दीं। डाक्टर साहब, गौर कीजिए, कल जिसकी तारीफ की, आज उसे ही हिम्मत से गाली दी। (रुककर) बड़ी बात है न, करुणा-देवी !

करुणा : बहुत बड़ी बात है। पर मेरे लिए नयी नहीं है। मैंने द

रामगरीब : किस प्रकार ?

आचार्य : मैं भी इतनी देर से चुप था, पर मैं भी उत्सुक हो गया हूँ।

सिंह : (हँसने की कोशिश करते हुए) आपकी बातें विचित्र लग रही हैं। आगे कहिए !

करुणा : धनी सेठ की पत्नी हूँ, इसलिए जहाँ जाती हूँ लोग सिर-आँखों पर बैठाते हैं। (मुसकराते हुए) समाज-सेवा का काम भी मैंने अपना मतलब सिद्ध करने के लिए लिया है।

रामगरीब : समाज-सेवा से कौन-सा मतलब सिद्ध होता है ?

करुणा : समाज-सेवा के बहाने घूमने-फिरने और मिलने-जुलने की स्वतंत्रता रहती है। (रुककर) खगेश जी, आपने पिछले दिनों मेरी प्रशंसा में जो कविता लिखी थी, वास्तव में उसमें सब कुछ झूठ था।

खगेश : (शीघ्रता से) वह कविता मेरे नाम से छपी अवश्य थी, पर उसका रचयिता मैं नहीं हूँ। एक निर्धन पड़ोसी है मेरा, उसे दो रुपये देकर वे दो दर्जन पंक्तियाँ मैंने उससे ही लिखवायी थीं। (रुककर) देवी जी, वह बड़ा विद्वान् है।

रामगरीब : विद्वान् गरीब तो होते ही हैं। लोग मुझे भी विद्वान् समझते हैं, पर डाक्टर साहब, सच मानिए यदि मैं विद्वान् होता तो शायद शहर की हवेलियाँ मेरी न होतीं।

सिंह : रामगरीब जी, आजकल पैसा और कुर्सी देखकर आदमी को समझदार या बेवकूफ़ कहा जाता है। मेरी ही मिसाल लीजिए। जब तक सब-इन्स्पेक्टर था, सभी आफ़िसर बेवकूफ़ समझते थे। जिस दिन कप्तान हुआ, होशियारी का ठप्पा लग गया।

खगेश : जोरासिंह जी, आप सत्य कह रहे हैं। एक समय था जब कोई मुझसे बात तक नहीं करता था। पर जहाँ मेरी तीन-चार पुस्तकें प्रकाशित हुईं कि लोगों ने पलकों के पालने में बैठा लिया।

करुणा : खगेश जी, आपकी वे पुस्तकें कैसे निकली हैं ? उनमें तो कई कविताएँ होंगी।

खगेश : सब कविताओं के विषय में वही एक सत्य है। वही मेरे जीवन का सत्य भी है। (रुककर) पर मुझ में एक मौलिकता भी है। प्राचीनतम, अप्राप्य पांडुलिपियों तथा पत्र-पत्रिकाओं का मैंने संग्रह किया है। भिन्न-भिन्न पांडुलिपियों और पत्रिकाओं की भिन्न-भिन्न पंक्तियाँ मेरे प्रयत्न से एक स्थान पर एकत्रित हो जाती हैं। ये एक स्थान पर जड़ी पंक्तियाँ एक नयी और मौलिक कविता का रूप ले लेती हैं।

आचार्य : कई पत्रों ने भी आपकी बड़ी तारीफ़ की है।

खगेश : मैंने अपनी चतुराई और चाटुकारी की सहायता से सम्पादकों से परिचय कर लिया है। एक सम्पादक के पुत्र का मैं अवैतनिक शिक्षक हूँ। दूसरे

की पत्नी से राखी बँधवाकर मैंने उसे अपनी भगिनी बना लिया है। (रुककर) आचार्य, वे समस्त लेख मैंने स्वयं लिखवाये थे।

करुणा : अच्छा ! यह मुझे नहीं मालूम था।

सिंह : तो अब नोट कर लीजिए।

रामगरीब : खगेश जी, आपकी एक पुस्तक प्रकाशित भी तो बड़ी सज-धज से हुई थी।

खगेश : रामगरीब जी, उस पुस्तक के प्रकाशक मेरे ससुर हैं। अपने विवाह के समय दहेज के रूप में मैंने उस पुस्तक का प्रकाशन ही माँगा था। (कुछ झेंपकर) करुणादेवी, इस सत्य के कारण मैं अपनी पत्नी पर अपने कवित्व का प्रभुत्व नहीं जमा पाता।

रामगरीब : पत्नी पर प्रभुत्व किस प्रकार जमाया जाये यह मुझसे पूछिए।

सिंह : (कुछ दुख से) बड़ी देर से बताया आपने। मेरी पत्नी तो मुझ पर अपना रौब जमाकर दुनिया से चली गयी।

आचार्य : रामगरीब जी, फिर भी आप सुना डालिए। हम लोगों के काम आयेगा।

रामगरीब : आप भी कुछ सुनाइए न।

आचार्य : आपके बाद सुनाऊँगा। (मुसकराकर) मैं नागरिक हूँ, नेता के पीछे रहूँगा।

रामगरीब : (गला साफ कर) पत्नी पर प्रभुत्व जमाने के लिए एक ही मूलमंत्र है—सदा उससे झूठ बोलना। (गम्भीरता से) पर झूठ भी हिम्मत से बोलना चाहिए। घबराये कि बात डगमगा गयी। (रुककर) मैं उसे मूर्ख समझता हूँ जो पत्नी से सच बोलता है। डाक्टर साहब, बिना झूठ बोले कोई भी अपनी पत्नी पर प्रभुत्व जमा ही नहीं पाता।

खगेश : रामगरीबजी, क्या जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी आप असत्य का आधार लेते हैं ?

रामगरीब : जी हाँ ! मेरा सारा कैरियर ही झूठ पर बना है। मैंने अभी कहा न कि मैं झूठ हिम्मत से बोलता हूँ। ऐसी हिम्मत से मैं झूठ बोलता हूँ कि दूसरा आदमी सच भी उस हिम्मत से नहीं बोल सकता।

आचार्य : हिम्मत तो बड़ी चीज है। पर आप अपनी हिम्मत का कोई नमूना तो दीजिए।

रामगरीब : मेरी हिम्मत का सबसे बड़ा सबूत तो मेरे कपड़े और मेरे विचार हैं। सच मानिए, मैंने न जाने कितनी पार्टियाँ ज्वाइन कीं और छोड़ीं। उन पार्टियों के अनुसार कपड़े और विचार बदले। (रुककर, ऊँचे स्वर में) हिम्मत की बात तो यह कि एक पार्टी को छोड़ते ही, चौराहे पर खड़े [illegible] जी भर गालियाँ दीं। डाक्टर साहब, गौर कीजिए, कल [illegible] की, आज उसे ही हिम्मत से ग[illegible]। ([illegible]) बड़ी बात है [illegible] देवी !

करुणा : बहुत बड़ी बात है। पर [illegible]

गालियाँ दी हैं, उनसे झगड़ा किया है और घर से बाहर स्टेज पर पति-भक्ति पर लम्बे-लम्बे सारगर्भित भाषण दिये हैं। (हँसकर) दोनों चीज़ें एक साथ।

खगेश : (गद्गद् होकर) करुणादेवी, आपका यह साहस, रामगरीब जी के साहस से भी महान है।

सिंह : (कुछ चिढ़कर) कवि जी, हमारे साहस को आप नहीं जानते। कितने चोरों और डाकुओं को पकड़ने के लिए हमें प्रमोशन मिले। हमारे साहस पर सब ने हमारी तारीफ की। और असल बात यह थी कि हम तो घर से बाहर ही नहीं निकले। हमारे सिपाहियों ने सारा काम किया। (दबे स्वर में) अब कहिए !

[सब की हँसी]

करुणा : यह साहस सब से ऊँचा है। रामगरीब जी, अब आप अपनी बात आगे बढ़ाइए। हम लोग उत्सुक हैं।

रामगरीब : करुणादेवी, आप जानती होंगी, मेरी नेतागीरी म्युनिस्पेलिटी-चुनाव से शुरू हुई थी। चुनाव के पूर्व वोट देने वालों से जितने वादे किये, चुनाव होते ही मैंने उन वादों को बिना संकोच भुला दिया। चुनाव के पहले खोद-खोदकर जिनसे पहचान निकाली (हँसकर), चुनाव के बाद, याद दिलाने पर भी उन्हें न पहचान पाया।

आचार्य : क्या बात है ! (रुककर) रामगरीब जी, सुना है पहले आपकी हालत सब तरफ से बड़ी कमजोर थी ?

सिंह : आपने सुना था···हमने तो सब कुछ देखा था। बड़ी कमज़ोर थी इनकी हालत।

रामगरीब : (ज़ोर देते हुए) जी हाँ, बहुत कमज़ोर थी। और अब देखिए कैसा ज़ोर है। बात यह है डाक्टर साहब कि मैंने नेता बनने के बाद वही काम किये हैं जो ऑनरेरी यानी अवैतनिक थे। मेरा तो अनुभव है कि अवैतनिक कामों में ही वेतन अधिक मिलता है। मजे की बात तो यह है कि इस वेतन पर (हँसकर) इनकम-टैक्स भी नहीं लगता। (खगेश का खुला मुँह देखकर) खगेश जी, आपको आश्चर्य हो रहा है ! मैं कहता हूँ कि यदि आसामी पहचानना आ गया तो पैसा बहता हुआ घर में चला आता है।

खगेश : आपका कथन सत्य है। लोगों का कथन है कि साहित्यिक निर्धन होते हैं, पर मेरा कथन है कि वे साहित्यिक निर्धन होते हैं जिनके पास स्वार्थ-बुद्धि की कंगाली होती है। मैंने चाहे साहित्य को न समझा हो, साहित्य का अध्ययन भी न किया हो···पर साहित्यिक कहलाता तो हूँ। (रुककर) मैं निर्धन नहीं हूँ।

सिंह : वह तो जानता हूँ। पुलिस की डायरी में एक जगह नोट किया गया था कि आपके पास मोटर कैसे आ गयी, इसका पता चलाया जाय।

रामगरीब : जीरासिंह जी, खगेश जी उसके बाद ही मेरे पास आये थे। हम दोनों के प्रयत्न से वह नोट डायरी से काट दिया गया।

सिंह : मुझे मालूम है। मैंने ही उसे कटवाया था। पर खगेश जी, वह मोटर आपके पास आयी कैसे ?

खगेश : करुणादेवी जानती हैं।

आचार्य : तो आप हीं बताइए न, करुणादेवी !

करुणा : खगेश जी को मोटर करुणेश जी ने भेंट की थी। दस हजार रुपये उनके लिए कोई बड़ी चीज नहीं।

सिंह : पर इस भेद का कोई सबब जरूर होगा। खगेश जी, बताइए न।

खगेश : आपको याद होगा कि पारसाल करुणेश जी को उनकी वर्षगांठ पर नगर के साहित्यिकों द्वारा एक अभिनन्दन-ग्रंथ भेंट किया गया था। वह अभिनन्दन-ग्रन्थ क्या है···करुणेश जी की झूठी प्रशंसा का पोथा। करुणा देवी जानती हैं। (रुककर) करुणेश जी की इच्छा से मैंने यह कार्य कराया था।

आचार्य : (शीघ्रता से) ओह, तो मोटर उस मेहनत का फल थी ! (हँसकर) बड़ा ज़ोर है आपकी कलम में, खगेश जी।

करुणा : डाक्टर साहब, रामगरीब जी के भाषण भी बड़े ज़ोरदार होते हैं। मैंने सुने हैं।

रामगरीब : भाषण लिखने के लिए मैंने एक मुंशी रख छोड़ा है। मुझे भाषण वही समझाता है और वही रटाता है। यों मैंने दो-चार कलमघसीट भुखमरे और जमा लिये हैं। जहाँ दस का एक पत्ता भेजा कि बना हुआ भाषण चला आया। (रुककर) मुझे एक ही कष्ट करना होता है···उन्हें ठीक से रटने का। पर मैं अपना काम दिल लगाकर करता हूँ। क्या मजाल कि कॉमा वगैरह तक की भूल हो जाय।

खगेश : भाषण भी आप हिम्मत से ही देते होंगे।

रामगरीब : पूरी हिम्मत से स्टेज पर चढ़ता हूँ। जब बोलता हूँ तो लोग उसे मेरा ही भाषण समझते हैं। पत्रकारों को जब-तब चाय पिलाता हूँ ताकि वे मेरे ही भाषण को अपने-अपने पत्रों में अच्छे स्थान पर छापें : बस !

आचार्य : आपकी बातें सुनकर मेरी इच्छा भी प्रेसवालों से मिलने की हो रही है। रामगरीब जी, यह तो मैंने देखा कि आजकल लोग समाचार-पत्रों की बातों पर जल्दी भरोसा कर लेते हैं।

खगेश : तभी तो हम लोग अपनी भावनाओं का व्यक्तीकरण समाचार-पत्रों के माध्यम से करते हैं। करुणादेवी, आपका क्या विचार है ?

करुणा : पेपर में नाम छपवाने की कोशिश तो मैं भी करती हूँ, पर साथ ही साथ यह भी कोशिश करती हूँ कि अपना कोई ऐसा रहस्य पेपर में न छपने पाये जिससे अपने सामाजिक व्यापार में नुकसान हो।

रामगरीब : मुँह की बात छीन ली आपने, ठीक उसी तरह···

करुणा : (शीघ्रता से) जैसे आप लोगों के मुँह का कौर छीन लेते हैं।

[सबकी हँसी। रामगरीब गम्भीर हो जाते हैं।]

आचार्य : (बात बदलते हुए) रामगरीब जी, कुछ दिनों पहले भिखारियों की समस्या पर पेपरों में आपका जो भाषण छपा था, वह मुझे बहुत पसन्द आया था।

रामगरीब : (सम्हलते हुए) मेरे मुंशी ने उस भाषण को तैयार करने के लिए न जाने कितनी पुस्तकें और बड़े-बड़े नेताओं के दर्जनों भाषण पढ़े थे। इसके बाद मुंशी ने भाषण को एक हफ्ते में लिखा था। (हँसकर) और मैंने (जोर देकर) एक दिन में याद किया था। (रुककर) ऐसे ही भाषणों ने मुझे आगे बढ़ाया है। जीरासिंह जी, आपके बढ़ने का क्या कारण है आपने बतलाया ही नहीं?

सिंह : मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि खुशामद का ही जोर था जो मुझे यहाँ तक ले आया। जब मैं सब-इन्स्पेक्टर हुआ तब अपने साहबों के सामने मैंने अपने को कान्स्टेबल से बड़ा नहीं समझा। साहब, वह अंग्रेज़ों का ज़माना था। उनके सामने इन चीजों की बड़ी कीमत थी। मैं काम से ज्यादा इन चीज़ों की फिकर करता था···और बढ़ता जाता था।

करुणा : एक दिन करुणेश जी कह रहे थे कि आप लोगों को बड़ा तंग करते थे।

सिंह : (हँसकर) तंग! नहीं जी, मैं तो सरकार की बात मानता था। जब दो-चार साथियों को मारता और गालियाँ देता था तो साहब पीठ ठोंका करते थे। (रुककर) आपसे क्या छिपाऊं, सन् बयालीस के आन्दोलन में मैंने आजादी का नाम तक लेनेवालों को ऐसा दुरुस्त किया था कि आज भी उनकी हड्डियाँ कड़कती होंगी।

खगेश : च्‌च्‌च्···यह तो कठोरता है।

सिंह : उन दिनों यही कर्तव्य समझा जाता था। अंग्रेज़ सरकार को मैंने आंदोलन की कितनी ही गुप्त बातें बनायीं। उन्हीं बातों के दम पर कितने लोग पकड़े गये!

आचार्य : आपको इसमें क्या मिला था?

सिंह : प्रमोशन। आन्दोलन ठण्डा हुआ और मैं डी० एस० पी० हो गया।

करुणा : नयी सरकार आने पर आपकी इज्जत घट गयी होगी।

सिंह : जी नहीं। हमारी नयी सरकार के आने पर हमारी इज्जत और बढ़ गयी। (रुककर) इसका कारण रामगरीब जी बतलायेंगे। ये भी तो इज्जत बढ़ाने वालों में हैं।

रामगरीब : करुणादेवी, बात यह थी कि जीरासिंह जी जैसे पुलिस-अधिकारी हम लोगों का सारा इतिहास जानते थे। यदि इन्हें दूर करते तो अपना सारा भंडाफोड़ होता। इसलिए इन लोगों को गले लगाना ही पड़ा! (हँस-

कर) यही तो राजनीति है।

खगेश : ज़ोरासिंह जी, अब तो अवकाश प्राप्त कर चुके हैं आप। अब तो समय बड़ी कठिनाई से कटता होगा ?

सिंह : नहीं कवि जी, अब भी कहाँ आराम है ! हमारी सरकार हम पर बड़ी खुश है। हम पर सरकार को भरोसा भी बहुत है। (रुककर कुछ ऐंठ में) अब भी हम पाँच-सात बड़ी कमेटियों के मेम्बर हैं। अब इज्जत और बढ़ गयी है। (कुछ सोचते हुए) डाक्टर साहब, एक चीज़ याद आयी।

आचार्य : तो जरूर कहिए, यहाँ तो अपना ही राज्य है।

सिंह : कुछ दिनों पहले, पेपर में जहाँ यह खबर छपी थी कि मैं पुलिस का विशेष अधिकारी बना दिया गया हूँ···उसी के नीचे यह भी छपा था कि आपके गुरु प्रयोगशाला में मरे पाये गये। खबर में था कि प्रयोग करते समय···

आचार्य : (बीच में) वह खबर ग़लत थी।

सिंह : तो सच क्या था ?

आचार्य : वास्तव में सत्य किरण का आविष्कार उन्हीं का था। यदि वे जीवित रहते तो इस आविष्कार का सारा श्रेय उन्हीं को मिलता। पर मैं दुनिया को यह बताना चाहता था कि इसका आविष्कारक मैं हूँ। इसका सारा श्रेय मैं चाहता था, इसीलिए मैंने उन्हें अपने रास्ते से हटा दिया। (रुककर) मैंने उन्हें ज़हर दे दिया था।

[इसी समय दरवाज़े पर मिट्ठूलाल आकर ज़ोरों से हँसता है। सब लोग चौंककर उसी ओर देखने लगते हैं।]

मिट्ठू : मैंने आप सबकी बातें बगल के कमरे से सुन ली हैं। डाक्टर साहब ! आज मैं सारी चीज़ समझ गया।

आचार्य : (डाँटकर) मिट्ठूलाल !

मिट्ठू : अब आपकी डाँट का मुझ पर कोई असर नहीं होगा। दुनिया में मैं आपकी वैज्ञानिकता का ढोल पीटूँगा। आपके साथ इन सब के गुण भी गाऊँगा।

करुणा : (घबराकर) तुमने सारी बातें सुन ली हैं ?

मिट्ठू : जी। करुणेश का प्रेम, आपकी समाज-सेवा ! (हँसी, आचार्य उसकी ओर बढ़ते हैं।) वहीं रुकिए, डाक्टर साहब, मैं सब जान गया हूँ। खगेश जी का साहित्य, रामगरीब जी की नेतागीरी, ज़ोरासिंह जी की ईमानदारी ! कल तक सारी दुनिया भी जान जायेगी। डाक्टर साहब, नमस्ते···मैं चला दिया।

[हँसी। प्रस्थान। उसकी हँसी नेपथ्य में कुछ देर सुनाई देती है।]

रामगरीब : डाक्टर साहब, अब क्या होगा ?

खगेश : मैं अपने साहित्य पर एक मित्र से आलोचनात्मक ग्रन्थ लिखा रहा था··· अब वह यों ही रह जायेगा।

सिंह : मैं भी कई राष्ट्रीय समितियों का मेम्बर हूँ।

करुणा : (घबराकर) डाक्टर साहब, कुछ कीजिए। हमें बचाइए।

आचार्य : आप लोगों से अधिक मुझे अपनी चिन्ता है। (सोचते हुए) मैं इस सत्य किरण के आविष्कार को संसार के सामने नहीं जाने दूँगा। सत्य किरण की सत्यता न कोई जानेगा और न कोई मिट्ठू की बातों पर भरोसा करेगा। मिट्ठूलाल की बातें सत्य किरण ही सत्य कर सकती है। पर सत्य किरण से अधिक महत्त्वपूर्ण हमारा जीवन है। आप लोग विश्वास रखिए'''हम लोग दुनिया की आँखों से नहीं गिरेंगे।

सब : आप धन्य हैं, डाक्टर साहब।

[डाक्टर खिड़की से आती सत्य किरण को देखता है और सब डाक्टर की ओर देखते हैं। पर्दा धीरे-धीरे गिरता है।]

१८

महल्ले की आबरू

इन्दुशेखर

श्री इन्दुशेखर का जन्म सन् १९११ में हुआ था। आपकी शिक्षा दिल्ली, लाहौर, वाराणसी, मेरठ और कलकत्ता में हुई। आप पंजाब, दिल्ली और राजस्थान के कॉलेजों में विभिन्न विषयों के प्रोफेसर रह चुके हैं। दिल्ली के अंग्रेजी मासिक 'कैरेवान' और साप्ताहिक 'एथनग्राफ' के आप संयुक्त संपादक रह चुके हैं। पश्चिम बंगाल के कूच बिहार राज्य में शिक्षामन्त्री और प्रकाशन-संचालक के रूप में भी आपने तीन वर्ष तक कार्य किया है। कई वर्ष आप तेहरान युनिवर्सिटी, ईरान में इंडोलोजी के प्रोफेसर रहे।

आप हिन्दी, संस्कृत, प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के विद्वान हैं।

पात्र

उमाशंकर भार्गव : ऑनरेरी मजिस्ट्रेट
चौधरी : महल्ला कांग्रेस समिति के मंत्री
तिवारी : ठेकेदार
सरदार : दुकानदार
मिस गार्डन : नर्स
रामू : नौकर

समय : रात के आठ बजे
स्थान : दिल्ली

भार्गव के सामने आज का अख़बार पड़ा है, जिस पर उनकी नज़र कभी-कभी पड़ जाती है। इतने में घड़ी में आठ बजते हैं, और तीन व्यक्ति प्रवेश करते हैं। भार्गव का ध्यान आगंतुकों की ओर आकर्षित हो जाता है।

भार्गव : (मसनद की ओर बैठने का संकेत करते हुए) आइए, आइए, विराजिए। तिवारीजी, आपके तो दर्शन ही दुर्लभ हो गए—कहीं बाहर चले गए थे क्या? परमात्मा झूठ न बुलाए, आज शतरंज बिछे दो महीने से ऊपर हो गए हैं। थैली में बन्द हाथीदांत के मोहरे दिन-रात आपकी जानमाल को दुआ दे रहे हैं। और एक आप हैं कि इधर आने तक की कसम खा ली है। आखिर यह बेरुखी क्यों?

तिवारी : फ़ुरसत ही कहाँ मिलती है आजकल! यह सप्लाई का काम क्या ले बैठा हूँ, जान आफ़त में फंस गई है। सारे दिन की मगजपच्ची। इससे मिल, उससे मिल; इसकी ख़ुशामद, उसकी ख़ुशामद···

भार्गव : (बात काटते हुए) मगर यह अहसान आप किस पर लाद रहे हैं, तिवारी जी? रुपया भी तो आप ही कमा रहे हैं। करौलबाग में दो मकान खड़े कर लिए हैं। वह फटीचर टमटम बेचकर नई कार ख़रीद ली है। चेहरे की झुर्रियाँ भी धीरे-धीरे गायब होती जा रही हैं। अफ़सरों से मेल-मुलाकात हो गई है। सच पूछो तो आपकी पाँचों उंगलियाँ घी में हैं।

तिवारी : (पान से रंगे लाल दाँत दिखाते हुए) सो तो भगवान की, बल्कि कहिए हमारे चौधरी साहब की कृपा है। (चौधरी की ओर देखकर) इनके प्रताप से ही दो-चार परमिट और ठेके मिल गए हैं, वरना मजिस्ट्रेट साहब, हमें कौन पूछता है!

भार्गव : हाँ भाई, चौधरी साहब की तो बात ही निराली है। यह तो वह शालिग्राम की बटिया हैं, जिसका छुआ लोहा भी सोना हो जाए।

चौधरी : (गांधी टोपी को जरा और तिरछी करके चश्मे को नाक की धुरी पर सजाते हुए) जनतंत्र का यह सर्वप्रथम और सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मानव मानव की सहायता करे, उसकी रक्षा में सहयोग दे। उस आदर्श-पालन के अतिरिक्त मैंने और कुछ भी नहीं किया है और इससे अधिक कुछ करने का अवसर ही कहाँ मिलता है! आज प्रधानमंत्री ने बुलाया है, कल पार्टी की मीटिंग है, परसों गांधी प्रतिष्ठान का उद्घाटन है—इन्हीं राष्ट्रीय कार्यों से फ़ुरसत नहीं मिलती।

भार्गव : सो तो देख ही रहा हूँ। आजकल आप लोगों की जिम्मेदारी बढ़ गई है।

चौधरी : (कुछ प्रसन्न होकर) जिम्मेदारी के अतिरिक्त आगामी निर्वाचन के लिए भी देश को तैयार करना है—यह एक विशाल कार्य है, भार्गव साहब। मैं राजघाट की शपथ खाकर कहता हूँ कि अगले निर्वाचन में कांग्रेस की बहुमत से विजय तो होगी ही, साथ ही विश्व के समस्त राष्ट्र भी उसकी कल्याणमयी नीति से अपने को प्रभावित पाएँगे।

तिवारी : इस में संदेह ही क्या है! राष्ट्रपिता के अमर सिद्धांतों के सामने जब अंग्रेज़ जैसे कूटनीतिज्ञ भी नहीं टिक सके, तो ये देशी समाजवादी और महासभा वाले किस खेत की मूली हैं!

चौधरी : (अधीरता का भाव दिखाते हुए) समय अधिक हो गया है। हम शायद मुख्य विषय से बहुत दूर जा रहे हैं। मजिस्ट्रेट साहब, हम लोग एक विशेष कार्य से आपके पास आए हैं। तिवारी जी, आप ही कह दीजिए न।

तिवारी : हाँ, तो बात यह है, मजिस्ट्रेट साहब, चौधरी साहब के बिजनौर वाले साले दिल्ली ही में तशरीफ ला रहे हैं। उनके रहने के लिए एक मकान चाहिए। आपके शहर में और इस महल्ले में अनेक मकान हैं।

भार्गव : हाँ, मकान तो आपकी दया से हैं, पर आजकल खाली कोई भी नहीं।

तिवारी : अगर मकान खाली नहीं हैं, तो खाली करवाना ही होगा।

भार्गव : आप ही बताइए, जब मकान खाली ही नहीं, तो मैं क्या कर सकता हूँ!

चौधरी : हूँ! तो साफ ही क्यों नहीं कह देते, तिवारीजी कि मुख्य प्रश्न मकान का नहीं, बल्कि कुछ और ही है।

भार्गव : प्रश्न और ही है? जरा साफ-साफ कहिए।

तिवारी : अरे भाई, वह सामने गली के नुक्कड़ पर आखिरी फ्लैट में जो क्रिस्तानी मिसिया रह रही है, उसे झोंटा पकड़कर बाहर क्यों नहीं निकाल देते?

भार्गव : यह आप क्या कह रहे हैं? माना कि वह क्रिस्तानी है, पर मेरे किराए-दारों में से सबसे नेक और नियमपूर्वक किराया देने वाली है। इसके अलावा उसके अहसान भी मुझ पर कम नहीं हैं। पिछले वर्ष उस दिन जब मेरी पुत्रवधू प्रसवपीड़ा से छटपटाकर दम तोड़ रही थी, तब उसी ने रात-दिन एक करके उसे मौत के मुँह से बचाया था।

तिवारी : यह भी आपने एक ही कही! अजी, बचाने वाला तो भगवान है, और फिर इस छोकरी ने मुफ्त थोड़े ही काम किया होगा। उसे पता था कि इस घर में पैसे की कमी नहीं है, दो-चार सौ पर हाथ साफ किया होगा।

भार्गव : माफ कीजिए, तिवारी जी, मैं मानता हूँ कि पैसा बहुत बड़ी चीज है, मगर कुछ अहसान ऐसे भी होते हैं, जिन्हें पैसे की तराजू पर तोलकर भुलाया नहीं जा सकता।

तिवारी : (जरा आगे खिसककर, कान के पास) आप तो समझते नहीं, मजिस्ट्रेट

साहब ! अगर बात इतनी ही होती तो रोना किस बात का था, मगर उस छोकरी का चालचलन ठीक नहीं है । आपसे हमने पहले भी एक बार कहा था कि महल्ले में जवान लड़की का अकेले रहना ठीक नहीं है । महल्ले में सभी बालबच्चेदार इज्जतदार आदमी हैं । बहू-बेटियाँ हैं ।

चौधरी : (टोपी और चश्मा संभालते हुए) मैं आपसे सहमत हूँ, तिवारीजी । यह महल्ला है और प्रत्येक महल्ला एक परिवार के समान है । अकेली लड़की न माँ कहला सकती है, न बहन बन सकती है, और न ही पत्नी बनकर रह सकती है । इसके अतिरिक्त सरदारजी ने जो बात अपनी आँखों से देखी है, उस पर परदा कैसे डाला जा सकता है !

भार्गव : (चौंककर) क्या देखा है, सरदारजी, आपने ?

सरदार : मजिस्ट्रेट साहब, आप तो हैं भोले और दिल के साफ, मगर हम [illegible] चिड़िया को पहचानते हैं । महल्ले में कदम रखते ही मैंने सतवंत [illegible] से कह दिया था कि इस लड़की से दूर ही रहना । सारा महल्ला [illegible] है कि इस लड़की के पास एक नौजवान लड़का कभी-कभी [illegible] पिछली दीवाली के मौके पर वह यहीं मौजूद था । पहले [illegible] यही बनी कि आप से कहा जाये, पर फिर सोचा, चलो [illegible] संभल जाये । पर अब तो बात हद से ज्यादा बढ़ गई है [illegible] पिछले चार दिन से यहीं मौज कर रहा है ।

भार्गव : (कुछ विचार करते हुए) अच्छा, तो यह बात है [illegible] छोकरा है कौन—यह भी तो पता लगाना चाहिए

तिवारी : आप भी गजब करते हैं, मजिस्ट्रेट साहब ! [illegible] कौन-सी बात है ? होगा कोई यार-दोस्त ! [illegible] ही उसके साथ टाँगे में सवार होकर [illegible] दोनों झूमते-झामते आते हैं, हँसी के ठहाके [illegible] हैं । मजिस्ट्रेट साहब, महल्ले में इतना [illegible] आँखें बन्द किए बैठे हैं ? क्यों, सरदारजी ?

सरदार : हाँ, साहब, कोई भी भला आदमी [illegible] में कौन नहीं मौज उड़ाता ? [illegible] खेले, नशे भी किए, मौज-बहार [illegible]

चौधरी : फिर एक और भी बात [illegible] सामने हार मानकर [illegible] पहनकर, उन गोरों की [illegible] छाती पर मूँग दलती [illegible] पवित्र वातावरण बिगड़ [illegible] हमारा पुराना आदर्श…

भार्गव : आदर्शों की बात छोड़िए [illegible]

तिवारी : यही कि उस मिसिया को इस महल्ले खिसका दीजिए।

भार्गव : इतनी ही बात है न ? यानी आपको अपने साले के लिए मकान की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी मानव जाति के कल्याण की फिक्र है ? मैं कल ही मिस गार्डन को बुलाकर पूछताछ किए लेता हूँ। फिर आप जो ठीक समझें हो जाएगा।

चौधरी : (गंभीर स्वर और मुख बनाकर) अब यह बात कल पर नहीं छोड़ी जा सकती, भार्गव साहब। जरा से विलम्ब से कितना बड़ा अनर्थ हो सकता है, यह आप जानते हैं। रोग जान लेने के बाद भी जो वैद्य अपने मरीज को कल पर छोड़ दे, वह वैद्य कहलाने योग्य नहीं। राष्ट्रपिता के बताए हुए आदर्श सिद्धांतों पर चलने वाला प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता है। आज रात को ही उस लड़की को निकाल बाहर करना होगा।

भार्गव : चोर, रिश्वतखोर, मुनाफ़ाखोर व्यक्ति, जो समाज के घोर शत्रु हैं, उनके दमन में तो आपने कभी इतनी तत्परता नहीं दिखाई, चौधरी साहब ! उस अकेली लड़की के वैयक्तिक जीवन पर हमला कर उसे आधी रात घर से बाहर निकालना चाहते हैं। जो आप कहते हैं यदि वह सत्य है, तो उससे आपकी क्या हानि हो रही है ?

तिवारी : मजिस्ट्रेट साहब, आखिर आप उस मिस पर इतने क्यों रीझे हुए हैं कि परों पर पानी ही नहीं पड़ने देते ? (दोनों ओर देखकर हँसते हुए धीमे स्वर में) क्या कुछ जान-पहचान हो गई ? अगर यह बात है तो, भाई, हम कुछ नहीं बोलेंगे।

भार्गव : (कुछ उत्तेजित स्वर में) बेकार की बातें न कीजिए, तिवारी जी ! उस लड़की की ओर से मुझे कोई शिकायत नहीं और न ही किसी किराए-दार को इस प्रकार निकाला जा सकता है।

तिवारी : महल्ले के लिए, महल्ले की आबरू और इज्ज़त के लिए, देश और धर्म की मर्यादा के लिए, चौधरी साहब के लिए, मुझे अकेले ही यह कार्य करना होगा।

भार्गव : देखता हूँ, आप जरूरत से अधिक गरम होते जा रहे हैं। क्या यह भी मुझे याद दिलाना होगा कि मिस गार्डन आपकी नहीं, बल्कि मेरी किराएदार हैं और मेरी इच्छा और अनुमति के विरुद्ध आप उस मकान में कदम भी नहीं रख सकते ?

चौधरी : तिवारीजी, आप जरा शांत रहें। राष्ट्रपिता का आदेश था कि यथा-संभव धैर्य और साहस से काम लेना चाहिए। उस लड़की और युवक को पाप-कर्म से रोकने में तो मजिस्ट्रेट साहब भी हमारे सहायक होंगे। क्यों, मजिस्ट्रेट साहब ?

भार्गव : मगर आपके पास इस बात का क्या प्रमाण है कि वे दोनों पाप-कर्म में

मिस गार्डन : (अनसुनी करके) छोड़िए भी इन बातों को। भला आपको मकान की क्या कमी है! देखिए, मैं कल सवेरे ही चली जाऊँगी और सात तारीख तक लौटूंगी।

भार्गव : मुझे अफसोस है, मिस साहब। अब तो यह मकान आपको खाली करना ही होगा। कुछ परिस्थिति ही ऐसी हो गई है कि और कोई उपाय ही नहीं।

मिस गार्डन : यह कैसे हो सकता है, मजिस्ट्रेट साहब! मैं बराबर चार साल से इस मकान में रह रही हूँ और बिना तकाजे हर महीने आपको पेशगी किराया देती आ रही हूँ। आपके भले-बुरे में जो कभी मैं काम आयी हूँ, उसकी दुहाई तो मैं न दूंगी, पर एक ईमानदार किराएदार की हैसियत से क्या मैं यह जान सकती हूँ कि आज ऐसी कौन-सी बात हो गई जो आप मकान खाली करने पर जोर दे रहे हैं?

तिवारी : यह तो आप अपने दिल से ही पूछिए कि मकान खाली कराने का क्या कारण हो सकता है। आपका शायद यही खयाल था कि इस महल्ले में सभी भोंदू बस रहे हैं। हमारे घरों के आगे यदि परदे टंगे हैं, तो उसका यह आशय नहीं कि हमारी आँखों पर भी परदा पड़ा है। बहुत भोली बनने की कोशिश न कीजिए। जिसका मकान है वह खाली भी करवा सकता है।

मिस गार्डन : (सकपकाकर) मैं आपकी बात बिलकुल नहीं समझ पा रही हूँ।

भार्गव : आप समझ भी कैसे सकेंगी? आज तक शायद आपका यही खयाल था कि आप इस महल्ले में अकेली हैं। आपको इस बात का ध्यान भी न होगा कि इस महल्ले के अनेक नेताओं की आँखें दिन-रात आप पर लगी रहती थीं। मिस गार्डन, यहाँ लोग अपने से ज्यादा औरों को अजीज समझते हैं, अपने से अधिक उन्हें इस बात के जानने की फिक्र रहती है कि फलाँ क्या कर रहा है, उसके यहाँ कौन आया है। इस देश के नौनिहाल किसी भी व्यक्ति को, विशेषकर युवती को, अकेली नहीं छोड़ते; सुरक्षा की दृष्टि से उसकी गतिविधि पर पूरा-पूरा पहरा देते हैं।

ग्ररी : यदि ऐसा न हो तो राष्ट्र का कितना अमंगल हो सकता है!

भार्गव : तभी तो मैं भी कह रहा हूँ। इस धर्मप्राण देश में लोग अपनी रात और नींद हराम कर अपने पड़ोसियों की पूरी-पूरी देखभाल इसीलिए करते हैं कि वे इज्ज़तदार हैं। पिछले चार-पाँच दिन से जो आप आनंदपूर्वक जीवन बिता रही हैं, उसके कारण महल्ले के स्वयंसिद्ध नायकों की आँखें और गरदनें लाज से झुक-झुककर ज़मीन से जा लगी हैं। इसका शायद आपको पता नहीं?

मिस गार्डन : अब और समझाने की जरूरत नहीं, मजिस्ट्रेट साहब। मकान खाली करवाने का कारण भी मेरी समझ में आ गया है। इन लोगों से न तो

मैं भली प्रकार परिचित हूँ और न ही कुछ कहना चाहती हूँ, पर आप भी इतने नीच हो सकते हैं, इसका मुझे खयाल भी नहीं था।

भार्गव : मुझे कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं, मिस गार्डन। जो कुछ भी कहना हो अपने इन्हीं हितैषियों से कहिए, जो इतने दिनों से आपकी निगरानी कर रहे हैं। इनके जीते-जी आप इस महल्ले पर कलंक नहीं लगा पाएँगी, मिस गार्डन। ये लोग अपनी जान दे देंगे या आपकी ले लेंगे, पर महल्ले की आबरू पर आँच नहीं आने देंगे।

मिस गार्डन : (क्रुद्ध स्वर में) इस लांछन की बात को सुनकर तो यही जी चाहता है कि कुछ न बोलूँ; पर फिर भी आप लोगों की शान्ति के लिए यह कहे देती हूँ कि जो सज्जन पिछले चार दिन से मेरे साथ टिके हुए हैं वह हैं मेरे सगे बड़े भाई मिस्टर एलिस गार्डन, जबलपुर के पुलिस सुपरिंटेंडेंट। मैं उन्हीं की शादी में कल प्रातःकाल उनके साथ जा रही हूँ। मजिस्ट्रेट साहब, इतने गवाहों के सामने आपसे भी यह कहे देती हूँ कि मैं मकान हरगिज खाली नहीं करूँगी। (वह नीचे उतर जाती है।)

भार्गव : कहिए, चौधरी साहब, अब क्या इरादा है ? मैं अब भी आपके साथ चलने के लिए तैयार हूँ, मगर अब शायद महल्ले की आबरू इसी में है कि आप लोग चुपचाप खिसक जाएँ।

१९

आई. ए. एस.

स्वामीनाथ

श्री स्वामीनाथ का जन्म सन् १९२८ में शिमला में हुआ था। दक्षिण भारतीय होने पर भी आपको सदा हिन्दी से प्रेम रहा। आप कई वर्ष तक लोकप्रिय मासिक पत्रिका 'सरिता' के संपादक रहे। राजनीति से गहरी दिलचस्पी है। आजकल स्वतंत्र पत्रकार और लेखक हैं।

पात्र

कालामणि	:	गृहस्वामी
नागराज	:	कालामणि का बड़ा पुत्र
राममूर्ति	:	कालामणि का दामाद
मीनाक्षी	:	कालामणि की पत्नी
कमलिनी	:	मीनाक्षी की सहेली
लड़की	:	कमलिनी की बेटी
राधा	:	कालामणि की छोटी बेटी
कमला	:	राममूर्ति की पत्नी
सुब्बरायन	:	कालामणि का छोटा पुत्र
केशवन, खोसला	:	सुब्बरायन के मित्र

दर्ज़ी

स्थान : नई दिल्ली में एक सरकारी क्वार्टर की बैठक।

समय : तीसरा पहर।

सामने की दीवार पर, फायरप्लेस के ऊपर, स्टालिनकट कोट और मुंडासा पहने हुए एक रोबीले वयस्क का फोटो सुनहरे फ्रेम में लटक रहा है, जिसका शीशा टूटा हुआ है। यह फोटो श्रीमती कालामणि ऐयर के महान वंशज तिरवल्लूर के सुविख्यात ज़मींदार राजा नटेशराजन का है, जिनके प्रभाव और संपत्ति की कहानी कालामणि परिवार रोज सुवह एक वार गृहलक्ष्मी के मुखारविंद से सुन लेता है। राजा नटेश-राजन के चेहरे की विशेषता उनकी आँखें हैं, जिनकी घूमती हुई पैनी दृष्टि अब भी अनायास ही उस महान व्यक्तित्व की आन और शान की याद बैठक में प्रवेश करने वालों को एक वार दिला देती है।

दीवारों पर टूटे हुए फ्रेमों में कुछ और भी फोटो लटक रहे हैं। मेंटलपीस के ऊपर पीतल के दो फूलदानों में कागज़ के पुराने फूल रखे हैं। वायीं ओर की दीवार पर एक वड़ा-सा कैलेंडर लटक रहा है, जिसके ऐन ऊपर एक घंटा है, जिसमें चार वजकर पैंतीस मिनट हो रहे हैं।

कमरे में दो दरवाज़े हैं; एक वाहर सड़क पर खुलता है और दूसरा सामने की दीवार के दाएँ कोने में अंदर को खुलता है। कमरे के एक कोने में वेंत के रैक में कुछ फटी-पुरानी पुस्तकें रखी हैं, जिन पर एक इंच मोटी धूल जमी है। कमरे के वीच में एक छोटी-सी मेज़ है, जिसके चारों ओर चार कुरसियाँ पड़ी हैं। वायीं ओर की दीवार से एक निवाड़ की खाट लगी है, जिस पर मैला-सा विस्तर पड़ा हुआ है। फर्श पर एक ओर एक पुरानी-सी दरी भी विछी है।

खाट पर विस्तर से कंधा लगाए, ठोढ़ी को हथेली का सहारा दिए कालामणि ऐयर पड़े हैं। तहमत वाँधे हुए हैं। नंगे काले शरीर पर सफ़ेद मोटा जनेऊ चमक रहा है। दुवले-पतले, पस्तहिम्मत-से, आंखें अंदर को धँसी हुई और वालों में सफेद रेखाएँ। उम्र लगभग पैंतालीस वर्ष। दरी पर उनका सबसे वड़ा पुत्र नागराज और उनकी वड़ी लड़की कमला का पति राममूर्ति वैठे कैरम खेल रहे हैं।

कालामणि : वहुत दिनों के वाद अव रुपयों की झंकार सुनने को मिलेगी।

नागराज : (निशाना वनाते हुए) वहुत दिनों वाद क्यों? पहली वार कहो, पिताजी, पहली वार।

कालामणि : तुझ से कौन पूछता है? तू चुप रह, नालायक!

नागराज : (हँसता हुआ) अच्छा-अच्छा, विगड़ो नहीं। विगड़ना अपशकुन होता है।

कालामणि : दाँत दिखाता है? शरम कर। मैं तो हमेशा कहा करता था कि सुन्दर तुम सव से भिन्न है।

नागराज : इसमें कोई शक नहीं ! वह अपने ढंग का एक ही है।
[राममूर्ति इस व्यंग्य पर हँसता है, लेकिन कालामणि की क्रोधपूर्ण दृष्टि को देखकर फौरन चुप हो जाता है।]

कालामणि : इसके बाद तू तो अब कहीं भी मुंह दिखाने लायक नहीं रहा।

नागराज : (व्यंग्यात्मक स्वर में) चेहरे को तिरस्कार मिला, पिताजी, तो क्या हुआ ! एक अफसर का भाई कहलाने का सौभाग्य भी तो प्राप्त हुआ है। अब तो श्री सुब्बरायन की महत्ता इस नालायक के आगे-आगे चला करेगी। सच पूछो तो अब तो सभी की मौज है। अफसर साहब की सूरत से बिखरता हुआ प्रकाश हम सब पर ग्रासों का काम करेगा।

कालामणि : तुम सब गधे हो, गधे ! सिर्फ सुब्बू ही···

नागराज : (राममूर्ति को आँख मारकर) क्यों, भई राममूर्ति, इस अफसर शब्द में वाकई जादू है। जोड़ दीजिए आप इसे किसी व्यक्ति के नाम के साथ, फिर देखिए यह कैसा परिवर्तन लाता है। गधे को हम देवता समझने लगते हैं, और मनुष्य को गधा। (उछलकर खड़े होते हुए) लो, एक निल गेम तुम्हें और दिया।

कालामणि : (स्वतः) आह ! आखिरकार अब हम अपना कर्ज अदा कर सकेंगे। मैं तो इस चिंता के बोझ से दबा जा रहा था। दूधवाला, सब्जीवाला, पनसारी—हरेक से उधार, हर चीज उधार।

नागराज : (कालामणि की ओर देखता है। फिर मुड़कर राजा नटेशराजन के चित्र को संबोधित करते हुए) तो श्री सुब्बरायन आई. ए. एस. परीक्षा में चुने गए। राजा साहब, यह खुशी की मुसकराहट छिपाने की विफल कोशिश क्यों कर रहे हैं आप ? आपको भी नया फ्रेम मिलेगा। (मुसकराता रहता है।)

कालामणि : (अपनी धुन में) पिछले दो वर्षों से बच्चों का स्कूल जाना भी बंद हो गया था, अब उनका किसी अच्छे स्कूल में इंतजाम हो जाएगा। रामू को मैट्रिक का सर्टिफिकेट लिए अब नौकरी की तलाश में दर-दर भटकने की कोई जरूरत नहीं, उसे भी कॉलिज में दाखिल करवाना होगा।

राममूर्ति : (कैरम की गोटियाँ एकत्र करते हुए) नागराज, आज स्कूल नहीं गए पढ़ाने ?

नागराज : (मुँह बनाकर) भाड़ में जाए स्कूल और भाड़ में जाए यह पढ़ाई ! अरे, मैं कहता हूँ, लड़कों के बाप के पास इतना पैसा नहीं कि वे जीवन-निर्वाह कर सकें, तो फिर इस ढकोसले को जारी रखने की क्या जरूरत है ?

कालामणि : (अपनी धुन में) राधा की संगीत-शिक्षा के लिए भी मास्टर का इंतजाम होगा। एक नई ज़िंदगी आएगी, हम भी मानवों की तरह ज़िंदगी बसर कर सकेंगे।

राममूर्ति : इनमें कोई शक नहीं कि लोगों की दशा कुछ ठीक नहीं। बेकारों को

इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

नागराज : जरा सोचो, लड़ते हैं और प्यार करते हैं, लेकिन हमेशा जीवन को नाटक बनाकर अभिनेताओं की तरह। यह अपने अस्वस्थ दिमाग और चंचल हृदय की असंभव कल्पनाओं और अनन्त आकांक्षाओं के सदा शिकार बने रहते हैं। कल्पनाएँ कभी सत्य नहीं होतीं और आकांक्षाएँ कभी पूरी नहीं होतीं; इसीलिए इनका जीवन निराशा और शिकायत की एक लम्बी कहानी बन जाता है।

राममूर्ति : सच है, नागराज, लेकिन तुम्हारा फलसफा किस काम का? तुम चीज़ को समझते तो हो, लेकिन उसे बदल नहीं सकते। सिनिक और क्रांतिकारी के बीच यही अन्तर है। तुम तो सिनिक हो।

नागराज : मैं जानता हूँ, राममूर्ति, मैं जानता हूँ। (कमीज़ की जेब से सिगरेट निकालकर जलाता है। बाहर को झाँककर) अरे, देखो, कौन आ रहा है? कोई द्वार खटखटा रहा है। (नागराज द्वार खोलता है। एक अधेड़ स्त्री कमलिनी और उसकी सोलह-वर्षीय लड़की का प्रवेश) आइए, आइए। माँ, देखो, तुम्हारी सहेली आयी है। (अन्दर जाता है। राममूर्ति भी पीछे-पीछे जाता है।)

लड़की : माँ, पिछले हफ्ते से राधा के मिजाज तो सातवें आसमान पर चढ़े हुए हैं। सीधे मुँह बात भी नहीं करती।

कमलिनी : यही हाल मीना का भी है, बेटी। वैसे तो हमेशा ही वह जरा अपनी कुलीनता की डींग मारा करती थी, लेकिन अब तो वह बिलकुल बदल गई है। उस दिन गवर्नर जनरल की पार्टी में मिली, तो मुँह मोड़कर अफसरों की बीवियों में जा घुसी। पता नहीं क्या बात है!

लड़की : माँ, अब तो राधा अंग्रेज़ी छोड़कर किसी और भाषा में बात करने का नाम भी नहीं लेती। पता नहीं कहाँ से सीख गई है दो-चार टूटे-फूटे अंग्रेज़ी के शब्द।

[मीनाक्षी—कालामणि ऐयर की पत्नी और राधा की माँ—प्रवेश करती हैं।]

मीनाक्षी : ओह! आओ, कमलिनी, बैठो। मैं जरा मिठाई बनाने में व्यस्त थी। शाम को एक-दो लोगों को दावत पर बुलाया है। तुम तो जानती ही हो न…

कमलिनी : नहीं तो—क्या बात है? तुम तो एकाएक आजकल बहुत व्यस्त रहने लगी हो।

मीनाक्षी : क्या करें, काम का भार कुछ ऐसा ही आ पड़ा है। सुब्बू आई. ए. एस. के इम्तहान में चुना गया है। वैसे तो मुझे पहले ही मालूम था कि वह चुना जाएगा। आखिर राजा नटेशराजन का खून थोड़ा बहुत तो उसकी रगों में दौड़ रहा है न। लेकिन अब स्वयं होम मिनिस्टर के पी. ए. ने कहा है कि उन्होंने सुब्बू का नाम लिस्ट में देखा है। यही बात तीन-चार

और अधिकृत लोगों से मालूम हुई है। आज शाम को वे लोग खाने पर आ रहे हैं।

कमलिनी : अच्छा ! यह तो तुमने एक आश्चर्यजनक खबर सुनाई।

मीनाक्षी : इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? यह तो एक तयशुदा बात थी। सुब्बू जैसे होनहार, ईमानदार व्यक्ति आजकल कम ही मिलते हैं। आखिर उसे न चुनते तो फिर किसे चुनते ? उत्तरदायित्वपूर्ण सरकारी काम आखिर हर ऐरा-गैरा तो नहीं कर सकता न !

कमलिनी : (अपनी पुत्री से निगाहें मिलाकर) सो तो है ही। (कुछ सोचकर) मीना, राधा की जन्मपत्री अगर दे सको, तो दे दो। तुम तो जानती ही हो कि मेरे राघव और राधा का एक-दूसरे से कुछ लगाव भी है। जन्मपत्रियाँ मिला ली जाएँ, और अगर सब ठीक रहा, तो शीघ्र ही विवाह सो...

मीनाक्षी : (मुँह बनाकर घड़ी की ओर देखते हुए): सच पूछो तो, कमल, मेरा तो लड़की का अभी विवाह करने का विचार ही नहीं है। अभी उसकी उमर ही क्या है ! मैं चाहती हूँ कि जरा संगीत में भी दक्ष हो जाए, कुछ लोगों में उठना-बैठना भी सीख ले, फिर कोई अच्छा वर मिले, तो विवाह की बात सोची जाए। वैसे तुम जन्मपत्री ले जाना—उसमें हानि ही क्या है !

कमलिनी : तुम्हारी इच्छा, मीना। लेकिन तुम्हारा भी तो विचार था...

मीनाक्षी : था तो लेकिन अब तो परिस्थिति बदल गई है। फिर [illegible] होगी, वैसा ही होगा। अब तुम्हीं सोचो, कमल, [illegible] की स्त्री भारती मिली। कहने लगी—मीना, [illegible] लायक उमर हो गई है, तुम कोई बहू नहीं ढूँढ रही हो [illegible] पत्री मँगाई है। देखा तुमने ? लोग न जाने [illegible] की क्यों कोशिश करते हैं !

कमलिनी : लेकिन भारती की लड़की तो...

मीनाक्षी : कहाँ मेरा सुब्बू, कहाँ चिदम्बर की वह गँवार [illegible] सोचना चाहिए था कि अफसर बनने जा रहा है [illegible] होगा, पार्टियों में जाना होगा। अफसर की [illegible] अफसरों की बीवियों से उसे भी मिलना होगा [illegible] चाहिए। लेकिन नहीं, झट माँग बैठी [illegible] कौड़ी भी तो दहेज नहीं दे सकती—दस हजार [illegible]

कमलिनी : (अपनी पुत्री से आँख मिलाकर) दस हजार !

मीनाक्षी : क्यों नहीं, मेरा सुब्बू किसी अफसर से कम [illegible] कैप्टन वेंकटेश्वरन ऐयर के पुत्र के विवाह [illegible] हजार का दहेज दिया था। यह तो [illegible] गजन के परिवार की कहानी कौन नहीं [illegible] लड़के की शादी दस हजार से कम [illegible]

आखिर उस महान व्यक्ति के नाम पर कलंक तो नहीं लगाना है।

कमलिनी : (उठते हुए) ठीक कहती हो, मीनाक्षीदेवी। अच्छा, अब मैं चलूँ। चलो, बेटी।

[दोनों चली जाती हैं। मीनाक्षी राजा नटेशराजन के फोटो को देखती रहती है। कालामणि का प्रवेश।]

कालामणि : कौन था ? क्या बात थी ? (खाट पर बैठ जाते हैं)

मीनाक्षी : कुछ नहीं, वैसे ही मिलने आयी थी राजेश्वरन की स्त्री। राधा की जन्म-पत्री मांग रही थी। मैंने टाल दिया।

कालामणि : अरे, ऐसा क्यों किया ?

[नागराज और राममूर्ति भी आकर कुरसियों पर बैठ जाते हैं।]

मीनाक्षी : तुम तो हर जगह अपनी कमीनी पैदाइश दर्शाओगे। देखते नहीं, अब कितना फर्क हो गया है ? अब तो लड़की का विवाह भी हैसियत के अनुसार होना चाहिए। कमला का तो जैसे-तैसे विवाह हो गया, लेकिन राधा को भी कुएँ में धकेलना चाहते हो ? और फिर सुब्बू की शान के खिलाफ कोई कार्य नहीं होना चाहिए। राजा नटेशराजन यदि जीवित रहते, तो वह भी ऐसा ही करते।

नागराज : (राजा नटेश के फोटो से) क्यों, राजा साहब ? अरे, जवाब ही नहीं देते ! शायद उनकी शान के खिलाफ है हम जैसों से बोलना। क्यों, माँ? (मुसकराता है।)

कालामणि : (पत्नी से) तू और तेरा राजा नटेश ! हर बात में घसीट लाती है उस बुड्ढे को। बस, बहुत कह चुकी, अब चुप कर ! मैं तो सोच रहा था कि बिना दहेज के ही यह भार गले से उतार दिया जाए, और तूने सारे किए-कराए पर पानी फेर दिया। राजा नटेश ! क्यों नहीं उसके वंशजों ने मेरे साथ तेरा विवाह करते समय अपनी कुलीनता की बात सोची ? खामखाह नाक में दम किए रहती है।

[मीना]क्षी : धन जाए, पर कुलीनता नहीं जा सकती।

[नागर]ाज : बिना धन की शक्ति के कोरी कुलीनता की कोई पूछ नहीं, माँ। आज-कल तो मद्रास के सारे चेट्टी ब्राह्मणों से कहीं ज्यादा शुद्ध और कुलीन हैं।

[मीना]क्षी : चेट्टी ? वे तो शूद्र हैं, नीच हैं।

नागराज : शुतुरमुर्ग की तरह रेत में सिर गड़ाकर चाहे हम इस सत्य को स्वीकार करने से इनकार करें, लेकिन आधुनिक औद्योगीकरण के ज़माने में इन चेट्टियों की पूँजी आपके हिन्दूवाद की ही जड़ काट रही है। अक्लमंद लोग तो मेरी तरह इसी नतीजे पर पहुँचेंगे कि समाज हिन्दुओं (अछूत, ब्राह्मण इत्यादि) का नहीं, मानवों का है, जिसमें कुछ अमीर हैं, बहुत से गरीब हैं।

कालामणि : नास्तिक, कुलद्रोही ! पता नहीं दुनिया के लोगों को क्या होता जा रहा है । लोग धर्म के विरुद्ध भी बोलने लगे हैं । क्या संसार पशुत्व की ओर जा रहा है ?

मीनाक्षी : हाय, इस प्रकार की बातें इस घर में होती हैं, तभी तो इस परिवार का कभी बेड़ा पार नहीं होता । चौबीसों घंटे अधर्म की बातें होती रहती हैं ।

कालामणि : तुम किस से बातें कर रही हो ! ऐसी पापात्माओं का तो बहिष्कार होना चाहिए । ऐसी संतति को जन्म देने के कारण शरम से मेरा सिर झुका जा रहा है. इसीलिए तो मैं कहीं बाहर नहीं जाता ।

मीनाक्षी : ठीक है । नित्य तुम्हें और इन्हें मैं भगवान से यही प्रार्थना करती रहती हूँ कि हे भगवान, किसी तरह इन लफंगों को राह पर लगा दो, तो मेरे हृदय का बोझ कुछ कम हो ।

नागराज : तो फिर भगवान इन्हें ठीक राह पर क्यों नहीं लाते, माँ ?

मीनाक्षी : (तिरमंगल—सोने का मंगलचिह्न जिसे हर विवाहित के लिए पहनना आवश्यक है—हाथ में पकड़कर) लेकिन भगवान की कृपा कभी व्यर्थ नहीं जाती, दुराचारी ! देखा नहीं तुमने—तुम्हारे [illegible] के लिए मेरी प्रार्थना को स्वीकार किया न भगवान ने । तुम तो अपने पिछले जन्म के कर्मों का फल भुगत रहे हो । तुम्हें दाम्पत्य जीवन का सुख [illegible] होगा ।

नागराज : (मुँह बनाकर) हाय, तो क्या मैं दाम्पत्य जीवन का सुख कभी भोग न सकूँगा ?

राममूर्ति : (हँसकर) प्रायश्चित करो, तुम्हारा कल्याण होगा ।

नागराज : माँ, तुम भगवान से प्रार्थना क्यों करती हो ? इस जीवन के बाद स्वर्ग के लिए या इस जीवन में सुख के लिए ?

मीनाक्षी : मुझे स्वर्ग का लोभ नहीं, न ही इस माया-जगत् के ऐश्वर्यों की चाह है । हिंदू नारी भगवान के चरणों में सिर नवाकर शांति प्राप्त करना चाहती है ।

नागराज : उदर-क्षुधा की शान्ति के बिना आत्मिक शान्ति तो मिलती नहीं, माँ । सब पूर्वजन्म का फल भुगत रहे हैं—कोई अमीर है, कोई गरीब ।

मीनाक्षी : वह भी भगवान ही देता है ।

नागराज : क्यों, राममूर्ति, तुम तो अर्थशास्त्र के विद्यार्थी थे, जरा बताना इन्हें कि अमीरी-गरीबी की समस्या तो उत्पादन और वितरण की समस्या है; उत्पादन जितना बढ़ेगा, समाज की सम्पत्ति बढ़ेगी । उसका वितरण न्यायपूर्ण होगा, तो लोगों की खुशहाली बढ़ेगी । (गम्भीर होकर) पूर्व-जन्म के कर्मों का फल और अन्य ऐसी बातें तो आज की अन्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था को न्यायसंगत साबित करने के लिए गढ़ी गई हैं ।

कालामणि : अच्छा-अच्छा, रहने दे अपनी बकवास! बड़ा आया हमें सिखाने!

मीनाक्षी : (कुछ सोचकर, बात बदलते हुए) राघव की माँ को टालकर मैंने ठीक किया। सुब्बू मेरे कार्य की सराहना करेगा—देख लेना।

नागराज : (द्वार की ओर देखकर) लो, राधा आ गई। इसकी भी सुन लो।

[राधा आती है। सत्रहवर्षीय नवयुवती। साँप के समान काली बल खाती हुई चुटिया से खेलती हुई, पतली कमर को लचकाती हुई वह अपनी माँ के पास जाकर खड़ी हो जाती है।]

राधा : क्या है? (आँख के कोनों से नागराज की ओर देखती है।)

नागराज : राघव से विवाह करना है या नहीं?

राधा : शरम नहीं आती? कैसा सवाल पूछते हो!

[राममूर्ति की स्त्री कमला का प्रवेश]

मीनाक्षी : क्यों राधा, राघव फिर कभी आया था क्या?

राधा : कल आया था, माँ। मैंने कह दिया, अब मेरे पास न आया करो। आखिर सुब्बू की इज्ज़त का भी तो खयाल रखना है न, माँ।

मीनाक्षी : तूने बिलकुल ठीक किया, बेटी। देखा, आखिर राधा की नसों में भी मेरा ही खून है। राजा नटेशराजन के वंश की मर्यादा स्त्रियों के हाथों कभी नष्ट नहीं हो सकती।

नागराज : (स्वतः) हृदयहीन नारी, क्या तेरा मूल्य सदा मुट्ठी भर सोना ही रहेगा?

राधा : चुप रहो, नागू! तुम्हें मेरे सम्बन्ध में बोलने का कोई अधिकार नहीं।

नागराज : क्षमा कीजिए, राधादेवी, मुझसे भूल गई। (राममूर्ति से) आओ, मूर्ति, एक बोर्ड और हो जाए।

कमला : शरम आनी चाहिए तुम दोनों को। दिन भर बैठे अपना समय नष्ट करते हो। मेरे ही भाग्य में ऐसा निकम्मा पति बदा था। हाय, जब से शादी हुई तब से आज तक इसने एक भी गहना बनवाकर दिया हो, एक भी सिनेमा दिखाने ले गया हो। थर्ड डिवीजन क्लर्क की नौकरी पर लगा हुआ था, सो भी छूटी। अब इस नालायक नागू के साथ बैठा कैरम खेलता रहता है।

राममूर्ति : (दरी पर बोर्ड रखते हुए) अगर दुनिया में सभी पुरुष सुब्बरायन बन जाएँ, तो औरतें जबान की तलवार किस पर चलाएँगी? बिना इस अस्त्र के चलाए तुम एक क्षण भी तो जीवित नहीं रह सकतीं।

कमला : देखा! ऊपर से बातें बनाता है। हाय, न जाने पूर्वजन्म के किस कुकर्म का फल भुगत रही हूँ।

नागराज : किसी पूर्वजन्म का फल नहीं, कमला। तुम्हारी बेवकूफी सदा तुम्हारे और वास्तविकता के बीच में एक दीवार बनकर खड़ी है। मूर्ति इसलिए नौकरी नहीं कर रहे कि उन्हें नौकरी मिल नहीं रही। और न ही वह एक अकेला व्यक्ति बेकार है। उस-जैसे हज़ारों लोग बैठे हैं लेकिन

तुम लोगों के साथ दिक्कत यह है कि तुम व्यक्तिगत रूप से सोचती हो, यद्यपि समस्या सामूहिक है। तुम तो चाहती हो मेरा पति लखपति हो, मेरा पति अफसर हो। और क्योंकि मध्यवर्ग और निम्न मध्यवर्ग का हर व्यक्ति अफसर नहीं बन सकता, इसलिए तुम अपनी निरर्थक [illegible] पुरुषों के नाकों दम किए रहती हो। (राममूर्ति के साथ [illegible] शुरू कर देता है।)

कमला : तुम अपनी बातें रहने दो, जी। तुम से कौन बोल रहा है। [illegible] हो, तो दूसरों को भी क्यों बिगाड़ते हो ? तुम बातें खूब बनाते हो [illegible] काम धेला भर भी नहीं करते। सुब्बू को देखकर तुम [illegible] नहीं आती ?

राममूर्ति : ओह, ग्रामोफोन के आविष्कार से पहले प्रकृति द्वारा [illegible] पैदा करने वाली मशीन का नाम औरत था।

मीनाक्षी : (घड़ी की ओर देखते हुए) ये लोग तो यों ही [illegible] इन्हें और काम भी क्या है! (कालामणि से) [illegible] आधा सेर वरमेसेल्ली, तीन टिन कंडेंस्ड मिल्क, [illegible] पाव भर काजू ले आइए। आज शाम को [illegible]

कालामणि : क्या जरूरत है ? पहले ही उसके बीस-पच्चीस [illegible]

मीनाक्षी : क्या जरूरत है! हमेशा अपनी कंजूस प्रवृत्ति [illegible] बेटा अफसर बनने जा रहा है और आपको [illegible] जाइए, जल्दी से ले आइए, ताकि मैं [illegible] को इसी खुशी में रायबहादुर त्यागराज [illegible] की पत्नी को चाय पर बुला रही हूँ।

कालामणि : वे क्यों आने लगीं!

नागराज : आएँगी क्यों नहीं, जरूर आएँगी। [illegible] हैं और हमारे पास अफसर [illegible]

कालामणि : अच्छा, मैं जाता हूँ सामान लाने। [illegible] थैला लेकर आते हैं और सामान [illegible]

मीनाक्षी : (राधा से) राधा, तू अब कैप्टन [illegible] से मेलजोल बढ़ा। समझी? [illegible] मिलाप करने की कोई जरूरत नहीं।

राधा : मिलता ही कौन है उनसे, [illegible] तो हो कि कैप्टन चारी [illegible] बढ़ाओ, लेकिन देखा नहीं [illegible] तो शरम आती है उनसे [illegible]

मीनाक्षी : घबरा नहीं, बेटी, अब [illegible] सच ही अपनी हैसियत के [illegible]

कमला : तेरे तो नाजनखरे बढ़ते ही जाते है, राधा । कभी यह चीज चाहिए, तो कभी वह चीज़ । तेरी इच्छाओं का कहीं अंत भी है ?

राधा : जलती क्यों है मुझ से ? तुझे चाहिए नए कपड़े, तो तू भी सिलवा ले । गहने चाहिए तो बनवा ले । अपने पति से कह । मेरी तो अभी शादी नहीं हुई. मैं तो भाई से कहूँगी या माँ से ।

कमला : कैसी बिगड़ी तबीयत की लड़की है ! तुम से कौन जलता है ? (पति की ओर मुड़कर आंखों में आँसू लाते हुए) देखो जी, तुम्हारे ही कारण मुझे यह सब सुनना पड़ता है, सहना पड़ता है । इससे तो यही अच्छा होता अगर मैं पैदा होते ही मर जाती । ठीक है, पति निकम्मा हो, तो घर-वाले ही क्यों, सारी दुनिया ही कोसेगी । इससे बढ़कर एक हिंदू नारी का और क्या अभिशाप हो सकता है ! (रोती हुई अंदर चली जाती है ।)

राममूर्ति : हिन्दू नारियों के लिए पति तो रेत के ओरे के समान है, नागराज । गुस्सा चाहे किसी पर आए, उतरता हमेशा पतिदेव पर है ।

मीनाक्षी : देखो, आज दर्जी ने साढ़े चार बजे आने को कहा था, आया नहीं अभी तक ।

नागराज : आ जाएगा, अभी देर ही क्या हुई है !

राधा : (बाहर झाँककर) सुब्बू आ रहा है, माँ !

नागराज : ओह, अफसर साहब आ रहे हैं ! मूर्ति, तुम तो बिलकुल बेहूदा खेल खेल रहे हो । क्या हो गया तुम्हें ?

[सुब्बरायन का प्रवेश । दुबला-पतला । सफेद पतलून और हलके गुलाबी रंग का कोट पहने हुए है । गले में हरे रंग की टाई है और सिर पर सोला हैट । आँखों पर मोटे काले फ्रेम का चश्मा है । काले चर्म पर श्वेत कण चमक रहे हैं । चेहरे पर चिड़चिड़ाहट झलक रही है । खाट पर बैठ जाता है । टोप उतारकर माथे का पसीना पोंछने लगता है ।]

मीनाक्षी : बहुत थके हुए मालूम देते हो, सुब्बू ! कॉफी लाऊं या चाय पिओगे ?

सुब्बरायन : पहले तो मुझे ठंडा पानी ला दो । गर्मी के मारे दम घुटा जा रहा है ।

नागराज : टाई उतार दो, शायद कुछ आराम मिले ।

सुब्बरायन : जब आपकी राय माँगूं तब दीजिएगा । दर्जी आया था, माँ ?

मीनाक्षी : अभी तो नहीं आया, बेटा । लेकिन आता ही होगा । आज शाम को मिस्टर केशवन और खोसला साहब आ रहे हैं न ? मैंने सब तैयारियाँ कर रखी है ।

सुब्बरायन : जरूर आएंगे । (पानी पीकर) अखबारों में आज शाम को ही इम्तहान का नतीजा छपेगा । माँ, पहले तो मिस्टर केशवन ने ही कहा था कि उन्होंने मेरा नाम लिस्ट में देखा है, लेकिन घर आते समय अभी रास्ते में मुझे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' का एक परिचित उपसंपादक मिला था । उसी ने मुझे बताया कि संध्या के अखबार में चुने गए उम्मीदवारों के

नाम छप रहे हैं और मुझे बधाई देते हुए उसने बताया कि मेरा नाम भी लिस्ट में है।

राधा : बधाई, भाई साहब!

मीनाक्षी : आज कितनी खुशी का दिन है! मंगलवार को सुबह ही हनुमान मंदिर जाकर मैं गरीबों को पाँच रुपए का प्रसाद बाँटूंगी।

सुब्बरायन : (नागराज को घूरकर देखते हुए) मैंने हनुमानजी को एक चाँदी का दीप बनवाने का प्रण किया था, माँ।

नागराज : जाहिर है कि हनुमानजी ने आपकी रिश्वत मंजूर कर ली।

सुब्बरायन : बकवास मत करो! माँ, अभी मेरे मित्र आते होंगे। ऊँचे पदों पर लगे हुए हैं। जरा इस कमरे को उनके बैठने के लायक तो कर दो। (नागराज की ओर देख, भौंह सिकोड़कर) इस वक्त तो यह अफीमचियों का अड्डा बना हुआ है।

[दर्जी का प्रवेश। उसके हाथ में एक मलाई के रंग का सूट है। सुब्बरायन को देखकर सलाम करता है।]

दर्जी : आपका सूट आ गया, बाबू साहब।

सुब्बरायन : (उठकर सूट को लेते हुए) ठीक सिया है न?

दर्जी : हाँ, साहब, बिलकुल ठीक। कच्चा तो आपने ट्राई कर ही लिया था, एक बार और पहनकर देख लीजिए।

मीनाक्षी : ठीक नहीं सिया होगा, तो एक पैसा भी नहीं मिलेगा।

सुब्बरायन : (माँ से अपनी भाषा में) तुम चुप रहो न। मैं कर लूंगा जो कुछ बातें करनी होंगी।

दर्जी : फिक्र न कीजिए, माईजी, बिलकुल ठीक सिया है। इस बार तो हमें इनाम मिलना चाहिए। बाबू साहब की तरक्की जो हुई है।

सुब्बरायन : हाँ-हाँ, इनाम मिलेगा। फिर आ जाना इतवार को।

दर्जी : जो हुक्म, बाबूजी! (चला जाता है।)

सुब्बरायन : (राधा से) इसे ले जाकर मेरे नए बक्स में रख दे। (सूट राधा के हाथ में देते हुए) पिताजी कहाँ हैं?

मीनाक्षी : जरा बाजार गए हैं। अभी आते होंगे।

नागराज : तुम्हारे मित्र कब तशरीफ लाएँगे?

सुब्बरायन : तुम्हें इससे क्या सरोकार? (माँ से) आने ही वाले होंगे, माँ।

राममूर्ति : मेरी बधाई स्वीकार कीजिए, सुब्बरायन साहब।

सुब्बरायन : धन्यवाद। आज सुबह से मैं बधाइयों का जवाब देते-देते थक गया हूँ। लो, पिताजी आ गए।

कालामणि : (अंदर आकर थैला मीनाक्षी के हाथ में देते हुए) ओह, सुब्बू, आ गया दफ्तर से! कहो, क्या खबर है?

सुब्बरायन : आज शाम को अखबार में सूची प्रकाशित होगी ... उनमें।

कालामणि : तुमने एक बहुत बड़ा काम किया है, सुब्बू। तुमने इस परिवार को भुखमरी की हालत से सदा के लिए छुटकारा दिला दिया है। अब हमें पैसे-पैसे के लिए कभी मोहताज न होना पड़ेगा। ईश्वर ही जानता है कि हम किस कठिनाई से इस परिवार की गाड़ी को दिवालियापन के गहरे गर्त में गिरने से बचाने के लिए घसीट रहे थे। ओह, अब मैं आराम से अपने जीवन के अंतिम दिन काट सकूँगा।

नागराज : कोई आ रहा है।

सुब्बरायन : (उठकर बाहर झाँकते हुए) लो, मेरे मित्र आ गए।

[मिस्टर केशवन और खोसला साहब का प्रवेश। खोसला ने सिल्क का सूट पहन रखा है और केशवन ने खद्दर का पाजामा और कुरता। सुब्बरायन दोनों का स्वागत करता है और उन्हें कुरसी पर बैठाता है।]

सुब्बरायन : आइए, आइए, मिस्टर केशवन। बैठिए, खोसला साहब। मैं तो सोच रहा था कि आपके पास शायद वक्त न हो, लेकिन आपने अपना वादा पूरा कर ही दिया।

[मीनाक्षी और राधा अंदर जाती हैं।]

केशवन : ओह, कैसी बातें कर हैं आप! आपके सौभाग्य पर हमें सचमुच खुशी हुई है। हम भला क्यों न आते आपके निमंत्रण पर?

खोसला : ठीक कहा आपने, मिस्टर केशवन। (ऊपर नज़र उठाकर देखता है। कुछ चौंकता है, फिर ध्यान से फोटो को देखने लग जाता है।)

सुब्बरायन : ओह, यह हमारे महान पूर्वज का चित्र है। तिरवल्लूर के बहुत बड़े ज़मींदार थे। राजा नटेशराजन का नाम सारे दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। (परिचय कराते हुए) यह मेरे पिता हैं, यह मेरे भाई, और यह मेरे बहनोई···मिस्टर केशवन और मिस्टर खोसला।

खोसला : राजा नटेशराजन! जरूर वह रोबीले व्यक्ति रहे होंगे। चेहरे से तो ऐसा ही मालूम होता है।

नागराज : कुछ न पूछिए, साहब, इनका दबदबा तो आज तक कायम है।

खोसला : अच्छा!

[राधा प्रवेश करती है। खोसला उसकी ओर देखता है।]

राधा : (साड़ी के छोर से खेलती हुई) चाय लाऊँ, भाई साहब?

सुब्बरायन : हाँ-हाँ, यह भी कोई पूछने की बात है! और इधर आना। (राधा का अपने मित्रों से परिचय कराता है।) यह मेरी बहन राधा···मिस्टर केशवन। मिस्टर खोसला।

राधा : नमस्ते! अच्छा, भाई साहब, मैं चाय लायी।

[राधा अंदर चली जाती है। नागराज मुसकराता है।]

केशवन : मिस्टर सुब्बरायन, आपने शाम का अखबार देखा?

सुब्बरायन : नहीं तो। क्यों?

केशवन : मैं अभी देखकर आया हूँ। कृपया मुझे एक बार और आपको बधाई देने दीजिए। आपका नाम सूची में तीसरा है।

खोसला : मेरी भी बधाई स्वीकार कीजिए, मिस्टर सुब्बरायन।

सुब्बरायन : धन्यवाद, धन्यवाद! मैं अभी जीजाजी से कह रहा था, सुबह से बधाइयाँ स्वीकार करते-करते थक गया हूँ। (हँसता है।)

[केशवन और खोसला भी हँसते हैं। नागराज भी हँसता है और सहसा कालामणि भी हँसने लग जाते हैं। ठहाकों से कमरा गूंज जाता है। सहसा नागराज घड़ी की ओर देखता है और बाहर चला जाता है। राधा चाय लाती है और बनाकर सबको देती है। कुछ देर बाद नागराज हाथ में अखबार लिए आता है।]

राधा : (नागराज के हाथ में प्याला देते हुए) ओह, अखबार आ गया! मैं माँ को बुला लाती हूँ।

[राधा दौड़कर अन्दर जाती है और लौट आती है। मीनाक्षी दरवाजे पर खड़ी होकर उत्सुकता से नागराज की ओर देखती है।]

नागराज : (अखबार देखते हुए चाय की चुसकी लेकर) कम्युनिस्टों ने कैंटन पर कब्जा कर लिया और हांगकांग···

कालामणि : (उत्सुकता से) नतीजा देखो, नतीजा!

नागराज : (सुनी-अनसुनी कर, उसी लहजे में) सोवियत रूस ने एटलांटिक पैक्ट की निंदा···

मीनाक्षी : (चिल्लाकर) अरे, नाम देख!

नागराज : (मुँह बनाकर) ओह, यह रहा आई. ए. एस. का नतीजा। लो, मैं नाम पढ़ता हूँ। केशव गुप्ता, ओमप्रकाश, सुब्बरायन···सुब्बरायन···

मीनाक्षी : जुग-जुग जिओ, बेटा सुब्बू!

[मीनाक्षी दिल पर हाथ रखकर वहीं दहलीज पर बैठ जाती है। खुशी से उसका चेहरा चमक रहा है। राधा खुशी से पागल होकर नाचने लग जाती है। सुब्बरायन के चेहरे पर मुसकराहट है। कालामणि बार-बार सिर मटका-मटकाकर 'वंडरफुल' शब्द को दोहरा रहे हैं।]

कालामणि : वंडरफुल!

राधा : अब तो मिठाई मिलेगी?

कालामणि : वंडरफुल!

सुब्बरायन : (खुश होकर) मुझे तो उम्मीद थी ही···

कालामणि : वंडरफुल!

नागराज : (सबके चेहरों को देखकर, अखबार पढ़ते हुए) पी. एस. सुब्बरायन···

कालामणि : वंडर···एँ?

सुब्बरायन : (कुरसी की बाँह पकड़ते हुए) पी. एस. सुब्बरायन? (चेहरा फक हो जाता है।)

कालामणि : पी. एम. सुब्बरायन ? (माथे पर हाथ मारता है।)

राधा और मीनाक्षी : पी. एस. सुब्बरायन ?

खोसला : क्यों, क्या हुआ ? सब ठीक है न ?

केशवन : हाँ-हाँ, आप ही का नाम तो है ?

सुब्बरायन : (बेजान आवाज में) मैं टी. के. सुब्बरायन हूँ।

केशवन : टी. के. ? मुझे मालूम नहीं था।

खोसला : ओह !

[कुछ क्षणों के लिए मौन छा जाता है, फिर सहसा सब एक साथ बोलना शुरू कर देते हैं। इस खबर से सब इतने द्रवित होते हैं कि केशव और खोसला की ओर कोई ध्यान ही नहीं देता। दोनों धीरे से बाहर निकल जाते हैं।]

कालामणि : हाय, इसी धोखे में ज्ञान स्टोर वाले के यहाँ दस रुपये का और उधार चढ़ गया।

मीनाक्षी : अब मैं क्या करूँ ? दुनिया को कैसे मुँह दिखाऊँ ? दिल्ली के आधे से अधिक मद्रासियों को बता चुकी हूँ। अब उनका कैसे सामना करूँ ? हाय ! (सिसकने लगती है।)

राधा : राघव ! हाय, राघव !

सुब्बरायन : पी. एस. ! पी. एस. ! प्रूफ की गलती तो नहीं है ? किसी ने मेरे खिलाफ साजिश तो नहीं की ? मैं···(हताश होकर चुप हो जाता है और टक-टकी बाँधकर अखबार की ओर देखता है।)

नागराज : (कुछ देर सबको देखता रहता है, मुसकराता है, गंभीर होकर सिर हिलाता है, फिर मुसकराता है।) तो फिर कल से वही पुराना ढर्रा ! और जहाँ तक दुनिया को मुंह दिखाने का सवाल है—अरे, हम झक मारकर मुंह दिखाएंगे। दुनिया हमारे चेहरे को देखकर नहीं चलती। हाँ, हम बेशक दुनिया के चेहरे के मेकअप को देखकर चलने के आदी हो गए हैं। अरे, ये ट्रैजेडीज तो हमारे जीवन में रोज़ाना घटती रहती हैं। थोड़ा बहुत रो-पीट लो; कल से फिर कोल्हू में जुत जाना। (राजा नटेशराजन के फोटो को देखकर) क्या देख रहे हो घूर-घूरकर ? तुम्हारी किस्मत में नया फ्रेम नहीं बदा था, कंगालों के राजा नटेशराजन !

२०

पर्दा उठने से पहले

राजेन्द्रकुमार शर्मा

श्री राजेन्द्रकुमार शर्मा का जन्म सन् १६२१ में जालन्धर में हुआ था। एक सुलझे हुए नाटककार होने के साथ-साथ आप कुशल निर्देशक और मंजे हुए अभिनेता भी हैं। आपके नाटक और एकांकी प्रायः अभिनीत होते रहते हैं। आपके प्रायः सभी एकांकी-नाटक कई-कई बार आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित हो चुके हैं। टेलीविजन पर भी आपके कई नाटक प्रदर्शित हो चुके हैं जिनमें आपने स्वयं भी अभिनय किया था। हास्य-व्यंग्यपूर्ण रचनाएं लिखने में आप सिद्धहस्त हैं।

आजकल प्रतिरक्षा-मन्त्रालय से संबद्ध हैं।

रचनाएं

'अटैची केस', 'रेत की दीवार', 'प[illegible]
'कालिख और लाली', 'अपनी कमाई' [illegible]

पात्र

अनिल : एक नाटककार और निर्देशक
शीला : अनिल की पत्नी
धनीराम : एक सेठ का मुंशी
मक्खनलाल : अनिल का बातूनी पड़ोसी
मुन्नू : अनिल का पुत्र
पिंडीदास, सुब्रामनियम : अनिल के पड़ोसी
वीना : अनिल के नाटक की नायिका

मध्यम वर्ग की एक बैठक। निर्देशक की सूझ-बूझ और नाटक खेलने वाली संस्था की आर्थिक स्थिति के अनुसार सजाई जा सकती है। बैठक में रेडियो, बुकशेल्फ और अन्य सजावट की वस्तुओं के अतिरिक्त अंगीठी पर एक टाइम-पीस भी रखा है। दीवार पर भगवान् कृष्ण या किसी और देवता का चित्र टंगा हुआ है। पर्दा उठने पर शीला एक कुर्सी पर बैठी हुई स्वेटर बुनती दिखाई पड़ती है।

पर्दा उठने के बाद नेपथ्य से आठ बजने की आवाज आती है। शीला स्वेटर बुनना बन्द कर देती है।

शीला : सुबह आठ बजे के निकले हैं, रात के आठ बजने को आए। इनकी बला से कोई मरे या जिए! (उठकर घड़ी में चाबी देते हुए) न अपना होश, न किसी दूसरे की खबर! बस, रात-दिन रिहर्सल-रिहर्सल! भगवान् न करे किसी के पति को नाटकबाजी की लत हो! (चौंककर) हाय राम! लगता है दाल लग गई।

[शीला अन्दर चली जाती है। दूसरे दरवाजे से अनिल धीरे-धीरे हाथ में जूते लिए हुए इधर-उधर देखता हुआ प्रवेश करता है। एक बार अन्दर के दरवाजे की तरफ झाँककर देखता है और फिर भगवान् के चित्र के सामने खड़ा हो जाता है।]

अनिल : हे भगवान्! तुम तो अन्तर्यामी हो। तुम्हें तो पता लग गया होगा कि परसों मेरा नाटक है और आज हीरोइन ने जवाब दे दिया है। अब क्या करूँ? इस बार तो किसी तरह लाज रख लो, प्रभु! आगे कभी नाटक नहीं करूँगा, कभी नहीं करूँगा। (कान को हाथ लगाने लगता है पर अचानक यह देखकर कि उसके हाथ में जूते हैं, क्रोध से जूते फेंक देता है।) क्षमा करना, भगवान्।

शीला : (जूते पटकने की आवाज सुनकर अन्दर से ही) सत्यानाश हो इस बिल्ली का! जरा दरवाजा खुला रह गया और झट अन्दर!

[शीला की आवाज सुनकर अनिल बाहर दौड़ जाता है। शीला हाथ में बेलन लिये हुए आती है।]

शीला : (इधर-उधर बिल्ली को ढूँढते हुए) निकल बाहर!

अनिल : (डरते हुए दरवाजे पर खड़े होकर) इजाजत हो तो रात यहीं काट लूँ। सुबह फिर निकल जाऊँगा।

शीला : (संभलकर) ओह, आप! (फिर तुनककर) ठीक तो है। पर जो आप रात

काटने ही आते हैं। आपने तो घर को सराय समझ रखा है, सराय !

अनिल : तुम तो बस यूँ ही नाराज हो जाती हो। कभी यह भी पूछा है कि मैं किस मुसीबत में हूँ ! क्यों देर हो गई ?

शीला : तुम्हारे लिए घर पर रहना सबसे बड़ी मुसीबत है। बाहर तो मौज रहती है, मौज !

अनिल : रिहर्सल करने को तुम मौज कहती हो ?

शीला : रिहर्सल ! रिहर्सल ! तुम पर तो चौबीसों घंटे रिहर्सल का ही भूत सवार रहता है।

अनिल : रिहर्सल पर ही नाटक की सफलता निर्भर है, शीला, तुम नहीं जानती...

शीला : (बीच में) मैं जानना भी नहीं चाहती। पर तुम कान खोलकर सुन लो, कल से दफ्तर के बाद सीधे घर आना होगा, नहीं तो मुझे मेरे मैके भेज दो, पीछे सारे दिन रिहर्सल किया करना। मैं पूछती हूँ नाटक का इतना ही शौक था तो शादी क्यों की थी ?

[अनिल एकदम ज़ोर से खाँसता है और फिर पानी माँगता है। शीला जल्दी से पानी लेकर आती है।]

शीला : लो, पानी पी लो।

अनिल : (पानी पीता है।) हे भगवान् !

शीला : कैसी तबीयत है अब ?

अनिल : (हँसकर) मेरी तबीयत तो ठीक है, पर तुम्हारा पारा कुछ उतरा कि नहीं !

शीला : (बिगड़कर) ओह ! तो क्या यह खाँसने की रिहर्सल कर रहे थे !

अनिल : यह तो तुम्हारा गुस्सा उतारने की एक खुराक थी।

शीला : अच्छा, यह बहानेबाजी छोड़ो और...

अनिल : तुम्हें हमारे प्यार पर गुस्सा आता है और हमें तुम्हारे गुस्से पर प्यार...

शीला : मुझे तो तुम्हारी रिहर्सल पर गुस्सा आता है।

अनिल : (शरारत-भरे स्वर में) और प्यार किस बात पर आता है !

शीला : (लजाकर) तुम्हें तो हर वक्त मजाक सूझता है !

अनिल : तो फिर इसका कोई समय नियत कर लो।

शीला : तुम्हे तो बातें बनानी आती हैं ! यहाँ इन्तजार करते-करते जान निकल जाती है।

अनिल : (अपने स्वर को और मीठा बनाते हुए) शीला, तुम कितनी अच्छी हो ! मैंने पिछले जन्म में न जाने कौन-से पुण्य किए थे जो तुम-जैसी पत्नी मिली। तुम-जैसी सुन्दर, सुशील और सुघड़ स्त्री तो बड़े भाग्य से मिलती है।

[शीला जाने लगती है।]

अनिल : (चौंककर) अरे, सुनो तो ! कहाँ चल दीं ?

शीला : तुम अपने ड्रामे का पार्ट याद करो। मुझे और बहुत काम हैं।

अनिल : शीला, सच मानो, मैं यह नाटक नहीं कर रहा। मैं यह तुम्हारे लिए कह रहा हूँ। सचमुच तुम कितनी समझदार हो !

शीला : सुबह तो कह रहे थे कि किस मूर्ख से पाला पड़ा है ?

अनिल : यह तो मेरी मूर्खता थी। मैं सचमुच बेवकूफ हूँ, , जाहिल हूँ, नालायक हूँ और···

शीला : बस, इतना ही बहुत है। यह रही कलम-दवात, आज इतना ही लिख दो, नहीं तो भूल जाओगे।

अनिल : मैं मजाक नहीं कर रहा।

शीला : अच्छा, अब बातें न बनाओ। कपड़े बदलकर खाना खा लो।

अनिल : मैं तो भगवान् को और तुम्हारे पिताजी को रात-दिन मन-ही-मन धन्यवाद दिया करता हूँ जिन्होंने तुम-जैसी साक्षात् लक्ष्मी···

शीला : (बीच में टोकते हुए) मैं सब समझती हूँ। मैं कहे देती हूँ तुम्हारे नाटक-बाटक खेलने के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं। मैं कहती हूँ अगर तुम्हारे नाटक का खर्च टिकटों से पूरा नहीं होता तो क्या डॉक्टर ने बताया है कि नाटक खेलो।

अनिल : मुझे तुम्हारे पैसे बिलकुल नहीं चाहिए। मैं सच कहता हूँ अगर यह नाटक खेला गया, तो लोगों को टिकट नहीं मिलेगी।

शीला : हाय राम, तो क्या सबको मुफ्त दिखाओगे ?

अनिल : मेरा मतलब है···

शीला : हाँ, एक बात और सुन लो, मुझे नाटक में तुम्हारा लड़कियों के कन्धे पकड़ना और उन्हें हाथ पकड़कर बाहर ले जाना बिलकुल पसन्द नहीं !

अनिल : तुम तो बहुत नैरो माइंडेड हो ! वह मेरी पत्नी है।

शीला : (क्रोध से) क्या कहा ? तो मैं क्या तुम्हारी···

अनिल : (घबराकर) मेरा मतलब है···वह नाटक में मेरी पत्नी है। हमें रंगमंच पर ऐसा अभिनय करना पड़ता है कि लोग समझने लगें हम सचमुच में मियाँ-बीवी हैं।

शीला : लोग समझें या न समझें, पर तुम समझ लो, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

अनिल : और जो तुम्हें पसन्द नहीं वह मुझे पसन्द नहीं। अब मेरे नाटक की नायिका बीना नहीं है।

शीला : तो कोई और उसकी बहन नीना मिल गई होगी। पर मैं तो हैरान हूँ कि ये लड़कियाँ नकली बीवी बनने को कैसे तैयार हो जाती हैं।

अनिल : अभिनय एक कला है, शीला।

शीला : मैं सब समझती हूँ। इन नकली बीवियों से तो तुम लोग गालियाँ भी सुन लेते हो, थप्पड़ भी खा लेते हो। पिछले नाटक में तुम्हारे कितने ज़ोर का थप्पड़ मारा था उसने !

अनिल : वह तो नाटक का एक सीन था।

शीला : कितनी रिहर्सल की थी उस सीन की ?

अनिल : बीस।

शीला : तो बीस चांटे लगाए थे उसने !

अनिल : (जरा झेंपकर, बात टालते हुए) अच्छा, यह बहस छोड़ो। मैंने तो आज से निर्णय कर लिया है कि मेरे नाटक की नायिका तुम होगी।

शीला : मैं !

अनिल : हाँ, तुम !

शीला : मुझसे यह नाच-गाना नहीं होगा।

अनिल : तुम्हें न नाचना है, न गाना। केवल एक्टिंग करनी होगी।

शीला : तुम्हारा दिमाग़ तो खराब नहीं हो गया है !

अनिल : खराब नहीं, ठीक हो गया है। जानती हो ये हीरोइन कितने नखरे दिखाती हैं ! परसों मेरा नाटक 'अधूरा नाटक' खेला जाने वाला है और आज बीना रिहर्सल में नहीं आयी।

शीला : मैं कहती हूँ इन नाटकों के चक्कर में मत पड़ो।

अनिल : क्या तुम नहीं चाहतीं कि दुनिया में मेरा नाम हो ! यदि मेरा यह 'अधूरा नाटक' सफल हो गया तो रास्ते-चलते लोग इशारा किया करेंगे कि वह जा रहा है 'अधूरा नाटक' का लेखक और निर्देशक। मेरे साथ तुम्हारी फोटो भी अखबारों में छपेगी और उसके नीचे लिखा होगा—'नाटक के लेखक और उनकी पत्नी'।

शीला : मुझसे यह न होगा।

अनिल : ऐसा न कहो। टिकट बिक चुके हैं। लोगों को निमंत्रण भेजा जा चुका है।

शीला : तो उसे मना लो जाकर। उसके हाथ जोड़ो, पाँव पड़ो !

अनिल : मुझसे यह न होगा। मैं सोचता हूँ उनकी क्यों खुशामद करूँ। तुम किससे कम हो ! तुम मेरा साथ दो तो मुझे किसी की परवाह नहीं।

शीला : मुझसे उस जैसी एक्टिंग न होगी।

अनिल : वह एक्टिंग क्या खाक करती है ! जब गुस्से में ज़ोर से चीखती है तो ऐसा लगता है कि इंजन की सीटी बज रही हो और जब धीरे बोलती है तो ऐसा लगता है मानो ग्रामोफोन की चाबी खत्म हो गई हो।

शीला : पहले तो बड़ी तारीफ करते थे !

अनिल : अपने मुँह से अपने नाटक की हीरोइन की कौन बुराई करता है। (खुशामद करते हुए) देखो शीला, बहुत थोड़ा समय है। परसों नाटक है। हमें रात-दिन रिहर्सल करनी पड़ेगी। मुझे विश्वास है कि तुम उससे अच्छा अभिनय कर लोगी। तुम यों भी उससे कहीं अधिक सुन्दर हो। तुम्हारी आम की फाँक की तरह आँखें, सेब की तरह गाल, चीकू की तरह नाक, टमाटर-से

लाल होंठ, नारियल की तरह घने बाल और···और···

शीला : भूल गए अपना पार्ट ! (हँसी) तुम्हें तो अपना डॉयलाग भी याद नहीं है।

अनिल : (झेंपकर) ओफ ! मैं अपना पार्ट नहीं याद कर रहा बल्कि तुमसे सच कह रहा हूँ। सचमुच तुम्हारी आम की फाँक की तरह आँखें, सेब की तरह···

शीला : (हँसते हुए) तुम्हारा मतलब है मैं फलों की टोकरी हूँ !

अनिल : मैं मज़ाक नहीं कर रहा। विश्वास न हो तो शीशा देख लो।

शीला : तीस दिन हो गए हैं शीशा टूटे। तुमसे कितनी बार कहा···

अनिल : खैर, छोड़ो। इस समय तो तुम मुझ पर ही विश्वास करो। शीला, तुम सचमुच हीरोइन बनने के योग्य हो। वीना तो वैसे भी स्टेज पर जँचती नहीं। उसके धँसे हुए गाल, पतली नाक और मोटे होंठों ने तो उसे पूरा कारटून बना दिया है।

शीला : पर तुम्हारे इश्तिहार उसे सौन्दर्य की मूर्ति, संगीत की देवी और नृत्य की रानी कहते हैं !

[दरवाज़े पर दस्तक]

अनिल : यह बेवक्त न जाने कौन आ टपका !

शीला : अखबारवाला लगता है। सुबह भी अपने पैसे लेने आया था।

अनिल : तुम इससे कह दो कि अब के सरकारी नोटों की जगह हमारे ड्रामे के टिकट ले ले।

[धनीराम दरवाज़ा खटखटाता है।]

धनीराम : अनिल बाबू !

अनिल : यह तो कोई और लगता है। मैं अन्दर जाता हूँ, तुम कह दो कि मैं घर में नहीं हूँ।

[शीला दरवाज़ा खोलती है।]

धनीराम : नमस्ते, बहनजी।

शीला : नमस्ते।

धनीराम : (अन्दर आकर) अनिल बाबू घर पर हैं ?

शीला : जी नहीं, वह तो···

धनीराम : क्षमा कीजिएगा। क्या अनिल बाबू, जो प्रसिद्ध [illegible] हैं ?

शीला : जी हाँ, रहते तो यहीं हैं पर···

धनीराम : (जैसे बिना सुने ही) वह तो महान कलाकार हैं [illegible] था। कब तक लौटेंगे ?

अनिल : मैं भई आ गया। आइए, आइए।

[शीला अन्दर [illegible]

धनीराम : आपके नाटकों का जवाब नहीं [illegible]

अनिल : (खुश होकर) आपने मेरा [illegible]

धनीराम : नहीं साहब, भला मैं नाटक कैसे देख सकता था। आपने पास तो भिजवाया ही नहीं था।

अनिल : आप कहां से तशरीफ ला रहे हैं?

धनीराम : मैं सेठ गरीबदास का मुंशी धनीराम हूँ।

अनिल : सेठ गरीबदास?

धनीराम : जी हां, परसों आपने उनसे एक कालीन और सोफा-सेट ड्रामे के हॉल में भिजवाने के लिए कहा था न?

अनिल : जी हॉं।

धनीराम : (घिघियाते हुए) ये चीजें ठीक वक्त पर पहुँच जाएँगी। सेठ साहब को तो नाटक का शौक नहीं है पर सेठानी को रामलीला और नौटंकी बहुत पसन्द है। उन्होंने दस पास मंगवाए हैं। और साहब हम तो आपका नाटक जरूर देखेंगे और बच्चों को भी दिखाएँगे। पाँच पास मुझे दे दीजिए, सेठजी ने सोफा-सेट और कालीन पहुँचाने का काम मुझे ही सौंपा है।

अनिल : आप सोफा-सेट और कालीन मत भिजवाइएगा। अब जरूरत नहीं है।

धनीराम : (आश्चर्य से) क्या नाटक नहीं खेला जाएगा?

अनिल : नहीं।

धनीराम : मगर साहब, टिकट बिक चुके हैं, उनका क्या होगा? क्या आप पैसे वापस करेंगे?

अनिल : जी हॉं, पैसे वापस कर दूंगा।

धनीराम : (घबराकर) खैर, टिकटवालों को तो आप पैसे वापस देकर शान्त कर देंगे पर आपने पासवालों के बारे में भी सोचा है, उनका क्या होगा?

अनिल : वे सब फेल हो जाएंगे।

धनीराम : (निराश स्वर में) जी···अच्छा, नमस्कार! (जाता है)।

अनिल : पास! पास! पास! एक सोफा-सेट के बदले पन्द्रह पास!

शीला : (तौलिए से हाथ पोछती हुई आती है।) मैंने तो उसे कह दिया था कि घर पर नहीं हो। पर जब उसने महान् कलाकार कहा तो फौरन बाहर निकल आए!

अनिल : देखो शीला, अगर मेरा नाटक न हुआ तो टिकटवाले पैसे वापस मांगेंगे, पासवाले मजाक उड़ाएंगे, दुनिया हँसेगी···

शीला : पर मैंने तो कभी नाटक में पार्ट नहीं किया।

अनिल : उसकी तुम चिन्ता न करो। पिछले साल वह शर्मा का नाटक था··· क्या नाम था उसका, हाँ···'हम सब एक हैं'···उसकी हीरोइन ने तीन दिन पहले जवाब दे दिया। उसे तो चक्कर आने लगे। बेहोश हो गया। पर उसकी बीवी ने कहा—'तुम चिन्ता न करो। मैं नाटक में पार्ट करूंगी।' उसने रात-दिन एक कर दिया और ऐसा अच्छा अभि-

नय किया कि कमाल कर दिया। अखबारों ने मियाँ-बीवी की तारीफ के पुल बाँध दिए।

शीला : अच्छा बाबा, मुझे क्या है! तुम सिखा दो, जैसा मुझसे होगा कर दूँगी।

अनिल : (खुशी से उछल पड़ता है।) शाबाश! थैंक यू, शीला, थैंक यू! तुम कितनी अच्छी हो! आओ, रिहर्सल शुरू करें। तुम्हारा एक आधुनिक फैशनेबुल लड़की का पार्ट है।

शीला : (सोचते हुए) फैशनेबुल लड़की के पार्ट के लिए तो कोई अच्छी साड़ी चाहिए। तुमसे कितनी बार कहा है कि एक साड़ी ला दो पर तुम सुनते ही नहीं।

अनिल : मिसेज वर्मा से साड़ी माँग लेना।

शीला : मैं नहीं माँगूंगी।

अनिल : तो फिर मैं किसी से माँग लाऊँगा!

शीला : मैं किसी की उतरन नहीं पहनूंगी।

अनिल : मैं नई ला दूंगा।

शीला : (खुशी से) तो चलो, पहले साड़ी ले आएँ। फिर आकर रिहर्सल करेंगे।

अनिल : (समझाते हुए) शीला, समय बहुत कम है। रिहर्सल शुरू कर दो। साड़ी कल ले आएँगे।

शीला : और हाँ, टॉप्स का टाँका भी टूटा हुआ है, उसे भी बनवा लाना।

अनिल : मैं यह सब कर दूंगा। अब तुम बाहर की कुण्डी लगा लो, कोई आ न जाए। नाटक तो तुमने पढ़ा है न?

शीला : एक बार पढ़ा तो था।

अनिल : तो बस ठीक है। तुम रेखा का पार्ट कर रही हो। (शीला के हाथ में पुस्तक देते हुए) लो, यहाँ से शुरू करो। हाँ-हाँ, शाबाश···बोलो···

शीला : (डरते हुए) 'रवि, मैं तो तुम्हें अपना हृदय सौंप चुकी हूँ। इसे कहीं खो न देना।'

अनिल : शाबाश! जरा जोर से और दिल पर हाथ रखकर।

शीला : 'मैं तो तुम्हें अपना हृदय सौंप चुकी हूँ।' (अपना हाथ दायीं ओर छाती पर रखती है।)

अनिल : ऊँ हूँ! दिल दायीं तरफ नहीं होता। बायीं तरफ हाथ रखकर कहो।

शीला : जब दिल दे ही दिया तो न दायीं तरफ रहा, न बायीं तरफ!

अनिल : अच्छा, छोड़ो। आगे पढ़ो।

शीला : (पढ़ते हुए) 'क्या मैं भी तुमसे कुछ पूछ सकती हूँ?'

अनिल : 'पूछो।'

शीला : (उस तरह अध्यापक विद्यार्थी से प्रश्न पूछता है) 'क्या तुम मुझे सच-मुच प्रेम करते हो ?'

अनिल : यह तो तुम इस तरह कह रही हो जैसे दस का नोट देकर मुझसे हिसाब माँगता हो।

शीला : तो तुम्हीं बोलकर दिखाओ।

अनिल : (अभिनय करते हुए) 'क्या तुम मुझे सचमुच प्रेम करते हो ?' मेरा मतलब है जरा शरमाकर, लजाकर, गरदन उठाकर, नजरें झुकाकर।

शीला : (चिढ़कर) मुझसे नहीं होता। (पुस्तक फेंक देती है।)

अनिल : (मनाते हुए) नहीं-नहीं, मेरा मतलब है तुम बिलकुल ठीक कर रही हो। अच्छा आगे चलते हैं। (अभिनय) 'रेखा, तुम मेरा जीवन हो, प्राण हो, आत्मा हो। मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता। जिस तरह आइसक्रीम रेफ्रिजरेटर के बाहर नहीं रह सकती उसी तरह मैं तुमसे अलग होकर नहीं जी सकता।'

शीला : तभी तो सारा दिन घर से बाहर रहते हो !

अनिल : मजाक छोड़ो। तो मैं कह रहा था कि मैं तुमसे अलग होकर नहीं जी सकता। (अभिनय करते हुए) 'रेखा, मैं तुम्हारे लिए आकाश के तारे तोड़ सकता हूँ, समुद्र में छलांग मार सकता हूँ, एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ सकता हूँ...' (शीला जोर से हँसती है।) हँसो नहीं।

शीला : (हँसते हुए) सामने वाले नीम के पेड़ से दो दातुन तो तोड़ नहीं सकते और शेखी मार रहे हो कि एवरेस्ट की चोटी पर चढ़ सकता हूँ।

अनिल : मेरी जान पर बनी है और तुम्हें मजाक सूझ रहा है !

शीला : बुरे दिन आएं तुम्हारे दुश्मनों के ! अच्छा, आगे बोलो।

अनिल : (अभिनय करते हुए) 'रेखा, जी चाहता है कि हम-तुम ऐसी जगह चलें जहाँ कोई न हो...' (दरवाजे पर दस्तक होती है।) अब यह कौन आ टपका ? मैं देखता हूँ कौन है। (दरवाजा खोलता है।)

मक्खनलाल : (प्रवेश करते हुए) अरे भई, मैं हूँ मक्खनलाल। जै रामजी की !

अनिल : जै रामजी की। कहिए, क्या हुक्म है ?

मक्खनलाल : हुक्म-वुक्म क्या, बात यह है कि इधर आए कई दिन हो गए थे। मैंने सोचा कि कहीं आप यह न समझें कि मैं आपसे नाराज-वाराज हो गया हूँ।

अनिल : यह आप क्या कह रहे हैं ! आप निश्चिन्त रहिए, अगर आप छः महीने भी न आएं तो भी हम यह नहीं सोच सकते।

मक्खनलाल : भई, हमें तो तुमसे मिले बिना चैन ही नहीं पड़ती। क्या बताऊँ, इन दिनों कुछ फुर्सत-वुर्सत ही नहीं मिली। बात यह थी कि...

अनिल : (टालते हुए) कोई बात नहीं, आजकल काम से किसे फुर्सत मिलती है।

मक्खनलाल : काम-वाम तो ऐसा ही था। बात यह थी कि मेरी मौसी का लड़का···

अनिल : (बात काटकर) आप ठीक कहते हैं, आजकल मेहमानों के मारे नाक में दम है।

मक्खनलाल : नहीं भई, मेहमान-वेहवान को तो हम सिर पर बिठाते हैं। भागवान के घर ही मेहमान आते हैं। जरा माचिस तो देना। (अनिल जेब से दियासलाई निकालकर देता है।) हाँ, तो मैं कह रहा था···लो, मैं तो सिगरेट की डिब्बी ही भूल आया।

अनिल : जी, सिगरेट !

मक्खनलाल : आप बैठे रहो, मैं ले लेता हूँ।

[मक्खनलाल सिगरेट का पैकेट उठाने के लिए मेज की तरफ जाता है।]

अनिल : (स्वगत) यह तो चिपक ही गया। जाने का नाम ही नहीं लेता।

मक्खनलाल : लो, भूल गया। मैं क्या कह रहा था ?

अनिल : (क्रोध दबाते हुए) आप कह रहे थे कि आपको कहीं जरूरी काम से जाना है।

मक्खनलाल : (बेफिक्री से) काम-धन्धे तो दुनिया में लगे ही रहते हैं। आज तो मैंने सारे जरूरी काम-वाम एक तरफ रख दिए। बस, आपसे मिलने-विलने का ही परोगराम बनाया है। (बड़े इतमीनान से कुर्सी पर बैठ जाता है।)

अनिल : बड़ी कृपा की आपने, लेकिन···

मक्खनलाल : हाँ तो, मैं कह रहा था कि इन दिनों मेरी तबीयत-वबीयत ठीक नहीं रही। बात यह थी कि···

अनिल : अब कैसी तबीयत है आपकी ?

मक्खनलाल : ठीक है। पर पाँच-छः दिन जुकाम-वुकाम हो गया था। छींकें-वींकें आने लगी थीं।

अनिल : अब तो ठीक हैं न आप ?

मक्खनलाल : अजी, मैंने भी परवा-वरवा नहीं की। बस, जुशांदा पिया और अपने काम में जुटा रहा। जुशांदा भी क्या, बस दो-चार तुलसी-वुलसी के पत्ते लिए, तीन-चार काली-वाली मिर्च लीं और···

अनिल : मतलब यह कि जुकाम ठीक हो गया।

मक्खनलाल : मैं तो अपनी देसी-वेसी दवाइयों का ही परयोग करता हूँ। इन डॉक्टरों के पास सिवाय टीके-वीके और सुलफादीन की गोलियों के और है ही क्या !

अनिल : सुलफादीन ! आपका मतलब शायद सल्फा डायजीन की गोलियों से है···?

मक्खनलाल : हाँ, कुछ ऐसा-वैसा ही नाम है।

[दोनों चुप हो जाते हैं।]

मक्खनलाल : और क्या खबरें-वबरें हैं, अनिल बाबू ?

अनिल : कोई खास बात नहीं। बात यह है कि मैंने एक हफ्ते से अखबार ही

नहीं पड़ा।

मक्खनलाल : तो कोई अपने दफ्तर-वफ्तर की खबर सुनाओ।

अनिल : सब ठीक-ठाक है।

मक्खनलाल : क्या बात है अनिल बाबू, तबीयत-वबीयत तो ठीक है ? कुछ उदास लग रहे हो।

अनिल : सब आपकी कृपा है।

मक्खनलाल : वह आपका नाटक-वाटक कब हो रहा है ?

अनिल : परसों।

मक्खनलाल : लो, परसों के एक सिनेमा के पास मिल रहे हैं। पर भैया, हम तो तुम्हारा खेल देखेंगे। सिनेमा-विनेमा तो रोज़ ही देखते हैं। दो-चार पास-वास भिजवा देना।

अनिल : पास तो मैं आपके घर ही भिजवा देता, आपने बेकार कष्ट किया।

मक्खनलाल : कष्ट-वष्ट क्या ! यह तो अपना घर है। अपनी बिजली फ्यूज हो गई थी। मैंने सोचा, दो-तीन घंटे अनिल बाबू के यहाँ ही आराम-वाराम करेंगे। (कुर्सी में और धँस जाता है।)

अनिल : दो-तीन घंटे ! (ज़हर का-सा घूँट पीते हुए) पर हम लोग तो जरा बाहर जा रहे हैं।

मक्खनलाल : अब रात-वात को कहाँ जाओगे ?

अनिल : कुछ जरूरी काम है।

मक्खनलाल : ऐसा भी क्या जरूरी काम-वाम है ! बैठो, यहीं गपशप लगाते हैं।

अनिल : हम लोगों का एक दोस्त के यहाँ खाना है।

मक्खनलाल : तब तो घंटे-दो घंटे में लौट आओगे। मैं यहीं बैठता हूँ।

अनिल : असल में हम लोगों को एक शादी में जाना है। रात को वहीं रहेंगे।

मक्खनलाल : तब तो भई फिर चलते हैं। देखूं शायद मोहनलाल घर आ गये हों। हाँ, पास जरूर भिजवा देना; नहीं तो मैं कल-वल खुद ही ले जाऊँगा।

अनिल : आप कष्ट न कीजियेगा। मैं भिजवा दूंगा।

मक्खनलाल : अच्छा तो दस पास भिजवा देना। चिन्ता-विन्ता न करना, कोई पास बेकार नहीं जायेगा और एक-आध बच भी गया तो अगले दिन वापस हो जायेगा। (जाता है।)

अनिल : हे भगवान ! मुश्किल से बला टली है। यह लोग न खुद कोई काम करते हैं और न किसी को करने देते हैं। (पुकारकर) शीला ! शीला !

शीला : (अन्दर से) अभी आयी।

अनिल : शीला, हमें एक मिनट व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। लो, मैं शुरू करता हूँ। (अभिनय करते हुए) 'शीला, जब तुम···सौरी, शीला नहीं, रेखा ! हाँ, रेखा, जब तुम मेरे पास होती हो तो मुझे स्वर्ग मिल जाता है, मानो ···मानो···'

[तभी दूर से बिल्ली की म्याऊँ-म्याऊँ की आवाज आती है ।]

शीला : रसोई में बिल्ली घुस गई है । मैं अभी भगाकर आयी । (तेजी से रसोई की तरफ जाती है ।)

अनिल : ओह ! मुझे भी अपना पार्ट याद नहीं । (याद करते हुए) हाँ, मानो अतृप्त होंठों को अमृत मिल गया हो । (अभिनय करते हुए) 'जब मैं तुम्हारे पास होता हूँ तो मैं इस दुनिया में नहीं होता । मुझे···'

शीला : भाड़ में जाय तुम्हारी रिहर्सल ! ऐसी अशुभ बातें मुँह से न निकालो ।

अनिल : शीला, तुम समझती क्यों नहीं ! यह नाटक है, नाटक ! लो, यहाँ से पढ़ो तुम ।

शीला : (पढ़ते हुए) 'मैं क्या जानूँ तुम मेरे कौन हो ! पर हाँ, जब तुम मेरे पास नहीं होते तो ऐसा लगता है जैसे मेरी दुनिया आबाद हो गई हो···'

अनिल : ओह ! आबाद नहीं, बरबाद हो गई हो । फिर से बोलो ।

शीला : (बहुत तेजी से बोलती है ।) 'जब तुम चले जाते हो, तो ऐसा लगता है कि मेरी दुनिया बरबाद हो गई हो ।'

अनिल : ऊँह ! मजा नहीं आया । जरा एक्टिंग करके । देखो, पहले सिचूएशन समझ लो । (समझाते हुए) थोड़ी देर के लिए मान लो कि तुम मुझसे प्रेम करती हो और तुम्हारे पिताजी यह नहीं चाहते कि तुम्हारी शादी मुझसे हो ।

शीला : वह कब चाहते थे ! वह तो मामाजी ने···

अनिल : शीला, जरा भावुक बनो । भूल जाओ कि हम-तुम पति-पत्नी हैं । भूल जाओ कि हमारी शादी हो चुकी है ।

[तभी बाहर से मुन्नू पीपनी बजाता हुआ आता है ।]

मुन्नू : ममी ! ममी ! (पीपनी बजाता है ।)

शीला : लो, इसे म्यूजिक डायरेक्टर बना लो ।

अनिल : (क्रोध से) शीला, तुम्हें क्या हो गया है ?

शीला : इतनी देर तक बाहर नहीं खेलते, बेटे ।

अनिल : अभी तो साढ़े आठ ही बजे हैं । जाओ बेटा, बाहर खेलो ।

मुन्नू : पापा जी, आप तो परसों कह रहे थे कि आठ बजे के बाद बाहर नहीं खेलना चाहिए ।

अनिल : आज बाहर मौसम अच्छा है ।

मुन्नू : नहीं, पापाजी, मैं तो आपके साथ खेलूँगा ।

[शीला हँसती है पर जब अनिल उसकी ओर देखता है तो एकदम चुप हो जाती है ।]

अनिल : (शीला से) तुम्हीं जरा कहो न इसे । (मुन्नू से) बेटा, यह लो दो आने । जाओ, सामने लच्छू की दूकान से टॉफी ले आओ ।

मुन्नू : टॉफी तो मेरे पास है । पापाजी, आपका नाटक परसों हो रहा है न ?

[शीला भीतर जाती है।]

अनिल : हाँ।

मुन्नू : मुझे पिंकी और टुन्नू के लिए दो पास चाहिए।

अनिल : हाँ-हाँ, जरूर मिलेंगे। अब जाओ, टोनी के साथ खेलो।

मुन्नू : पापाजी, रामलीला की कहानी सुनाओ।

अनिल : रात को सोते समय सुनाऊँगा।

मुन्नू : नहीं, पापाजी, अभी सुनाओ।

अनिल : देखो मुन्नू, गीता आंटी आज नया बाजा लायी है। वह कह गई थी कि मुन्नू को भेज देना।

मुन्नू : नया बाजा !

अनिल : हाँ !

मुन्नू : अहा जी, हम तो नया बाजा देखेंगे ! (खुशी में कूदता हुआ बाहर चला जाता है।)

अनिल : ओफ्फो ! अब तुम कहाँ चली गईं ? शीला ! शीला !

[शीला आती है।]

अनिल : कहाँ चली गई थीं ?

शीला : अंगीठी में कोयले डालने गई थी। रिहर्सल के बाद खाना नहीं खाना है या आज व्रत ही रखना है !

अनिल : तुम्हें चाहिए था कि इतनी देर में आगे पढ़ लेतीं।

शीला : नाटक तो मैंने पढ़ा हुआ है।

अनिल : अच्छा तो अब जरा आखिरी सीन की रिहर्सल कर लेते हैं। (पुस्तक में दिखाते हुए) देखो, यहाँ से, शाबाश ! बोलो।

शीला : (पढ़कर) 'मेरे देवता ! मैं तो तुम्हारे चरणों की धूल हूँ, मुझे यूँ न ठुकराओ।'

अनिल : जरा गला दबाकर रोते हुए, शाबाश ! आगे चलो। (शीला आगे बढ़ जाती है।) ओहो ! मेरा मतलब आगे बढ़ने से नहीं···आगे पढ़ने से है। हाँ, शाबाश ! जरा रोते हुए···चलो···मेरा मतलब पढ़ो।

शीला : (रोते हुए) 'मेरे देवता, मैं तो तुम्हारे चरणों की धूल हूँ। मुझे यूँ न ठुकराओ। रेखा रमेश के पैरों पड़ती है। रमेश उसे धक्का दे देता है।'

अनिल : यह तो ब्रैकेट में लिखा है। जो ब्रैकेट में लिखा हो उसे नहीं बोलते।

शीला : मुझे क्या पता ?

अनिल : (तभी जैसे कुछ याद आता है।) वह मुन्नू की पिस्तौल कहाँ रखी है ? मैं अभी लाया। तब तक तुम इस सीन को फिर से पढ़ लो। (मेज की दराज में, फिर पुस्तकों की अलमारी में पिस्तौल ढूंढता है, फिर अलमारी के नीचे से पिस्तौल उठाते हुए) लो, मिल गई। अब आगे चलो। मुझे जरा क्यू दो।

शीला : क्यू !

अनिल : मेरा मतलब अपनी पहली लाइन फिर बोलो···

शीला : 'मुझे यूँ न ठुकराओ।'

अनिल : 'मेरी आँखों से दूर हो जा, नहीं तो मैं तुझे मार डालूंगा।'

शीला : 'इस जीवन से तो अच्छा है मैं मर जाऊं। लो, चलाओ गोली। तुम्हें मेरी कसम है।'

अनिल : 'मैं कहता हूँ हट जाओ मेरे रास्ते से! (जोर से) हट जाओ नहीं तो···'

[दरवाजे से मि० सुब्रामनियम और पिंडीदास झांकते हैं।]

शीला : 'चलाओ गोली! चलाओ!'

अनिल : 'मैं कहता हूँ हट जाओ! चली जाओ! नहीं तो खून हो जाएगा, खून!'

[सुब्रामनियम और पिंडीदास झपटकर अनिल को पकड़ लेते हैं।]

सुब्रामनियम : ह्वाट आर यू डूयिंग जी ?

पिंडीदास : यानी तुम की करता है ?

अनिल : मुझे छोड़ दो !

सुब्रामनियम : तुम एजूकेटिड होकर यह क्या करता जी ?

पिंडीदास : यानी तुम पढ़या-लिखया बन्दा ! ए की करता है ?

अनिल : मैं कहता हूँ आप लोग जाइए।

सुब्रामनियम : तुम सिस्टर दूसरा कमरा में चले जाओ जी।

पिंडीदास : हां भैनजी, तुम इक पास्से हो जाओ।

अनिल : मैं कहता हूँ मैं अपने घर में कुछ भी करूं, आपको क्या !

सुब्रामनियम : तुम मरडर करेगा जी तो पुलिस हमको भी पकड़ेगा।

पिंडीदास : यानी पड़ोसियों को भी गवाही देनी होगी।

सुब्रामनियम : हमको भी विटनेस देना होगा।

पिंडीदास : यानी कि गवाही।

अनिल : (झटका देते हुए) छोड़ दो !

सुब्रामनियम, पिंडीदास : पुलिस ! पुलिस !

[शीला और अनिल एक-दूसरे की ओर देख जोरों से हँस पड़ते हैं।]

सुब्रामनियम : ह्वाट इज दिस, अनिल बाबू ?

पिंडीदास : यानी ए क्या है, भई ?

अनिल : आप लोग तो खूब डर गए।

सुब्रामनियम : डरने का बात है जी ! हमारी दिल तो अभी तक धुकुर-धुकुर करता जी।

अनिल : यह पिस्तौल तो मुन्नू का है।

सुब्रामनियम : बट ह्वाट इज दिस ?

पिंडीदास : यानी ए सब की था ?

अनिल : यह तो हम लोग रिहर्सल कर रहे थे।

सुब्रामनियम : रिहर्सल ?

पिंडीदास : ओ क्यों भई ?

अनिल : ड्रामे का रिहर्सल। परसों मेरा नाटक खेला जा रहा है। उसी की रिहर्सल कर रहे थे।

सुब्रामनियम : इज इट राइट, सिस्टर ?

पिंडीदास : यानी क्या यह सच है, भैनजी ?

शीला : जी हाँ।

पिंडीदास : वाह भाई, अनिल बाबू ! तुमने तो कमाल कर दिया।

सुब्रामनियम : यह तो फर्स्ट अप्रैल के माफिक हो गया जी। अच्छा भई, रिहर्सल करो। मैं चलता हूँ।

अनिल : माफ कीजिए, आप लोगों को···

पिंडीदास : कोई नहीं। अब हम लोग जाता है।

[दोनों बाहर चले जाते हैं। शीला और अनिल हँसते हैं।]

शीला : लो, और करो रिहर्सल !

सुब्रानियम, पिंडीदास : (दोनों वापस आकर दरवाजे में से झाँककर एक साथ) नाटक का पास जरूर भेज देना।

अनिल : यह तो नाटक में नाटक हो गया।

शीला : बस करो ! मैं बाज आयी इस रिहर्सल से !

अनिल : (खुशामद करते हुए) यह न कहो, शीला, नहीं तो मैं सचमुच पागल हो जाऊँगा। अगर यह नाटक न खेला गया तो लोग मुझ पर हँसेंगे, मेरा मज़ाक उड़ाएँगे। मेरा घर से बाहर निकलना मुश्किल हो जाएगा।

शीला : अच्छा है। इस बहाने दो-चार दिन आराम से तो घर बैठोगे।

[दरवाजे पर दस्तक]

शीला : लो, फिर कोई आ गया !

अनिल : तुम कह दो कि मैं घर पर नहीं हूँ। मैं अन्दर जाता हूँ।

[शीला दरवाजा खोलती है। एक युवती प्रवेश करती है।]

वीना : मिस्टर अनिल यहीं रहते हैं ?

शीला : जी हाँ ! लेकिन वह इस समय घर में नहीं हैं।

[अनिल आवाज सुनकर दौड़ा हुआ आता है।]

अनिल : अरे, आप ?

वीना : हलो, अनिल !

अनिल : आइए, आइए ! मुझे तो किसी ने बताया कि आप बाहर चली गई हैं। हे भगवान् ! तूने मेरी लाज रख ली। बैठिए, बैठिए !

अनिल : (शीला से धीमे से) जल्दी से चाय बना दो।

शीला : कौन है ?

अनिल : मेरे अफसर की बीवी हैं। इनकी जरा अच्छी तरह खातिर कर दो।
शीला : नमस्ते, बहनजी। मैंने आपको पहचाना नहीं था।
वीना : नमस्ते।
अनिल : जाओ, जल्दी करो!
शीला : मैं अभी आयी, बहनजी! (जाती है।)
अनिल : मुझे विजय ने बताया कि आप नाराज होकर बाहर चली गई हैं। सच जानिए, मेरे तो होश उड़ गए, चक्कर आने लगे, पैरों तले से जमीन खिसक गई।
वीना : उन्होंने आपको गलत बताया।
अनिल : आप सुबह रिहर्सल में क्यों नहीं आयीं?
वीना : मुझे एक जरूरी काम हो गया था।
अनिल : मगर मेरा तो हार्ट फेल हो गया होता।
[शीला एक हाथ में प्लेट लिए आती है, पर दोनों की बातें सुनकर चुपचाप पीछे खड़ी हो जाती है।]
वीना : मैं आपको कभी धोखा नहीं दे सकती।
अनिल : आप कितनी अच्छी हैं! आप एक महान् कलाकार हैं। आप तो इतना अच्छा अभिनय करती हैं कि बस कमाल है। और उस पर आपकी वह पर्सनल्टी लोग देखते ही रह जाते हैं।
वीना : झूठी तारीफ करना तो कोई आपसे सीखे।
अनिल : मैं सच कहता हूँ। आप सौन्दर्य की मूर्ति, संगीत की देवी और नृत्य की रानी हैं।
[शीला के हाथ से प्लेट गिर पड़ती है।]
शीला : तो यह है वीना, जिसके लिए तुम कह रहे थे कि बोलती है तो ऐसा लगता है जैसे इंजन सीटी मार रहा हो।
वीना : नॉन्सेन्स!
शीला : (रोष-भरे स्वर में) मेम साहब! गाली देना अपने घरवालों को! मैंने तुझ-जैसी बहुत देखी हैं।
अनिल : (क्रोध से) शीला! (वीना से) वीना, इनका बुरा न मानना, इनका तो दिमाग खराब है।
शीला : झूठ बोलते शर्म नहीं आती! तुम्हीं तो कह रहे थे कि नखरे दिखाती है, अकड़ती है, मैंने भी सोच लिया है उससे पार्ट नहीं कराऊंगा।
वीना : यह सब क्या है! आप मेरी बेइज्जती कर रहे हैं!
शीला : बड़ी आयी इज्जत वाली!
वीना : मुझे पता नहीं था कि तुम इतने कमीने हो! खबरदार, जो अब···
(क्रोध में जाने लगती है।)
शीला : जा-जा···!

अनिल : वीनाजी, सुनिए तो···

वीना : खबरदार, जो अब मेरे पीछे आये !

अनिल : ओह, चली गई ! शीला, यह तुमने क्या किया ? शीला ! शीला !

शीला : जाओ, उसके हाथ जोड़ो और पैरों पड़ो। मेरा तो दिमाग खराब है।

अनिल : लेकिन मेरे अधूरे नाटक का क्या होगा ?

शीला : कान खोलकर सुन लो, मेरे जीते-जी अब तुम्हारा नाटक पूरा नहीं होगा। (अन्दर जाती है।)

अनिल : हाय. मेरा नाटक तो पर्दा उठने से पहले ही खत्म हो गया।

२१

रेलगाड़ी के डिब्बे

अरुण

श्री अरुण का जन्म मेरठ में हुआ था। आप आगरा विश्व-विद्यालय के एम० ए० हैं। विद्यार्थी-काल से ही लिखने की ओर रुचि रही है। अब तक आपकी अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, कई प्रकाशन के पथ पर हैं। आपकी 'सचित्र गृह-विनोद' पुस्तक उत्तर-प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत भी हो चुकी है।

हिन्दी के सभी प्रतिष्ठित पत्रों में आपकी रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं।

आप क्रिकेट के भी अच्छे खिलाड़ी हैं और उत्तर प्रदेश के सर्वप्रमुख कैंट-स्पोर्टस्-क्लब के कप्तान रह चुके हैं।

रचनाएँ

'भोर की किरणें', 'अमृत और विष', 'मृत्यु में जीवन', 'घुमक्कड़ की बस्ती और रास्ते', 'रेलगाड़ी के डिब्बे', 'सचित्र गृह-विनोद', 'सचित्र व्यंग्य-विनोद', 'भारत-संगम', 'भारत-सिन्धु', 'सीढ़ियों के ऊपर अँधेरा', 'इन्द्र ने स्वराज्य जीता', 'बुलबुला, तूफान, विस्फोट', 'शुतुरमुर्गों का रेगिस्तान' आदि।

पात्र

निशीथ : सिटी मजिस्ट्रेट
पंकज : निशीथ का मित्र
यूथिका : निशीथ की पत्नी
अंजनादेवी : निशीथ की मां
छोटे : यूथिका का छोटा भाई

समय : १९५२ का अपराह्न

स्थान : गांधी रोड पर स्थित एक छोटी कोठी ।

कोठी का ड्राइंग-रूम । दायीं ओर एक द्वार और दो खिड़की हैं । बायीं ओर एक अंगीठी बनी है जिसकी बगल में एक द्वार है । अंगीठी के ऊपर भुवनेश्वर की 'पत्र भेजती स्त्री' मूर्ति की प्रतिमूर्ति रखी है । सामने की ओर भी दो द्वार हैं । दायीं ओर की खिड़कियों से बरामदे तथा लॉन का कुछ भाग दिखाई देता है । खिड़की के नीचे पुस्तकों की एक अलमारी रखी है और बायीं ओर एक छोटी मेज़ जिस पर पत्थर के काम किये फूलदान में ताजे फूल रखे हैं । बीच में दरी और कालीन बिछे हैं जिन पर सोफासेट करीने से रखा हुआ है । बीच में शीशे की एक अंडाकार मेज लगी है ।

दायीं ओर के द्वार पर ताली घुमाने का स्वर आता है । द्वार खुलता है और निशीथ अंदर आता है ।

निशीथ : देखा, क्या कहा था । यदि यूथिका घर पर नहीं होगी तो ताली मुझे द्वार के नीचे रखी मिल जायेगी ।

[निशीथ के पीछे पंकज भी ड्राइंगरूम में घुसता है ।]

पंकज : बेटा, कॉलेज-होस्टल की यह आदत छोड़ो, नहीं तो धोखा खाओगे··· (उत्सुकता से) पर हाँ, यह यूथिका कौन है, यह तो तुमने बताया ही नहीं ?

निशीथ : तुम स्वयं ही समझ लो ।

पंकज : (उतावली से) समझ लूँ अपना सिर ! लगभग सात माह हो गये तुम्हारी इस शहर में नियुक्ति हुए । तुम्हारे बीसियों पत्र मिले, पर किसी में तुमने इस शहर के विषय में एक शब्द जो लिखा हो । बस पुरानी बातें रोते रहते थे ।

निशीथ : बैठो तो भाई !

[दोनों सोफे पर बैठ जाते हैं ।]

निशीथ : बस, इसी से पता लगता है कि साहत्र इस शहर की सब चीज़ों की तुलना में पुरानी यादों को अधिक महत्त्व देता है ।

पंकज : यह हमारे सामने ही कह रहे हो । कहीं यदि यूथिका के सामने कह बैठे तो तुम्हारी उसके साथ मित्रता, शत्रुता, प्रेम, घृणा जो कुछ भी है सब समाप्त हो जायेगी···हाँ, बताओ—तुम्हारी उसके साथ मित्रता, शत्रुता, प्रेम, घृणा, क्या है ?

निशीथ : भाई मेरे, धीरे-धीरे ज़रा । शहर पहुँचते ही तो मैं तुम्हें यूथिका से मिलाने लाया हूँ ।

पंकज : अच्छा, यह उन्हीं कल्पनावासिनी···नहीं-नहीं, मेरे लिए कल्पनावासिनी, पर तुम्हारे लिए हृदयनिवासिनी का घर है—प्रेम-निकेतन। (सिर हिलाकर) मैं सब समझ गया।

निशीथ : समझ गये! तुम्हें तुम्हारी भाभी के दर्शन कराने लाया हूँ।

पंकज : हूँ···जब रोग अपने वश में नहीं रहता तो डाक्टर को बुलाकर लाना पड़ता है।

निशीथ : पर यदि रोगी कोई खोया हुआ व्यक्ति हो तो?

पंकज : तो डाक्टर खोजी बनकर उसे भी ढूंढ निकालेगा और रोग को भी। (जरा रुककर) अच्छा, रोग का आरम्भ सुनाओ।

निशीथ : आने से कुछ दिन बाद की बात है, स्थानीय गर्ल्स कॉलिज में पारितोपिक-वितरण था। मुझे उसका सभापति बनने के लिए बुलाया गया।

पंकज : (आँख चढ़ाकर) अन्धे होते हैं साले। बस सिटी-मजिस्ट्रेट को बुला लो। यह नहीं देखा कि तरुणियों का कॉलिज है और मजिस्ट्रेट साहब अभी तरुण हैं, और उस पर कुमार भी।

निशीथ : तुम्हारा मतलब है किसी वृद्ध को बुलाना चाहिए था!

पंकज : वृद्ध का भी क्या पता! किसी अन्धे को!

[दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ते हैं।]

निशीथ : यूथिका इसी कॉलिज में अध्यापिका थी और साथ में इस समारोह की संयोजिका।

पंकज : बस टटोल ली नब्ज़। अच्छा डाक्टर तो वही है जो एक लमहे में सब कुछ समझ जाय।

निशीथ : बातचीत हुई और मुझे पता लगा कि यूथिका शान्त तथा सरल युवती है···

पंकज : मान लिया भाई कि दुनिया के सारे सद्गुण उसके अंदर विद्यमान हैं।

निशीथ : ···जो अपने शराबी और बीमार बाप के लिए कड़ा परिश्रम करती है।

पंकज : ओह! बाप ने बेटी के गुण पैतृकत्ता में प्राप्त नहीं किये!

निशीथ : बाप को मैं भी पसन्द नहीं करता। कुछ अजीब किस्म के आदमी हैं।

पंकज : (बात काटकर) खैर, तुम्हारा बाप से क्या मतलब!

निशीथ : (चिन्तन या स्वप्न में कुछ बाधा पड़ जाती है। बिगड़कर) तुम मज़ाक समझ रहे हो!

पंकज : भाई, तुम सोच रहे हो कि मैं तुम्हारे दिल की लगी को दिल्लगी समझ रहा हूँ। मैं तो केवल उसे रस ले-लेकर सुन रहा था।

[निशीथ का मुख कुछ चढ़ जाता है। पंकज भी समझ जाता है कि इस समय मजाक उपयुक्त नहीं है।]

पंकज : बेटा, एक काम करो। किनारे के रेत पर लेटकर हाथ-पैर चलाने से तैरना नहीं आता। बस आँख मूंदकर छलांग मार दो।

निशीथ : (पुराना भाव लौट आता है।) क्या पता मार भी दी हो…(कुछ देर रुककर) पर पंकज, एक गड़बड़ है, यूथिका खत्री है।
[पंकज को प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगता है।]

पंकज : खत्री ! तो भाई हमारी राय है कि तुम कुछ दिन बाहर घूम आओ। ठंडी हवा खाकर तुम्हारी प्रेम की अग्नि शीतल पड़ जायेगी, तुम्हारे दिल और दिमाग ठिकाने आ जायेंगे।

निशीथ : (बुरा मानते हुए) मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी।

पंकज : निशीथ, तुम स्वयं सोचो। अपनी माँ का ध्यान करो। उनके होते हुए क्या तुम यूथिका से विवाह कर सकते हो ?…और फिर समाज को देखकर चलना पड़ता है।

निशीथ : (फीकी हँसी हँसकर) समाज…समाज है क्या ? हम और तुम ही तो समाज हैं। हम-तुम ही ऐसी बातों पर नाक मारते हैं। यदि धीरे-धीरे हम-तुम ही अपने में परिवर्तन करने लगें तो समाज स्वयं बदल जायेगा। यही होना चाहिए कि एक-एक कर समाज की इकाइयाँ नयी डगर पकड़ें और बाकी उन्हें बढ़ावा न भी दें तो उन्हें नीचे भी न गिरायें, एक शांत दर्शक की भाँति देखते रहें।

पंकज : तुम भावुक हो, निशीथ ! पुस्तकें खूब पढ़ी हैं सो कल्पना-शक्ति के बल पर सब वस्तुओं को देखते हो। अन्तर्समाजीय विवाह पुस्तकों में ही ठीक है। लोग पढ़ते हैं और खुश हो लेते हैं क्योंकि इससे उनकी रोमान्स की भावना तृप्त होती है। पर व्यवहार में कुछ नहीं। प्रगति-प्रगति चिल्लाने वाले ही समाज के नियमों के विरुद्ध कुछ बात होने पर सबसे अधिक शोर मचाते हैं।

निशीथ : मैं ऐसे लोगों की परवाह नहीं करता।

पंकज : मैंने समाज की ठोकरें खायी हैं, निशीथ ! मैं इन बातों की कीमत जानता हूँ। देश स्वतन्त्र हो गया है, पर अब भी जाति की वही दीवार है। कहने, समाचार-पत्र में पढ़ने-लिखने से कुछ नहीं होता, व्यावहारिक जीवन का अनुभव देखो।

निशीथ : (इन तर्कों की बौछार में पंकज की अपने से उल्टी राय देखकर कुछ थकान की भावना से) चलो भाई, तुम्हारी सारी बातें मान लीं। पर मेरी भी सुनो…तुम बचपन से मेरे साथी हो। तुम मेरी प्रकृति भली-भाँति जानते हो। मैं बोलता कम हूँ लेकिन मन को जो ठीक लगे उसे फौरन कर डालता हूँ।

पंकज : तभी मैं तुम्हें समझा रहा हूँ कि कहीं जल्दी मत कर बैठना। जीवन एक रेल-यात्रा है और मनुष्य एक सवारी। रेलगाड़ी के अलग-अलग डिब्बे हैं—फर्स्ट क्लास, सेकंड क्लास, थर्ड क्लास। एक दर्जे का टिकट ले दूसरे दर्जे में सफर करने वाले को समाज-गार्ड अगले ही स्टेशन पर उतार देता

है। यही इस रेलवे कम्पनी के कायदे-कानून हैं।

निशीथ : देखो पंकज, अब तुम चाहे कुछ भी कहो। सच बात यह है कि मैं यूथिका से विवाह कर चुका हूँ। यह मेरा घर है। यूथिका कुछ खरीदारी करने गई है।

पंकज : अच्छा जी सिकन्दर, दुनिया कर ली फतह और हमें खबर भी न दी।

निशीथ : *(बात काटकर, मुसकराते हुए) यदि पहले ही बता दिया होता तो इतना* बड़ा लैक्चर सुनने को कैसे मिलता !

पंकज : मेरा मतलब अब से नहीं, शादी के मौके से है। क्या तुम्हें डर था कि मैं कहीं गार्ड का काम न करूँ। ना भाई ना, तुम मुझे लकीर का फकीर न समझ लेना। अब तक बात की थी दुनियादारी की और अब बातें होंगी दिल की।

निशीथ : यह तो मैं जानता हूँ।

पंकज : क्या खाक जानते हो! जानते होते तो विवाह में न बुलाते।

निशीथ : क्या बताऊँ, मेरी स्थिति उस समय कुछ···

पंकज : (बात काटकर पुचकारते हुए) ना मुन्ना, तुम्हारी कोई गलती नहीं। अवसर ही ऐसा था कि सब कुछ भूल बैठे थे।

[दायीं ओर के द्वार से यूथिका अन्दर आती है। उसके हाथ में एक बंडल है। पीछे छोटे है जिसने एक थैला पकड़ रखा है। यूथिका एक अजनबी आदमी को कमरे में बैठे देख कन्नी काटकर सामने के द्वार से अंदर जाना चाहती है।]

निशीथ : रुको यूथिका, यहां आओ। (यूथिका लौटकर सोफे का सिरहाना पकड़ कर खड़ी हो जाती है।) यह मेरे अभिन्न मित्र हैं पंकज। अभी मेरठ से आ रहे हैं।

[यूथिका और पंकज दोनों के हाथ साथ-साथ जुड़ते हैं।]

पंकज : भाभी जी, अभिन्न क्यों, विभिन्न कहिये जब आपके साहब ने हमें शादी में नहीं बुलाया।

[यूथिका मुसकराकर छोटे को वण्डल पकड़ा देती है और स्वयं सोफे पर बैठ जाती है। छोटे बायीं ओर के द्वार से अन्दर चला जाता है।]

निशीथ : लो, आरम्भ हुईं शिकायतें।

पंकज : शिकायत का काम करोगे तो क्यों न शिकायत होंगी। (यूथिका से) आज भी आपके दर्शन दुर्लभ थे। जब मैंने बहुत कहा तब लेकर आने को तैयार हुआ।

निशीथ : क्यों बे, बदमाशी से बाज नहीं आयेगा ! तेरा मतलब क्या है ? पहली मुलाकात में ही लड़ाई करवाने की सोच रखी है क्या ?

यूथिका : (मुसकराकर) आप इन्हें न लाने देते, स्वयं यहीं चले आते। घर तो आपका ही है।

पंकज : भाभी जी, यहाँ तो आपसे क्या, आपके शहर से भी अपरिचित थे। कचहरी का पता पूछकर तो निशीथ के पास पहुँच भी गया। यदि तांगे-वाले को घर का पता बताता तो अब तक 'टिक-टिक, टुर-टुर' चल रहा होता।

यूथिका : अच्छा, तो आपका मतलब यह है कि मैं तो थक गया हूं और आप लोग बैठे-बैठे बातें बना रहे हैं। आप चिन्ता न करें। मैं अभी दो मिनट में चाय बनाकर लाती हूँ।

पंकज : भाभी जी, मात खा गये आपसे। हम तो सोचते थे कि हम ही बात बनाने में एक हैं पर आप तो हमारी भी गुरु निकलीं। खैर, बना लाइये, नहीं तो आप कहेंगी कि कैसा देवर है, चाय आदि के लिए भी तंग नहीं करता।

[सब हँस पड़ते हैं। यूथिका साड़ी का पल्ला मुँह में दबाकर बाएँ द्वार से अन्दर चली जाती है।]

निशीथ : (आँखें स्वप्निल कर मेज के कोने की ओर निरर्थक दृष्टि गड़ा लेता है।) यह है यूथिका, पंकज, तुम्हारी भाभी। पहली दृष्टि में ही मेरा इससे प्रेम हो गया।

पंकज : (हँसते हुए) ग्रेट ब्रिटेन की मैरिज ब्यूरो ने रिसर्च कर यह सिद्ध कर दिया है कि प्रथम दृष्टि का प्रेम शारीरिक आकर्षण के अतिरिक्त कोई बला नहीं है।

निशीथ : मजाक नहीं, सच कहता हूँ कि मैं अपने को भूल बैठा। और आखिर मैंने विवाह भी कर लिया। (संतुष्ट स्वर में) एक गुरु की बात याद रखना। असली प्रेम विवाह के पहले नहीं बल्कि बाद में होता है। यदि एक ढंग के मनुष्यों में विवाह हो जाये तो फिर उन्हें दुनिया में किसी चीज़ की चाह···

[छोटे कमरे में आता है।]

छोटे : (बात काटकर) जीजा जी, हमें एक चवन्नी दे दो।

निशीथ : (अपनी बात काटे जाने से कुछ रुष्ट होकर) देखो छोटे, जब मैं किसी भले आदमी से बातें कर रहा होऊँ तो बीच में मत बोला करो।

छोटे : (मुँह बनाकर) हम बात करने को कब मना कर रहे हैं। हम तो अपनी मजूरी माँग रहे हैं। जीजी के साथ सारे बाज़ार में थैला उठाये घूमे हैं।

निशीथ : (क्रुद्ध हो उठता है) तो जाओ अपनी जीजी से माँगो जिन्होंने तुमसे नौकरी करवाई है। हमें बात करने दो।

छोटे : जीजी से क्यों कहूँ ! वे मुझे धमकाने लगेंगी। उन्हें हर समय धमकाने के सिवाय और आता क्या है।

[निशीथ लज्जित होकर पंकज की ओर देखता है।]

छोटे : और मैं किस बात में कम हूँ ! मैं अपने आप कमा सकता हूँ। माना

आजकल···

निशीथ (जेब से चार आने निकालते हुए) अच्छा छोटे, लो, जाओ। अब हमें बातें करने दो।

छोटे (खुशी से फूलकर) अब मेरी यहाँ ठहरने की क्या जरूरत। जीजा जी, आप बहुत अच्छे हैं।

[छोटे उछलता-कूदता बाहर चला जाता है।]

पंकज : भाई साहब तो कुछ आँय-बाँय ही दिखाई देते हैं।

निशीथ : हाँ, इन्हें मैं भी अभी तक समझ नहीं पाया हूँ।

[बाएं द्वार से यूथिका का प्रवेश। उसने साड़ी के स्थान पर धोती पहन ली है। हाथ में चाय का डिब्बा है।]

यूथिका : (वहीं द्वार पर खड़े होकर) हाँ जी, वह प्लास्टिक का परदों का कपड़ा देखा था सवा तीन रुपये गज हो गया है।

निशीथ : तो ले आयीं क्या? लाओ, दिखाओ।

यूथिका : नहीं, अभी तो नहीं लायी हूँ।

निशीथ : हाँ, क्यों लाओगी! एक चीज़ मैंने तुमसे अपनी पसन्द की लाने को कही है, वही क्यों इस घर में आने लगी? इससे अच्छा था कि नहीं कहता। कहकर बेकार अपनी बात गिरवाई।

यूथिका : आपके दिमाग में तो जल्दी बहुत है। पिछले माह यह कपड़ा पाँच रुपये गज था। अब सवा तीन रुपये गज मिल रहा है। और मुझे लगता है कि अभी इसके दाम और गिरेंगे। प्लास्टिक की चीजों के दाम का कुछ मत पूछो—इतनी जल्दी गिरते हैं कि आदमी भौंचक्का रह जाये।

निशीथ : (क्रोध-मिश्रित खीज उड़ जाती है।) ओहो, पूरी गृहिणी बन गई। देखा पंकज, अब मैं अन्नपूर्णा के हाथों में घर की···

पंकज : घर की क्यों, अपनी भी कहो!

निशीथ : हाँ, अपनी भी बागडोर सौंपकर निश्चिन्त हो गया हूँ।

पंकज : भाभी जी, शादी के बाद आदमी की कायापलट हो जाती है। आपको इसने कभी सुनाया कि स्त्रियों की बुद्धि के बारे में शादी से पहले इसकी क्या राय थी। हज़रत कहते थे कि युवतियों की बुद्धि की युवकों की बुद्धि से तुलना युनिवर्सिटी ने ठीक की है। कॉलिज में चार वर्ष बिगाड़ने पर युवकों को 'बैचलर ऑफ आर्ट्‌स' (कला के कुमार) की डिग्री मिलती है जबकि युवतियों को केवल 'बेबी ऑफ आर्ट्‌स' (कला की शिशु) की। उन्हें 'मेडन ऑफ आर्ट्‌स' (कला की कुमारी) बनने के लिए जीवन के छः अमूल्य वर्ष बिताने पड़ते हैं।

[तीनों हँस पड़ते हैं।]

निशीथ : अपनी क्यों नहीं कहते! तुम क्या कुछ कम थे। तुम टॉल्स्टाय की उक्ति दिया करते थे—

हाथ बेसन में सने हुए हैं।]

यूथिका : (पंकज से) भाई साहब, क्षमा कीजिये। थोड़ी देर और। कोई चीज थी नहीं, इसलिये गरमागरम पकौड़ी उतार रही हूँ···

पंकज : भाभी जी, आप क्यों कष्ट करती हैं ?

यूथिका : वाह, इसमें कष्ट कैसा ! (निशीथ से) क्यों जी, आपने छोटे को देखा है ? बाजार से आने के बाद पता नहीं कहाँ चला गया ?

निशीथ : (व्यंग्य से) छोटेलाल तो मुझसे चार आने माँगकर ले गये हैं। हीरा चाट वाले के यहाँ दौने चाट रहे होंगे।

यूथिका : (व्यथित भाव से) देखो जी, आपने फिर उसे मुझसे बिना पूछे पैसे दिये।

निशीथ : (आँखें चढ़ाकर) पैसे नहीं देता तो क्या उसकी बड़-बड़ सुनता रहता, पंकज से बातें नहीं करता। (और भी कहना चाहता है पर होंठ कसकर भींच लेता है।)

[यूथिका दुखित हो लौट जाती है।]

निशीथ : (छूटी बात चालू कर) पंकज, सन्ध्या ने तुमसे क्या कहा, पूरी बात बताओ।

पंकज : कहती क्या, स्त्रियों की व्यावहारिकता की बातें कीं। 'मैं जानती हूँ आप मुझसे प्रेम करते हैं। मैं भी इसका प्रतिदान करती हूँ। किन्तु आपके साथ विवाह करना मेरे लिये असम्भव-सा है। देखिये, बुरा न मानियेगा। आप अपने को मेरी स्थिति में रखकर सोचिये। मैं एक धनी घर में पली हूँ। मैंने हाथ से अभी तक कोई काम नहीं किया है। मैं सवेरे बहुत देर से उठती हूँ। भला मैं किस भाँति आपकी गृहस्थी चला सकूँगी ! यदि हमारा विवाह हो गया तो हम दोनों में से कोई भी सुखी न हो सकेगा।'

निशीथ : (व्यंग्य से) अच्छा, उसने विवाह के मसले पर बड़े गौर से सोचा।

पंकज : (हँसकर) हाँ, उसने मन में बहुत तर्क-वितर्क कर मेरी हालत पर तरस खाकर मुझसे विवाह करने से इनकार कर दिया। विवाह से मेरी हानि थी ! वह मेरे साथ कैसे जीवन बिता सकती थी ! 'प्रेम केवल एक नशा होता है, उसका व्यावहारिक रूप भी हमें देखना चाहिए।' सन्ध्या ने अन्त में कहा था।

निशीथ : हाँ, सोचना और प्रेम करना दो विपरीत बातें हैं। यदि मनुष्य हर कार्य भली प्रकार सोच-समझकर आरम्भ करना चाहे तो उसके लिये कोई भी कार्य करना बहुत कठिन हो जाये। होना तो यह चाहिए कि मनुष्य कमर कसकर कार्य-क्षेत्र में कूद पड़े और फिर शक्ति भर उसमें सफल होने का प्रयास करता रहे।

पंकज : संध्या ने यह भी कहा, 'अभी आप जीवन में स्थापित नहीं हुए हैं···' और 'आपसे विवाह कर लेने से पिताजी को बहुत दुःख होगा। उन्होंने मुझे पाल-पोसकर इतना बड़ा किया है। अब इस अवस्था में उन्हें मैं

किस मुंह से पीड़ा पहुंचाऊँ! यह कृतघ्नता नहीं होगी ?'

निशीथ : तुमने यह नहीं पूछा, 'और अब तक मेरे साथ प्रेम का खिलवाड़ हो रहा था या पागल का मन रखा जा रहा था !'

पंकज : वह कहती रही, 'मैं भी आपकी ओर आकर्षित हूं। पर क्या करूं ? यदि आप हमारी स्थिति के होते तो कितना अच्छा होता ! आप नहीं समझ सकते कि आपको मना करने से मुझे कितना कष्ट हो रहा है !'

निशीथ : कष्ट ! बेचारी का दिल टूट गया ! एक साजन से आँखें लड़ाई थीं वह भी निखट्टू निकला !···खैर पंकज, अच्छा हुआ, तुम बच गये। स्पष्ट है कि उसे तुमसे प्रेम नहीं था। जो अग्नि उसके अन्दर प्रज्वलित हुई थी, वह शीतल पड़ चुकी थी। उसे तुम पर, तुम्हारी शक्ति पर, विश्वास नहीं था। सोचना भी कई तरह का होता है। यह सब उसने तुम्हारे प्रेम-पाश को छिन्न-भिन्न करने के लिए तथा अपने दिल को समझाने के लिये सोचा था। मैंने भी विवाह से पहले सोचा था—यह नहीं कि तू अंतर्जातीय विवाह क्यों कर रहा है ? समाज क्या कहेगा ? तुझे जीना दूभर हो जायेगा। और फिर अम्मा को कैसे समझाएगा ? बल्कि यह कि जल्दी विवाह कर लेना चाहिए, इतने दिनों से मिल-जुल रहा हूँ, यूथिका को बातें सुननी पड़ती होंगी, अम्मा मुझे बहुत प्यार करती हैं, उनकी थोड़ी फटकार खा लूंगा तो क्या बात है। (थोड़ा सांस लेकर हँसते हुए) खैर, मारो गोली। एक बुरा सौदा आसानी से निपट गया। पर मित्र, यह हैं असली डिब्बे। एक ऊँचा और एक नीचा—आजकल रेलगाड़ी में केवल दो डिब्बे हैं। धनवान एक में सफर करते हैं, बाकी दूसरे में। बैठने में गलती करने वालों को दूध की मक्खी की तरह निकालकर फेंक दिया जाता है।

पंकज : छोड़ो रेलगाड़ी के डिब्बों को। अब तो हैलीकॉप्टर की बातें करो जिसमें केवल एकाकी व्यक्ति उड़ान भर सके।

निशीथ : नहीं पंकज, माना हमारी सभ्यता हैलीकॉप्टर की होती जा रही है लेकिन मनुष्य का जीवन आज भी रेलगाड़ी की भीड़ की तरह मिल-जुलकर चलेगा।

[कोठी के द्वार पर एक तांगा रुकने की आवाज़ आती है।]

पंकज : तुम्हारे द्वार पर कोई तांगा रुका है। कोई और बिनबुलाया मेहमान आ रहा है।

निशीथ : (उठकर खिड़की की ओर जाते हुए) यह तो यूथिका का बल है कि बीस बिनबुलाये मेहमानों का भी यहां स्वागत हो सकता है।

[निशीथ खिड़की से झांककर देखता है।]

निशीथ : अरे, यह तो अम्मा हैं। पंकज, मैं अभी आया। (झपटकर कमरे से बाहर निकल जाता है।)

[पंकज भी उठकर खिड़की में से झाँकने लगता है। कुछ पल उपरान्त कमरे के द्वार पर अंजनादेवी और निशीथ दिखाई देते हैं।]

पंकज : नमस्ते, मौसी जी !

अंजनादेवी : ओहो, पंकज भी यहीं है। तुम कब आये, बेटा ?

[तांगेवाला सामान के दो बंडल कमरे के कोने में रखकर पैसों के लिए खड़ा हो जाता है। निशीथ उसे किराया देता है।]

तांगेवाला : बाबूजी, देख लीजिये, सामान सब ठीक आ गया है ?

अंजनादेवी : हाँ, ठीक है। (सोफे पर बैठ जाती हैं।)

पंकज : (बैठते-बैठते) मैं भी अभी आया हूँ, मौसी जी। लगभग आधा घंटा हुआ होगा।

अंजनादेवी : तो हम एक ही गाड़ी से आये होंगे। मुझे तो इस तांगेवाले ने सारा शहर घुमा दिया तब जाकर कहीं कोठी पहुँचाया है।

निशीथ : अम्मा, तुमने पत्र क्यों नहीं डाल दिया ? मैं तुम्हें लेने स्टेशन आ जाता।

अंजनादेवी : तो क्या हुआ फिर ? नया शहर था, पहले दिन ही सब घूम-फिर ली। और सुना, कैसे हाल हैं ?

निशीथ : अम्मा, सब ठीक हैं।

अंजनादेवी : तुम लड़कों को हाल कब बुरे लगते हैं। अपनी शक्ल तो देख। क्या सूरत बना रखी है जैसे कोई बड़ी कसरत करनी पड़ रही हो। (कमरे में उठकर घूमते हुए) यह कोठी तुमने किराये पर ले रखी है ? बड़े अच्छे ढंग से सजा रखी है। क्या कोई नौकर रखा हुआ है ? (तीव्र दृष्टि से निशीथ के मुख की ओर देखती है।)

निशीथ : (हकलाते हुए) नहीं, अम्मा। बात यह है कि···मेरा मतलब है···(बात पूरी करने में असमर्थ रहता है।)

[द्वार पर यूथिका चाय की ट्रे लेकर आती है। एक नवागन्तुका को देखकर वह कुछ झिझक जाती है।]

अंजनादेवी : (आश्चर्य से) निशीथ, यह कौन है ?

निशीथ : अम्मा, यह मेरी पत्नी है यूथिका। यूथिका, यह मेरी माँ हैं।

[यूथिका ट्रे मेज पर रख देती है और धोती का पल्ला माथे पर कुछ आगे खिसकाकर अंजनादेवी के पैर छूती है।]

अंजनादेवी : (अवज्ञा से पैर सिकोड़ लेती हैं।) तुम···(अचरज से यूथिका को घूरती रहती हैं।)

यूथिका : आप चाय पीजिए, अम्मा जी ! मैं अभी आती हूँ। घी जल रहा है। (भयभीत हिरणी के समान कमरे से झपटकर निकल जाती है।)

अंजनादेवी : निशीथ···! (क्रोध में काँप उठती हैं।)

निशीथ : अम्मा, मैं जल्दी के कारण तुम्हें खबर न दे सका। मैं···

अंजनादेवी : हाँ, खबर देता कैसे ? चोरी की कहीं खबर दी जाती है ? मुझ से तो

अच्छा लड़का बतलाया है। (थके स्वर से) मौसी जी, बीसियों लड़के देखे पर कहीं रिश्ता नहीं होता।

अंजनादेवी : क्यों बेटे, क्या बात है ? उर्वशी तो सचमुच उर्वशी के समान सुन्दर है।

पंकज : मौसी जी, उर्वशी की सुन्दरता को मैं क्या कहूँ ? उसे पढ़ा-लिखाकर बी० ए० भी पास करा दिया है। पर सब रुपये माँगते हैं। मैं कहाँ से लाकर दूं ? ऐसी सुन्दर सुशील लड़की के लिए भी वर की कमी है।

अंजनादेवी : हमारा समाज ही खराब है, बेटा ! तभी तो ऐसी सुन्दर सुघड़ लड़की के लिए वर नहीं मिलता। सब रुपया देखते हैं, आचार-विचार, सूरत-सीरत सब गए भट्ठी-भाड़ में।

पंकज : (निशीथ की ओर देखते हुए) इस बात में हमें निशीथ को शाबाशी देनी होगी, मौसी जी ! इसने धन का विचार न कर लड़की देखी है।

अंजनादेवी : लड़की देखी है ! भला लड़का भी अपने लिए लड़की देख सकता है ? उसके नेत्रों पर तो परदा पड़ा रहता है। इस अवस्था में तो लड़कों को सब लड़कियाँ परी लगती हैं।

पंकज : यह तो आपकी बात बिलकुल ठीक है। असली पसन्द तो बड़े आदमियों की होती है। पर यह भी आपका बेटा निकला। मौसी जी, आपकी बहू ऐसी सुन्दर और सुशील है कि मिलने पर पाँच मिनट में ही प्रभाव डाल देती है।

अंजनादेवी : पंकज, बहू मे देखने की बात ही क्या होती है। यही कि उसके संस्कार कैसे हैं। आचार-विचार से कुलीनता का पता लगता है। अच्छे संस्कार हों तो चरित्र भी निर्मल होता है। ऐसी हो कि घर को संजोकर रख सके। बस, फिर मैं भी अपनी आँखें चैन से बन्द कर सकूँ। जब निशीथ के पिता मरे तब यह दस वर्ष का था। मैंने इसके लिए क्या मुसीबत नहीं उठाई ? जिसमें यह सुखी रहे उसमें ही मुझे सुख है। इसके सिवाय मेरा संसार में है ही कौन ?

[नि]शीथ : (आवेश से) अम्मा, यह तो सीधी-सादी शादी थी। अब तुम आ गई हो, एक शानदार पार्टी करेंगे···

[अंजन]ादेवी : चुप रह, तुझ से मैं नहीं बोलती।

[यूथिका एक प्लेट में गरम पकौड़ी उतारकर लाती है।]

[यू]थिका : (प्लेट मेज पर रखकर) आइये अम्मा जी, हाथ-मुंह धो लीजिए। चाय और पकौड़ी ठंडी हो जायेंगी।

अंजनादेवी : (यूथिका के कमरे में प्रवेश के बाद से उसे घूरती रहती हैं।) नहीं, इतनी दूर से आयी हूँ, गर्द-गुब्बार से भर रही हूँ। मैं तो स्नान करके ही कुछ मुख में डालूंगी। मुझे स्नान-गृह बतला दो। (उठ खड़ी होती हैं।)
[दोनों चली जाती हैं।]

पंकज : (निशीथ की ओर शैतानी से देखते हुए) अब से हमें डेल कार्नेगी का बाप

कहना। बच्चू, बचा दिया तुम्हें।

निशीथ : सच पंकज, इस समय तुम्हारा यहाँ उपस्थित होना बहुत अच्छा रहा।

पंकज : तुम अकेले होते तो जो कुछ भी कहते उससे उनका क्रोध ही बढ़ता। पता नहीं, क्रोध में आज क्या हो जाता। तुम्हारे मुख से भी शायद कुछ निकल पड़ता और फिर सबके मन हमेशा के लिए मैले हो जाते। ...खैर, कसक की भाप अभी भी उनमें बाकी है। दो चार-दिन तो सुनना पड़ेगा ही...

[यूथिका कमरे में आ जाती है जिसे देखकर पंकज अपनी बात रोक देता है।]

यूथिका : अम्मा जी को गुसलखाने छोड़ आयी हूँ। कड़ाही उतार दी है। अब उनके नहाकर आने पर ही चढ़ाऊँगी। (सोफे पर बैठ जाती है।) अम्मा जी मेरी चोरी पर बहुत नाराज थीं। बेचारे सीधे-से लड़के थे उनके, मैंने बहका लिया और अम्मा जी के सारे के सारे अरमान दिल में रह गये।

निशीथ : देखा, नारियों में लुक-छिपकर दूसरों की बातें सुनने की कैसी आदत होती है।

पंकज : यह तो स्वाभाविक है। भाभी जी के मन में भी उत्कण्ठा जाग्रत हुई होगी कि देखें हमारे मियाँ जी पर कैसी डाँट पड़ती है। डाँट अवश्य पड़ेगी यह तो उन्हें पता था ही।

निशीथ : पर मेरी अम्मा भी कैसी अच्छी है। कैसी जल्दी मान गई!...और पंकज, अम्मा ने आदर्श रेल के डिब्बे बनाये हैं। जो अच्छे आचार-विचार के हैं, कुलीन हैं, निर्मल चरित्र के हैं, संस्कारी हैं, वे ऊँचे दर्जे के यात्री हैं। जो नीच हैं, वे नीचे दर्जे के।

यूथिका : इसमें मैं भी कुछ कह सकती हूँ?

निशीथ : (मुसकराकर) अनुमति है।

यूथिका : पर आचार-विचार मनुष्य स्वयं नहीं बनाता, उसकी परिस्थितियाँ बनाती हैं। कोई भी माँ-बाप नहीं चाहते कि उनका बच्चा नीच हो। फिर भी सब लालन-पोषण पर निर्भर करता है।

पंकज : भाभी जी ठीक कह रही हैं।

यूथिका : अब देखिए न! मुझ में और छोटे में आप अन्तर पाते हैं। यह अन्तर किसलिए है? मैं बताती हूँ। मेरे बचपन में मेरी माँ जीवित थीं। हमारा एक सादा हिन्दू परिवार था। पर छोटे के होने से माँ मर गई। उसे माँ का प्यार नहीं मिला। पिताजी भी माँ के मरने का सदमा न संभाल सके। वे भी रोगी और चिड़चिड़े हो गए। और इन भिन्न परिस्थितियों का प्रभाव आप मुझ में और छोटे में, सगे भाई-बहन में, देख सकते हैं।

निशीथ : कालिज में पढ़ने से तुम भाषण देना अच्छा जान गई हो। (मुसक-

लगता है।)

यूथिका : (भौंहें चढ़ाकर) जाइये, आप से हम नहीं बोलते। मेरी तो अक्ल की बात भी इन्हें विप के समान लगती है।

पंकज : भाभी जी, यह तो हम दोस्तों की मज़ाक करने की बुरी आदत है। चिन्ता न करें, कुछ दिन में हम आपके अन्दर भी मजाक करने और सहने की शक्ति जाग्रत कर देंगे। आपकी बात मान ली। हमारे सामने रेल-गाड़ी भागी जा रही है। परिस्थितिवश जो मनुष्य जिस डिब्बे में बैठ जाता है उसी का हो जाता है।

निशीथ : और परिस्थितियों को बनाने में मुख्य हाथ होता है आर्थिक समस्याओं का, सो मेरा कहना भी ठीक हुआ कि एक धनिकों का डिब्बा है और दूसरा निर्धनों का।

यूथिका : वॉव होप जी, सत्य अनित्य नहीं, सापेक्ष है।

२२
मांजो

श्रीकृष्ण

घर का आँगन दिखाता हुआ मंच का परदा खुलता है। रात की बिछी हुई खाटें यों ही पड़ी हैं। आँगन में चार-पाँच दरवाज़े हैं। कोई बाहर बैठक में, कोई भीतर दालान में, कोई रसोईघर में, कोई स्नानघर में खुलता है। एक से बाहर जाने का मार्ग है। आंगन में जीना है जिसकी कुछ सीढ़ियाँ दिखाई पड़ रही हैं। हाथ में गंगाजली लिये बाहर से सरस्वती प्रवेश करती है। स्थूल शरीर, माथे पर चन्दन-तिलक, गले में रुद्राक्ष की माला।

सरस्वती : (दालान की ओर मुंह करके पुकारती है) नन्ही, ओ नन्ही! अरी, कहाँ मर गई? इस लौंडिया ने तो तंग कर रखा है। एक घड़ी घर में नहीं टिकती। जब देखो तब बाहर, जब देखो तब बाहर! (रसोईघर की ओर मुँह करके) क्यों री, बहू, तुझे कुछ मालूम है कहां गई है?

लक्ष्मी : (भीतर से ही) मुझे पता है मुँहजली कहाँ गई है!

सरस्वती : हाँ, तुझे पता रखने की जरूरत ही क्या है! मेरा क्या है, मैं तो कुछ दिनों की मेहमान हूँ। तू ही रोयेगी किसी दिन। आ जाने दे आज इसे, मैं निकालूंगी इसका डोलना। (भीतर दालान के दरवाज़े की ओर बढ़ती है। तभी बिट्टो भागती हुई उधर आती है और सरस्वती को देखते ही सहमकर खड़ी रह जाती है।) क्यों री, तू क्या करती फिर रही है? सुबह से ही दंगे में लग गई! तुझसे कितनी बार कहा कि उधम मत किया कर, उधम मत किया कर, लड़कियों का बहुत उधम मचाना अच्छा नहीं होता। लेकिन तुझ पर कोई असर नहीं होता। (भीतर से छोटे बच्चे के रोने की आवाज़ आती है) चल, भैया को ले, कितनी देर से रो रहा है! (लड़की का मुँह उतर जाता है।) बस, बन गया मुंह! अभी डोलने को कह दो, मुहल्ले भर की खबर ले आयेगी। (बिट्टो जाती है।) एक यह लड़का है, हर वक्त रोता ही रहता है! (कहती-कहती रसोई की ओर बढ़ती है।) क्यों री, निम्मी, जरा बाहर निकलकर तो आ!

निम्मी : (बाहर आकर) हाँ, माँ जी, क्या कहती हो?

सरस्वती : (माथे पर हाथ मारकर) कहूँगी अपना सिर! मैं पूछती हूँ तू कर क्या रही है? तेरे से अभी तक दूध भी गरम नहीं हुआ?

निम्मी : दूध तो हो गया, माँ जी, अब साग चढ़ाया है।

सरस्वती : अच्छा-अच्छा! साग चढ़ाया है तो मानो सारा खाना बनाकर रख दिया है! सुबह से क्या कमेर कर रही थी जो अब साग चढ़ाया है? मेरा क्या है, लड़का भूखा दफ्तर चला जायेगा। न किसी का कहा रहा, न सुना रहा, जी में आया साग चढ़ाया, जी में आया दूध चढ़ाया।

निम्मी : बाबूजी के लिए चाय भी तो बनाई थी, माँ जी !

सरस्वती : क्या कहा, चाय ? कैसी चाय ? बैठक में मँगाई होगी ! क्यों ? क्या कोई दफ्तर का आदमी आया है ? बस, लोगों को काम ही क्या है, सुबह हुई और पूंछ उठाकर चल दिये दूसरों के घर चाय पीने। अब इस रामनाथ को काम ही क्या रह गया है, दिन निकलते ही दोस्तों को बुलाकर बैठक में बैठ जाता है और वहीं से हुक्म चलाता रहता है। यह तो होता नहीं कि दो घड़ी बच्चों को पढ़ा दिया करे।

[बच्चू बाहर से गेंद उछलता हुआ आँगन में आता है, और हनुमानजी की तरह एक-एक पैर पर दो-दो बार उछालता हुआ सरस्वती के सामने से गुजरने लगता है।]

निम्मी : मैं जाऊँ, माँ जी ?

सरस्वती : (उसकी ओर ध्यान न देकर) क्यों रे, बच्चू, तू क्या सारी उमर गेंद ही उछाला करेगा ? बड़ा बाप-दादों का नाम ऊँचा करेगा ! मैं पूछती हूँ यह मुई गेंद तुझे लाकर किसने दी है ? कहीं छिटककर रसोईघर में चली गई, तो देख, तेरी हड्डियों का कैसा कचूमर बनाती हूँ। तुम लोगों के मारे कुछ खाने-पीने का धरम रह गया है ? न जाने कहाँ-कहाँ नालियों-चबच्चों में जाकर पड़ती है। चल, रखकर आ।

बच्चू : हूँ, यह तो छक्कन की गेंद है। मैं तो उसे ही देने जा रहा हूँ।

सरस्वती : अच्छा, अब उसके साथ जाकर खेलेगा ! कैसा पड़ोस मिला है मरा यह ! ऐसे बालक तो कहीं नहीं देखे कि सारा दिन खेलते ही गुजार दें। न पढ़ना, न लिखना। ला, गेंद मुझे दे। (आगे बढ़कर गेंद ले लेती है और काँख में दबा लेती है। बच्चू मुंह देखता रह जाता है। सरस्वती रसोईघर में से झाँकती है। फिर निम्मी को सम्बोधन करके) और तेरी अम्मा कहाँ गई ?

निम्मी : नहाने गई हैं।

सरस्वती : क्या कहा, नहाने गई है ! ऐसा कैसा नहाना हो गया ! दो घंटे हो गये, अभी नहाना ही नहीं निबटा !

निम्मी : अभी-अभी तो अम्मा तुमसे बोली हो थीं, माँजी !

सरस्वती : बोली थी मेरा सिर ! मैं पूछती हूँ यह खाना कब चढ़ेगा ? जा, जरा चाँद की तो सुध ले। कुछ दूध-दाध उसने पिया है या सुबह से भूखा ही पड़ा है। कैसा असील लड़का है, न कुछ बोलता है, न चालता है, भूखा पड़ा टुकुर-टुकुर ताकता रहता है। एक तेरी जबान है डेढ़ गज की। हर बात का जवाब हाजिर है। (कहती हुई हाथ हिलाती है, तो गेंद काँख में से गिर पड़ती है, बच्चू उठाकर भाग लेता है। भागते हुए बच्चू की ओर लक्ष्य करके) मुए, तू चला कहाँ ! घर पर तो आयेगा ही। देख, तेरी कैसी गत बनाती हूँ। (निम्मी की ओर लक्ष्य करके) और क्यों री, निम्मी, मैं पूछती हूँ ये खाटें क्या शाम तक ऐसे ही पड़ी रहेंगी ? सब सो-सोकर

उठ गये, पर किसी को इतनी नहीं सूझी जो खड़ी कर दें। हे राम, अभी तो झाड़ू भी नहीं लगी। घर मेरा ऐसा हो रहा है जैसे भूतों का डेरा !

निम्मी : माँ जी, झाड़ू का कहीं पता भी तो हो।

सरस्वती : ढूँढती तब तो मिलती, हरामडील !

निम्मी : ढूँढी तो माँजी, कहीं नहीं मिली।

सरस्वती : (और भी तेज स्वर में) और झूठ बोले जा रही है ! अगर मैंने ढूंढकर दे दी? (उसका हाथ पकड़कर एक ओर ले जाती है।) देख, यह क्या पड़ी है··· ऐं, यहाँ से झाड़ू कहाँ गई ? अभी-अभी तो मैंने यहाँ रखी देखी थी। (स्नानघर की ओर मुंह करके) अरी, ओ बहुरिया ! तूने कहीं नहा-धोकर झाड़ू तो फिर नहीं उठा ली ? कैसी मुश्किल है मेरी !

लक्ष्मी : (स्नानघर में से) मुझे झाड़ू की नहीं मालूम, माँ जी।

सरस्वती : तुझे नहीं मालूम तो किसे होगी ? कोई बाहर का आदमी थोड़े ही ले गया। अरे, कहीं रामू तो नहीं ले गया ?

निम्मी : रामू तो अभी आया ही नहीं, माँ जी।

सरस्वती : क्या ? सूरज सिर पर चढ़ आया और रामू अभी आया ही नहीं ! नौकर क्या हैं हमारे सब नवाब हो रहे हैं। सत्तर नखरे सहो, काम खुद करो और महीने पर साठ रुपये इनके हाथों पर गिन दो !

[एक ओर से बिट्टो पानी की बाल्टी लिये आती है।]

निम्मी : माँ जी, साग जल रहा होगा।

सरस्वती : जल रहा होगा तो मैं क्या करूं ? मैं साग में घुसकर बैठ जाऊं ! (बिट्टो की ओर देखकर) अरी, तुझे तो मैंने चाँद को लेने के लिए कहा था। और पानी क्या घर में नहीं है जो बाहर से लायी है ? जब देखो तब···

निम्मी : चाँद को तुमने मुझसे लेने के लिए कहा था, माँ जी।

सरस्वती : तुझे कहा था, तो तेरे पाँवों में तो मेंहदी लगी है। तू हिली है अब तक ? मैं ही पागल हूँ जो सारे दिन भौंकती रहूँ हूँ। जा, पहले साग देख और फिर चाँद को दूध पिला। बेचारा भूखा-प्यासा पड़ा होगा।

[निम्मी जाती है। बिट्टो भी जाने लगती है। दूसरी ओर से भंगिन प्रवेश करती है।]

सरस्वती : (भंगिन को देखकर) तेरा हो गया आज घर से निकलना ! बड़ी जल्दी आयी ! कम से कम बारह बजाकर तो आती नवाबजादी ! (हाथ फैलाकर) यह तो तब हाल है जब घर के सामने ही घर है।

भंगिन : मुझे कोई एक ही घर कमाना तो रह नहीं गया, माँ जी। किसके घर जल्दी जाऊँ, किसके देर में ?

सरस्वती : तो हम क्या करें ? अब बोल, कौन तुझे पानी दे ! सब तो नहा लिये··· (बिट्टो को पुकारकर) अरी, ओ बिट्टो, यह पानी भंगिन को डाल दे। (बिट्टो बाल्टी लिये दुबारा आती है और चुप खड़ी रहती है।) क्यों, क्या

मनाथ हँसते हुए चले जाते हैं। नन्ही अवसर देखकर बाहर भाग
ी है। उसी समय नौकर प्रवेश करता है।}
माँजी, देखिए, एक...दो...तीन...
ों की ओर से ध्यान हटाकर रामू को देखते हुए) अब आया है रे तू
। निकलकर! नौकरी नहीं करनी है, तो चलित्तर क्यों दिखा रहा
साफ़ जवाब दे, हम दूसरा नौकर ढूँढें।
ी, आप तो देखते ही बरस पड़ती हैं...
ग्र, मैं बरस पड़ती हूँ। न बरसूं, तो तू बस महीने के महीने तनखा
ही आया करे। हमें ऐसे नौकर की जरूरत नहीं है। तू जिन पैरों से
ा है उन्हीं से लौट जा···बस, कह दिया। जाता क्यों नहीं ? तू
झता है जिस तरह हमेशा दब जाती हूँ, आज भी दब जाऊँगी ? (धोबी
हाँ, तू गिनता क्यों नहीं ? मैं क्या फालतू हूँ जो तेरे सामने खड़ी-खड़ी
म करूँगी ? मुझे घर के हज़ार धन्धे पड़े हैं अभी निवटाने को।
सहमकर) माँ जी! ये चार कपड़े तो गिन दिये थे।
हाँ गिन दिये थे! फिर से गिन।
फिर से कपड़ों को गिनता हुआ) एक···दो···तीन···चार···
भीतर से लक्ष्मी की आवाज़ आती है: 'माँ जी, आपके पूजा-पाठ का
समय हो गया है।']
अरे, मुझे तो अभी पूजा भी करनी हैं। रामू, खड़ा-खड़ा मुंह क्या ताक
रहा है। एक कोड़ी कपड़े दिये थे, गिनवाकर इन कपड़ों को सँगवा।
मैं चली पूजा करने।
माँ जी, चटाई यहीं ला दूँ ?
अच्छा, अब तो ठकुरसुहाती भी जान गया। चल, दे लाकर यहीं पर।
तेरा क्या भरोसा, बीस के उन्नीस गिनवा लेगा, तो क्या तेरे पीछे लठिया
लिये-लिये फिरूँगी ? चल···
[रामू भीतर जाता है और एक चटाई लिये हुए बाहर आता है। एक ओर
चटाई बिछा दी जाती है और सरस्वती गले से माला निकालकर पलोथी
मारकर बैठ जाती है, और माला फेरने लगती है। रामू धोबी से कपड़े
गिनवाने लगता है: "एक···दो···तीन···चार···" लेकिन इस बार
संख्या नहीं रुकती और घर में शान्ति छायी रहती है।]